उन असंख्य अज्ञात बलिदानियों को जिन्होंने
भारत के स्वर्णिम भविष्य की आशा में निज को
तिल-तिल पल-पल जलाकर अपने प्राणों की आहुति दे दी।

विषय

महात्मा गाधी ने अपना सपूर्ण जीवन सत्य के प्रय[illegible] दिया। देश की स्वाधीनता के लिए भी उन्होने सत्य और अहिसा का ही अवलब लिया। यह कह सकना कठिन है कि हमे किस रास्ते स्वाधीनता मिली। इतना निर्विवाद है कि गाधीजी जीवन पर्यन्त सत्य की स्थापना के लिए सघपरत रहे और सत्य की ही बलिदेवी पर उन्होने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।

प्रश्न उठता है कि जीत किसकी हुई? जो महापुरुष सत्य का प्रतीक था, उसे हमने गोली मार दी। सत-असत के बीच जो सघर्ष छिडा था उसका एक अध्याय इस प्रकार पूरा हुआ। देश को स्वाधीनता मिल गयी। आज स्वाधीनता के भी ३३ वर्ष बीत चुके है। तो क्या हम मान ले कि सत की जीत हो गयी? स्थिति क्या है? वर्चस्व सत का है या असत् का?

कहा जाता है कि सच्चाई की अपेक्षा शैतान की गति अधिक तेज होती है। किंतु ऐसा तो नही होता कि सत् को असत पूरी तरह दबोच ले।

यही कुछ प्रश्न थे जो मुझे परेशान करते रहे। इसका उत्तर पाने के लिए मैं अतीत मे गया तो स्वाधीनता आदोलन के अतिम दिनो की धुधली तस्वीरें मेरे मानस पर उभरने लगी। उन तस्वीरो मे भी स्पष्ट उत्तर नही मिला। केवल आभास हुआ कि असत रक्तबीज की तरह है। सत्य आज भी जूझ रहा है और असत असख्य रूपो मे प्रकट होकर सत पर हावी हो जाता है।

रक्तबीज उपन्यास मे इसी धुधली तस्वीर को उकेरने का मैंने प्रयास किया है। सहृदय पाठक ही बता सकेंगे कि मुझे कितनी सफलता मिली है।

—शिव सागर मिश्र

१

कृष्ण पक्ष की रात हो या शुक्ल पक्ष की दिल्ली जैसे शहर मे कोई फक नहीं पडता। सुनसान सडको और वीरान गलियो मे भी बिजली की रोशनी जगमगाती रहती है। जिस प्रकार सभी नदिया समुद्र की ओर भागी जा रही हैं, उसी प्रकार आज वैभव और विकास के सभी माग शहर की ओर मुड गए हैं।

गुलमोहर पाक नई कालोनी है। यहा अधिकतर बुद्धिजीवी बसते हैं। प्रमोद बाबू ने भी जोड ताडकर किसी विधि दो कमरे का छोटा-सा मकान यहीं बनवा लिया है। ऐसा कर सकना उनके लिए असम्भव होता यदि उनकी पत्नी कान्ता कॉलेज मे लेक्चरर नही बनती। वहीं कान्ता अभी बार-बार बेचैन होकर खिडकी पर जा खडी होती थी। जब घबराहट के मारे पाव जवाब देन लग जाते तब प्रमोद बाबू की बगल मे, चौकी पर आकर, बैठ जाती थी। सामन रोशनी ही रोशनी थी, लेकिन उसकी आखो के आगे रह रहकर अधेरा छा जाता था। "कहा रह गया अमिताभ ?"—यह प्रश्न उठते ही वह आशकाओ से घिर जाती थी।

सडक पर सवारिया का आना जाना लगभग बन्द हो चुका था। प्रमोद बाबू का मकान, मुख्य सडक से दूर, गुलमोहर पाक के भीतर था। कई सडको और अनक गलियो का चक्कर काटकर छोटे से पाक के पास पहुचना पडता था। इस गली मे प्राय निम्न मध्यम श्रेणी के पत्रकारो ने ही अपने मकान बनवाए थे। प्रमोद बाबू के मकान की छत के ऊपर एक एक हाथ

ऊचे पाए बने हुए थे जिनमे तुडी-मुडी छडें लगी हुई थी। ये छडें इस बात का सबूत थी कि इच्छा रखते हुए भी प्रमोद बाबू ऊपर की मजिल तैयार नही करवा सके थे।

कान्ता पिछले दो घण्टो मे चौबीस-पच्चीस बार खिडकी के पास जाकर खडी हुई थी। प्रमोद बाबू ने मन ही मन गिनती कर ली थी। वे अपने बेटे अमिताभ की गैर जिम्मेदाराना हरकत से कतई परेशान नही थे। उन्हें कुढन थी तो केवल इस बात से कि कान्ता अपने बाईस साल के नौजवान बेटे को *अब तक दुधमुहा बच्चा क्यो समझ रही है? अमिताभ एम० ए० का विद्यार्थी* है। अपने क्लास मे अब तक प्रथम आता रहा है। बीडी सिगरेट या नशा-पानी की आदतो से कोसो दूर रहता है। फिर चिन्ता किस बात की है? नेतागिरी का शौक उसे विरासत मे मिला है। सो कही किसी सगठन के काम मे या प्रदर्शन मे फस गया होगा।

कान्ता व्यग्र होकर खिडकी की राह बाहर की तरफ अधेरे मे देखने लगी। दूर पर गली की बत्ती जल रही थी, जिसका आभास सामने फैले अधेरे पर उजागर हो रहा था। पार्क मे सन्नाटा था। पार्क के उस पार एक कुत्ता रोने लगा। कान्ता सिहर उठी। जब कहो से कोई आहट नही मिली तो अन्त म चिन्तातुर होकर कान्ता बोल पडी

"न जाने कहा मारा मारा फिरता रहता है, इतनी रात तक! अभागा।'

बालने को वह स्वगत भाषण के लहजे मे बोली। लेकिन उसका उद्देश्य था अपने पति की *भर्त्सना करना। प्रमोद बाबू मा-बेटे की नस-नस से परि*चित थे। वे चौकी पर लेटे-लेटे ही बोले

अभागे हो उसके दुश्मन। मेरा बेटा तो लाख मे एक है। जैसा दिव्य स्वरूप वैसा ही शानदार स्वभाव।'

कान्ता अपने पति की ओर मुडकर खडी हो गई। कमरे की बत्ती बुझी हुई थी। लेकिन पिछले बरामदे म रोशनी हो रही थी वही रोशनी खिडकी मे पर्दे से छन छनकर भीतर आ रही थी। इसलिए प्रमोद बाबू को अपनी पत्नी कान्ता के मुखमडल का भाव पढने मे कठिनाई नहीं हुई। वे मन ही मन उसके तमतमाए हुए चेहरे की कल्पना करके मुसकराने लगे। जिस

प्रकार के उत्तर की प्रतीक्षा थी, वैसा ही उत्तर देती हुई कान्ता ने चिढकर कहा

'जीवन भर जिस राह पर चलकर तुमने अपनी ऐसी दशा बना ली, उसी खाई म बेट को ढकेलकर खुश हो लो। खुद तो कुछ कर नही पाये, अब बेटे को भी भरमाकर मार डालना चाहते हो।"

"जाकर चुपचाप सो जाओ। आई० ए० एस० बनकर कोई अमरत्व नही प्राप्त कर लेता है। बालिग लडके को अपनी राह आप तय करने की छूट होनी चाहिए। सरकारी नौकरी से उसे नफरत है तो मैं क्या करू ?"

उसी समय बाहर आटोरिक्शा आने की आवाज सुनाई पडी। कान्ता आशान्वित होकर फिर खिडकी की राह की ओर देखने लगी। आटोरिक्शा सामने म फटफटाता हुआ दाहिनी ओर निकल गया। कान्ता अपने पति के विरुद्ध बौखलाहट से भर गयी। चौकी के पास आती हुई बोली

'तुमसे शह पाकर वह बेकार के झगडे-तकरार मे जा फमा है। अब उसका पढना व्यथ है। आज आने दो उसे, मैं साफ-साफ कह दूगी कि या तो चुपचाप एम० ए० की पढाई पूरी करे या रोटी कमाने का उदयम।" यह कह कर कान्ता प्रमोद बाबू के पैंतान चौकी पर बैठ गयी। प्रमोद बाबू जानते थे कि उनकी पत्नी पुत्र के प्रति प्रेम के अतिरेक मे आकर ही यह सब बोल रही है। उन्हे यह भी मालूम था कि बेटे के सामने होते ही इसका तन-मन अचानक ही सामान्य ही उठेगी। फिर भी, अपनी पत्नी को चिढाने मे उन्हे आनन्द मिलता था। इसलिए वे धीरे से रस लेते हुए बोले

"समाज सेवा को झगडा तकरार करना क्या कहती हो ?'

"भाड मे जाए तुम्हारी समाज सेवा। नारे लगाना, जुलूस निकालना और बडे बुजुर्गों के खिलाफ अपशब्द बकना क्या समाजसेवा है ? अरे, जब समाजसेवा के नाम पर तुम अंग्रेजी हुकूमत के दिनो नारे लगाकर और जेल जाकर रोग शोक के अतिरिक्त कुछ नही प्राप्त कर सके, तो आज अमिताभ काले साहबों की सरकार का क्या बिगड लेगा ? उसका भी वही हाल होगा जो तुम्हारा हुआ है। दर-दर की ठोकरें खाकर अत मे असमय ही बूढा बनकर खाट पकड लेगा। सारी बहादुरी धरी की धरी जायेगी।"

काता ने सच्ची बात कह दी थी। प्रमोद बाबू तेरह साल की किशोरावस्था

से लेकर तिरपन चौवन साल की आयु तक व्यवस्था से लडते रह गये। शुरू मे अग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध और बाद मे देशी सरकार के खिलाफ। बार-बार जेल जाते जाते उनके बलिष्ठ शरीर म घुन लग गया और आज चौवन साल की आयु मे ही व चौसठ पैसठ साल के वदध लगते थे। समाज मे आदर था, ठीक वैसा ही जैसा आज के युग मे कोई यजमान अपने पुरोहित को देता है। इससे अधिक और कुछ नही। वास्तविकता यह थी कि कुछ तथाकथित बुद्धिमान लोग उन्ह अक्खड, अहकारी, अदध विक्षिप्त यहा तक कि मूख समझते थे। प्रमोद बाबू स लोगो की यह प्रतिक्रिया छिपी नही रह गयी थी। वे कभी कभी अपने बेटे और बेटे की मित्र रश्मि की जुबानी मालूम कर लिया करत थे कि लोग-बाग उनके बार म क्या कहते है ? कटु सत्य सुनकर न तो उन्ह दु ख होता था और न आश्चय। स्वाधीनता क बाद ही घनघोर रूप से उपयोगितावादी युग आ गया था। शुभ लाभ के अतिरिक्त कोई दूसरी उपलब्धि मायन नही रखती थी। इस दृष्टि स निश्चय ही प्रमाद बाबू दिवालिया बन चुक थे। उन्ह कभी कुछ प्राप्त नही हुआ। देश की गुलामी और गरीबी क विरुद्ध जेहाद छेडने वाले प्रमोद बाबू गरीबी मे पदा हुए, गरीबी मे पले, बडे हुए और आज भी दो कमरो के छोटे से मकान के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नही था। यह सब कुछ जानते हुए भी प्रमोद बाबू ने हसकर कहा

"क्या कमी है मुझे ? तुम्हारी जैसी प्राणोत्सग कर देन वाली जीवन सगिनी मिली और अमिताभ क रूप म राम जैसा सच्चरित्र और प्रतिभा शाली पुत्र मिला। जमीन जायदाद पद-पैसा और शक्ति-सत्ता क्षणिक है। यह सबस पहले अपन स्वामी की आत्मा का हनन कर देती है। आत्माहीन व्यक्ति पशु से भी बदतर है। जिसके पास सत्ता है पद और पैसा है, उसे जाकर देखो क्या वह सुखी है ? हर रोज, हर क्षण उसका विरोध होता रहता है। उसके अस्तित्व का सिर कटकर जमीन पर गिरता रहता है और वह हर क्षण रक्तबीज की तरह नया रूप धारण कर लेता है। इसके बाव जूद क्या उसे शाति है ? क्या उसकी रात ?'

अपनी बात प्रमोद बाबू पूरी भी नही कर पाय थे कि बाहर मोटर गाडी रुकने की आवाज आई। वे चौंककर उठ बैठे। कांता ने दौडकर दरवाजा

खोल दिया। तभी बाहर से तेज कदमो से चलती हुई रश्मि कमरे म घुस आई।

रश्मि के चेहरे का रग उडा हुआ था। तब तक प्रमोद बाबू ने उठकर कमरे की वत्ती जला दी थी। क्षण भर के लिए वह भी हतप्रभ से हो गय। रश्मि ने हाफ्ते हुए कहा

"अमिताभ पार्लियामेंट थाने मे बद कर दिया गया है। आज प्रदशन था जिसका नेतृत्व अमिताभ कर रहे थे। वहा दफा १४४ लगी हुई थी।"

यह खबर सुनते ही काता को मूर्च्छा-सी आ गयी। इस तरह का दु ख वह जीवन मे कई बार झेल चुकी थी। उसके पति प्रमोद बाबू अब तक लगभग पन्द्रह बार जेल की सजा भुगत चुके थे, वह भी स्वाधीन भारत म। बार बार इस प्रकार की यातना झेलते झेलते काता अब हवालात और जेल का नाम सुनते की काप उठती थी। नित्य प्रति पूजा करते समय भगवान से वह एक ही प्राथना करती थी कि उसका इकलौता बेटा उस राह पर न चले, जिस राह पर उसके पति चलते रह थे। ऐसा नही था कि उसे अपने पति के जीवन से या जीवन पथ से वितण्णा थी। सच तो यह था कि वह एसे पति का पाकर फूली नही समाती थी। पास पडोस के लोग उसे अपार श्रद्धा की दष्टि से देखत थे। उसे सन्त की पत्नी कहकर पुकारा जाता था। इस सुयश की खातिर उसे पत्नी के रूप म जो कुर्बानी देनी पडी थी, अब वह कतई नही चाहती थी कि मा के नाते भी उसे वही कुर्बानी देनी पडे। वह तो कल्पना किया करती थी कि अमिताभ छोटी सी गहस्थी बसाकर नियमित और सामान्य जीवन जियेगा और धीरे धीरे उन्नति के सोपान चढता हुआ मा-बाप के नाम को रोशन करेगा।

रश्मि के मुह से अमिताभ के हवालात मे बन्द होने की बात निकलते ही काता अपना होश हवास खो बठी। लगा, जैसे उसका सिर चक्कर खा रहा हो। उसके खोखले शरीर के अग प्रत्यग तीखी पीडा के अतिरेक से सुन हो गये। वह अपने आपको सभाल नही सकी और किसी प्रकार लडखडाती हुई चलकर चौकी पर धम्म स बैठ गयी।

प्रमोद बाबू के लिए यह समाचार न तो शोक उत्पन्न करन वाला था और न था आश्चयजनक। वे पिछले पाच छह वर्षों से अपन बेटे की मन-

स्थिति और क्रिया-कलापो का परखते आ रहे थे। अमिताभ स्कूल मे भी लोकप्रिय था और कालेज मे भी। कालज के चुनाव आदि मे वह सक्रिय रूप मे हिस्सा लिया करता था। आगे चलकर उसने अन्य आन्दोलनो में भी हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। महगाई विरोधी आन्दोलन हो या कानून और व्यवस्था के नाम पर पुलिस की ज्यादती के विरोध मे कोई प्रदशन अमिताभ उसमे सबसे आगे रहता था। शुरू शुरू म प्रमोद बाबू ने यह जानने की जरूर कोशिश की कि अमिताभ बिना सोचे-समझे तो यह सब नही कर रहा है। एक दिन उन्होने अमिताभ से कहा भी था

बेटे, अभी तुम्हारा कत्तव्य पढना लिखना है।" अमिताभ न छूटते ही जवाब दिया था

बाबू जी! क्या आज तक मैं अपनी कक्षा म दूसरे नबर पर आया हू?"

उस दिन प्रमोद बाबू निरुत्तर हो गये थे। कुछ दिनो तक व पसोपेश मे पडे रह। वे जानना चाहते थे कि अमिताभ आन्दोलन और प्रदशन म क्यो हिस्सा लेता है। एक दिन उन्होने अवसर दखकर पूछ भी लिया

विद्यार्थी लोग अपन प्रोफेसर के विरुद्ध आन्दोलन क्या करते है? यह तो अच्छी बात नही हुई। गुरु शिष्य म पिता-पुत्र जैसा रिश्ता होना चाहिए।

अमिताभ ने शातिपूवक उत्तर दिया था, वही सबध स्थापित करने के लिए तो हम लड रहे हैं। पहले के छात्र गुरु के साथ ही आश्रम में रहा करते थे। उनके और गुरु के बीच केवल लेक्चरर और छात्र का नाता नही था बल्कि दोना एक दूसरे क व्यक्तित्व से सपक्त हो जाते थे। तब आस्था और निष्ठा थी। आज केवल कृत्रिम कत्त य रह गया है। पहले वाली स्थिति वापस लाना सभव नही है। छात्रो और आचार्यों की सख्या देखते हुए इस समस्या का निदान तभी निकल सकता है जब छात्र और आचाय विश्व विद्यालय की व्यवस्था म साझीदार बनें। वे एक दूसरे की इच्छाओ-आशाओ को पहचान। व्यवस्था अपने आपमे कोई मान नही रखती, जब तक कि वह अपनी समग्रता के साथ उनके लिए उपयोगी और कल्याणकारी सिद्ध न हो जिनके लिए उसका अस्तित्व है। *यही सिद्धान्त सामाजिक और राज*

नीतिक व्यवस्था पर भी लागू होता है। जब शांति और व्यवस्था के नाम पर लाठी बरसाई जाती है, अश्रुगैस छोडी जाती है और कभी कभी गोलिया भी चलाई जाती है तब व्यवस्था चलाने वालो की नीयत पर शका होने लगती है। प्रदर्शनकारी या आदोलनकारी चोर-डाकू नही होते। वे जीने का या काम करने का समान अधिकार चाहते हैं। लाठी गोली चलाने वाले भूल जाते हैं कि वे उसी डाल को काट रहे हैं, जिसपर वे बैठे हुए हैं। सत्ताधारी जब केवल अपनी सत्ता के बचाव के लिए अधिकारो का दुरुपयोग करने लगें तब सच्चे अर्थों मे जो अधिकारी जन है, वह क्या करे ?"

प्रमोद बाबू के मन मे आया कि वे कहें, 'इसकी क्या गारटी है कि तुम लोग अपने आदोलन मे सफल होने के बाद उसी प्रकार आततायी और और सत्तालोलुप नही बन जाओगे जिस प्रकार स्वाधीन भारत की पिछली तीन चार सरकारें बन चुकी हैं ? सत्ता के सहस्र सिर हैं। इन्हे काट गिराना क्या सभव है ? लेकिन यह बात वे कह नही सके। आश्वस्त अवश्य हो गये कि उनका बेटा बगैर समझे-बूझे यह सब काम नही कर रहा है। उन्हे बल्कि यह देखकर प्रसन्नता हुई कि उनका बेटा सीमित स्वार्थ के दायरे से बाहर निकलने को छटपटा रहा है। इस दायरे के बाहर वही निकल सकता है, जो कबिरा की तरह पहले अपना घर जला डाले।

कांता के कापते शरीर को देखकर प्रमोद बाबू बेशक चिंतातुर हो उठे। वे लपककर उसके पास पहुचे और दिलासा देते हुए बोले

"तुम इस तरह क्यो कर रही हो ? उसे कुछ नही होगा। कल सुबह तक छोड दिया जायेगा। हो सकता है, अब तक छोड भी दिया गया हो। इस तरह के प्रदर्शनो मे आजकल ऐसा ही होता है। जगह कहा रह गयी है इन सत्ताखोरो की जेलो मे।"

कांता ने झटके के साथ अपने कधे पर से पति का हाथ हटा दिया और वह लगभग रोती हुई-सी बोली "आप पिता हैं कि चाण्डाल ! बेटा हवालात मे बन्द है और यहा आप अपने घर मे निश्चिन्त होकर खडे हैं।"

"हा चाचा जी, चलिए न मेरे साथ। बाहर मोटर गाडी खडी है।'

प्रमोद बाबू ने अनायास ही रश्मि की ओर देखा। कितनी मिलती-जुलती है यह अपनी मा से। वैसी ही स्वच्छ आखें सलोना चेहरा, रग और कद

जरूर बाप का इसने पाया है। इसकी मा मझोले कद की है औ
रग गेहुआ है। प्रमोद बाबू कुछ देर तक उस देखते रह गए। उनके
उनकी पूरी जिंदगी चक्कर काट गयी। यह क्या हो रहा है ? जो कुछ
जीवन मे घटित हुआ क्या उसकी पुनरावत्ति सचमुच अब बेटे के जीवन
होने जा रही है ? उन्होने भी तो इसी प्रकार देश की सेवा से अपना जा
शुरू किया था। जिस घर से उन्ह प्यार का उन्मादपूर्ण आमन्त्रण मिला
अब उसी घर से अमिताभ को ।

'क्या सोच रहे है आप ? चलिए न जल्दी।'' रश्मि ने उतावलेपन
कहा। प्रमोद बाबू झेप से गए और जल्दी जल्दी कुरत के ऊपर कोट पह
कर बाहर निकल आये।

मोटर गाडी कालोनी से निकलकर, अरविन्द मार्ग की ओ
पडी। दोनो ओर सडक के किनारे की बत्तिया रोशनी की
खामोशी बिखेर रही थी। छोटे बडे खूबसूरत मकान आधुनिक स्था
कला का खोखलापन उजागर कर रहे थे। स्वाधीन भारत मे विकास
नाम पर कुछ डैम चन्द कारखाने और गरीब गावो के बीच बीच विव
कार्यालय के भवन देखते-देखते कुकुरमुत्तो की तरह उग आये थे। इस विव
का अधिकाश लाभ सेठो साहूकारो, मुनाफाखोरो ठेकेदारो और स
धान्धिया को मिला। शहरो मे बेहिसाब महल अटारिया उभर आयी थी

रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी। फिर भी कही कही
के बाहर बैठे मजदूर वर्ग के लोग आग ताप रहे थे। ऐसे लोग जाडे क
यो ही बिता देते है। इनके पास न तो रहने को मकान है न बिस्तर
बिस्तर। इसी तबके के लोग कही-कही कुछ दुकानो के आगे दो के
पर सो रहे थे। सही मानो मे स्वाधीन भारत के प्रतीक ये लोग हो
इनका जीवन पशुओ से भी बदतर है। पेट की भूख मिटाने के लिए काम
तलाश करते रहना या काम मिलने पर कमर तोड मेहनत करना इनके
अनिवार्य है। इनका दाम्पत्य जीवन भी पशुवत् है। हर साल बच्चे
होते है मडक या खेत की धूप-बरसात मे पलते हैं। पाठशाला जान
आयु से पहले ही पेट की ज्वाला इन्हें आत्मसात कर लेती है। तब इन्हें भ
मागनी पडती है या कही मजदूरी करके गुजर करना पडता है। इनके

ौर ा म न तो वस्त्र बनते हैं न दवाखाने मे दवा। नग धडग इस दुनिया
 हैं और असाध्य रोग होने पर नग धडग ही चले जाते ह। अचम्भे
ी बात तो यह है कि सत्ता पाने के लिए ही सत्ताधारी दल और हर दल क
ता इन्ही नग धडग पशुओं की दुहाई देते है।

प्रमोद बाबू ने ठड से बचने के लिए अपने दोनो हाथ कोट की जेब मे
ख लिए। इस क्रम म उनकी दाहिनी केहुनी बगल मे बैठे रश्मि की
ाह स टकरा गयी। एक साथ ही दोनो न एक दूसरे को चौंककर
खा। रश्मि न सकुचाकर अपना सिर वक्षस्थल पर झुका लिया। रश्मि
की यह भगिमा प्रमोद बाबू को बहुत अच्छी लगी। उनके होठो पर सहज
ुस्कराहट बिखर गयी। क्षण भर के लिए व यह भूल गये कि उनका
 हवालात मे बन्द है, जिसके चलते कान्ता के प्राण आकुल व्याकुल हो
े हैं। व सा मा की उड़ान के साथ भविष्य मे जा पहुचे। बगल मे बैठी
ई लडकी बहू बनकर उनके घर को रोशनी से जगमगाने लगी। मस्ती
और आनन्द मे उमगता हुआ उनका बेटा अमिताभ उनकी नजरो के सामन
ा खडा हुआ और यह सब देखकर प्रमोद बाबू इस कल्पना म मग्न हो गय
। कब एक ाहा-सा सजीव खिलौना धीरे से उनकी चौकी के पास
आकर उनकी बद पलको म अपनी उगलियां चुभो देगा। प्रमोद बाबू न
चमुच ही आखों मे चुभन महसूस की। व एक अनिर्वचनीय पीडा से तडप
 पच्चीस साल में आज पहली बार उन्हान इस तरह की प्राणघातक
ा अनुभव किया। इस तरह का आघात उन्हें लगभग उन्तीस साल
 लगा था, जब वे कान्ता को अपने साथ लेकर पटना पहुचे थे।

जीवन केवल वर्तमान मे नहीं है। वर्तमान तो काल के सबसे छोटे अश
ा आभास मात्र है। भूत और भविष्य को जोडने वाला क्षण बेशक जीवत
ौर चेतन कडी है। यही कडी स्थिर अथवा स्थित नहीं है। इसका दूसरा
ाम है अगवोप। इसलिए वह कभी भविष्य के सुभावन एकान्त अधिकार
जा पहुचाता है तो कभी आनन्द और वेदना म भीगे हुए अतीत की अतल
हराई में डूब जाता है। श्रय और उद्देश्य की तलाश के लिए जीवन की
ह गतिविधि स्वाभाविक है। रश्मि की उपस्थित मे प्रमोद बाबू का वत-
ान खो गया। अतीत और भविष्य की आशकाए विशाल बादलखडो के

रूप म उभरकर कल्पना के आकाश मे घनीभूत हो उठी।

२

बत्तीस साल पहले

गाडी से पटना स्टेशन उतरते ही विवेकानन्द सीधे विजय के डेरे जा पहुचा था। सुमन भाई के देहावसान के बाद वहा कोई ऐसी जगह भी नही, जहा वह काता को ले जाकर ठहरा सके। मामा के यहा काता ने जाना एक नई मुसीबत मोल लेना था। बचपन से आज तक वह म के साथ ही रहना चला आया था। उन्होने ही इसे लगभग छह साल अपने साथ रखकर पढाया लिखाया था। मामा के कोई सतान नही। उन्होने विवेकानन्द को अपना पुत्र मानकर ही प्यार दिया था। मामी विवेकानन्द के लिए मा से भी बढकर थी। इसके बावजूद विवेकान काता को लेकर वहा जाना उचित नही समझा।

विवेकानन्द के मामा भागवत बाबू दया माया से पूरित होते हुए विचार स कट्टरपथी थे। रामायण मे शबरी प्रकरण पढने समय उनकी आ से आसुओ की धारा बहन लगती थी लेकिन व्यवहार मे वे छुआछूत के क समर्थक थे। मित्रमडली मे बैठकर पराशर और मत्स्यगधा के प्रेमाख्य की चर्चा करते समय अथवा कुती और सूय के मिलन की घटना का व करते हुए वे अपने धम पुराण के प्रति गव से भर उठते थे। लेकिन उ उसी प्रकार का समाचार अखबारो मे पढते तो व सामाजिक पतन भत्सना करत हुए क्रोध से पागल हो उठत थे। उनके व्यक्तित्व मे विरोधाभास देखकर विवेकानन्द कभी कभी प्रतिवाद करता, 'मामाजी इसका अथ तो यह हुआ कि पराशर ऋषि काम के वशीभूत हो गये थे फिर वे ऋषि कैस हुए? और कुती न विवाह से पूव ही सूय स सबध कर क्या पतिता का आचरण नही किया?

'धम का मम तू नही समझेगा। वह सब भगवान की लीला था अग्रजी शिक्षा न तुम्हारे मन को विकृत कर दिया है।' ये शब्द उनके

समय भागवत बाबू का स्वर बहुत तेज और कर्कश हो जाता था।
ानन्द चुपचाप वहा से उठकर खिसक जाया करता था। वह जानता
, उसके मामा उसपर अत्यधिक स्नेह रखते है। उनकी दृष्टि मे वह
क्ति और मामा भक्त बना हुआ था। वह जानता था कि उसकी छवि मे
भी विकृति आने पर मामा जी को हार्दिक आघात पहुचेगा। इसलिए
कभी भी मामाजी की धार्मिक और पौराणिक मान्यताओ के विरुद्ध खुल-
ुछ नही कहा। ऐसी स्थिति मे काता को लेकर मामाजी के घर यदि वह
जाता तो उसकी छवि विकृत ही नही होती, बल्कि धराशायी होकर
विचूर्ण हो जाती। मामा जी इस मर्मान्तिक पीडा को कभी बर्दाश्त नही
ाते।

काता विधवा थी। वह उसकी भाभी थी। एक जवान और खूबसूरत
ा को उसका जवान देवर घर से बाहर निकालकर अपने साथ ले
, भला इस धर्म विरोधी, समाज विरोधी घटना को सवर्ण जाति का
ना क्याकर बर्दाश्त करेगा? मामाजी तो आत्महत्या ही कर लेते।
कानन्द उनकी दृष्टि में सुशील, सच्चरित्र और होनहार लडका था।
सच्चरित्र लडका अपनी भाभी को घर से भगाकर ले आये, यह बात
ाजी के गले उतरने वाली नही थी।

क्या विवेकानन्द अपनी भाभी को भगाकर ले आया था? उसके और
की भाभी के सामने क्या कोई दूसरा विकल्प नही रह गया था? उसने
कुछ किया, उसके पीछे मात्र उसका अहंकार था, या था दायित्वबोध और
व्य भी? इस दायित्वबोध और कर्त्तव्य का उत्स कहा है? प्रेम, निष्ठा
आस्था के अभाव मे क्या दायित्वबोध अथवा कर्त्तव्य की शुचिता
ती है ?

विवेकानन्द जेल से लौटने वाला था। घर में उत्साह और उल्लास की
दौड रही थी। विवेकानन्द के पिता राघव बाबू कभी सचमुच ही
से तो कभी अकारण ही घर के भीतर-बाहर आ-जा रहे थे। आगन के
ार बरामदे पर से ही खडे होकर ऊची आवाज मे पूछते

"अरी, सुनती हो सुमन की मा। प्रमोद को अरबी की तरकारी
पसन्द है। बनाकर रखा है न?" विवेकानन्द का घरेलू नाम था

प्रमोद। इसी नाम स विवकानन्द की मा और पिता उसे पुकारते थे। राघव बाबू का प्रश्न सुनकर सुमन की मा दूसरे बरामदे स तमककर जवाब दती

'क्या आप प्रमोद को मुझसे भी अधिक जानते हैं? लगता है जैसे आप ही ने उसे नौ महीने काख म रखा और आप ही उसे बचपन से खाना बनाकर खिलाते रहे है। जाइये बाहर, अपना काम देखिए और हा, स्टेशन स उसे रिक्शा पर बिठाकर ल आइएगा। कजूसी मत कीजिएगा। न जाने मेरा लाल जेल मे रहते-रहते कैसा हो गया होगा?'

राघव बाबू अपना सा मुह लिए बाहर चले जात, किंतु कुछ ही देर बाद फिर वापस आकर पूछ बैठते

"घर मे दही पौर रखा है कि नही? उसे ताजा दही पसद है। यदि नही हो, तो राज बाबू के यहा से मगवा लो।"

"मैं क्या करती? आपकी कुलच्छनी बहू ने दही जमाया था। वह मुहझौसी सोना छू दे तो माटी हो जाय। न जाने उसने क्या किया कि दही फटौन जैसा बन गया है। न जान मेरे लाल का क्या होने वाला है। दही फटौन बन गया। यह शुभ शकुन नही है। भगवान जान क्या होने वाला है। सो तो जसे हमारे सुमन बेटे को यह डाइन खा गई। अब प्रमोद के लिए दही के बदले फटौन बनाकर रख दिया है। जरूर इसमे इसकी कोई चाल है।"

'क्या बक-बक करती रहती हो। ज्यादा गरम दूध म जोडन पड गया होगा। इस तरह हमेशा किसीकी नीयत पर शक नही करना चाहिए।"

'जाइये, जाइये, आप ही के चलते हमार भरे पूरे घर का सत्यनाश हो गया। सुमन के विवाह के समय मैंने कहा था कि मगह मगध की बेटी इस घर मे नही आयेगी। आपन एक नही सुनी। आप इस बपखौरी को अपने घर की बहू बनाकर ले आय, जो होश सभालते ही अपने बाप को खा चुकी थी। मेरे बेटे पर डोरा डालकर इसने उसे फास लिया। इसका चाचा तो चाहता ही था कि मुफ्त का कोई लडका मिल जाय ।"

राघव बाबू जानते थे कि जब तक वे खडे रहेंगे, उनकी पत्नी की जुबान चलती ही रहेगी इसलिए व सिर झुकाये बाहर चले गये।

माता के माना म सास के बेधक बाण चुभ चुभ जाते थे। वह सुबह से ही अपन देवर क लिए तरह तरह के पकवान तैयार करन मे लगी हुई

विवेकानन्द सामान्य होते हुए भी दृष्टि, विचार और आचार में असामान्य था। वह बहुत जल्द पर-दुख से कातर हो उठता था। बचपन से ही उसने गाव के गरीब लोगों को करीब से देखा था। वह जानता था कि जतना चमार जमींदार भुवनेश्वर सिंह के कारिंदा और सिपाही के लात जूते खाकर भी उनके इशारे पर क्यों नाचता फिरता है। विवेकानन्द यह समझने की कोशिश करता था कि जतना को जब कभी पैसे मिलते हैं, तब वह सीधे ताडीखाने की राह क्यों पकड लेता है। इस प्रकार विवेकानन्द के पाव हमेशा जमीन पर टिके रहे और उसकी दृष्टि उन सपनों की दुनिया पर जमी रही जिसमें जतना कुत्तों जैसी वफादारी छोडकर मनुष्योचित गरिमा हासिल कर सके, जिसमें जतना के कदम ताडीखाने की ओर न बढकर खेत खलिहानों की ओर बढ सकें। किंतु वह जानता था कि सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक जतना जैसे लोगों को खेत-खलिहान नसीब नही हुए और न उसके जैसे परवश लोग गरिमापूर्ण जीवन जीने की स्थिति में कभी आ ही सके।

विवेकानन्द खुली किताब की तरह उन्मुक्त, निर्मल और स्पष्ट था। इसलिए माला को कभी कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई। सुमन आरंभ से ही जन समाज से दूर प्रकृति के सान्निध्य में समय गुजारा करता था। प्रकृति की लुभावनी छटा उसे गगा किनारे ही देखने को मिलती थी। मैट्रिक पास करते ही वह अपनी पढाई जारी रखने के लिए पटना चला आया था। शुरू शुरू मे शहर की शान शौकत में वह खो सा गया था। ऊची-ऊची इमारतें, चौडी सडकें, चमकदार गदी गलियों और होस्टल के घुटन भरे बद कमरे में उसका दम घुटने लगा था। पटना का लान भी उसे बहुत आकर्षित नहीं कर पाया और एक दिन जब वह गगा किनारे जा पहुचा तो उसकी जान में जान आयी। फिर तो वह रोज, समय मिलते ही घाट पर आकर बैठ जाया करता था। वह अपलक गगा को निहारते रहने मे अदभुत आनन्द का अनुभव करता था। सोचता था, कितनी स्वच्छन्द हैं गगा की लहरें कितनी मनोहारिणी। स्वच्छन्द गति में ही सौंदर्य है।

गगा की धारा बहती चली जाती थी। यह प्रवाह लहर पर लहर उत्पन्न कर देती थी। घास-पात ही नहीं, कभी कभी डालियां भी उस प्रवाह

मे बहती हुई चली जाती थी। अस्पताल के पास गगा के किनारे बै सुमन कभी कभार अधजले मुर्दों को भी जब बहकर जाते हुए देखता उसके शरीर के रोगटे खडे हो जाते। जीवन प्रवाह के साथ मृत्यु का यह वीभत्स मेल-जोल उसे अजीब लगता। किसकी लाश होगी यह ? इसका भी तो कोई पिता होगा, पत्नी होगी, पुत्र होगा। उन लोगो ने इसे इस स्थिति में क्यो छोड दिया ? और तब सुमन मनुष्यो की नीच प्रवृत्ति के प्रति आक्रोश और घृणा से भर उठता। वह ऐसे परिवार और समाज की कल्पना भी नही कर सकता था जिसमे इस प्रकार की मृत्यु सभव हो। वह वैराग्य भाव से भर उठता और जबरन अपनी नजर बहती लाश से हटाकर दूसरी ओर ले जाता था। जीवन का यथाथ वह सह नही पाता था। दूर पर पाल ताने कई नावें जाती दिखाई पडती और तब वह आश्वस्त होकर सोचता कि इन जीवधारी मनुष्यो से अच्छी और सुखद तो काठ की नावें हैं जो जड होते हुए भी तैर सकती हैं, दूसरो को पार उतार सकती हैं।

सुमन बी० ए० मे पढता था। उन दिनो गर्मी की छुट्टी थी। उसका छात्रावास *'अशोक निवास' गगा के किनारे ही स्थित था।* इसलिए प्रकृति पूजन मे उसे अधिक बाधा नही पडी। गगा किनारे से लौटकर वह कविता लिखने बैठ जाया करता था। उसकी कविताओ मे प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ किसी अदृश्य आमत्रण से उद्भूत व्यथा और वियोग की पीडा होती थी। वह अदृश्य कभी परमपुरुष होता तो कभी प्रकृति। आम तौर पर वियोग की पीडा किसी नायिका मे आरोपित की जाती थी, जैसे वह समग्र सृष्टि और उसम निहित समाज नायिका हो और अदृश्य सत्ता एक नायक। सुमन नही जानता था या जान-बूझकर अनजान बनने की कोशिश करता था कि जीवन का यथार्थ ही कठोर सत्य है जिसका साक्षात्कार किये बगैर मनुष्य पूणता प्राप्त नही कर सकता।

गगा के किनारे ही उसने काता को पहले-पहल देखा था। बाद मे एक-दूसरे को आते-जाते देखते रहे। सुमन को काता अच्छी लगने लगी। वह सुदर थी, लबी, छरहरी और रग साफ। बडे-बडे बाल गुथे हुए चोटी की शक्ल मे कमर के नीचे तक झूलते रहते थे। उसके मुखमण्डल पर अपूव ताजगी रहती थी और हर समय वह सद्य स्नाता जैसी लगती थी। इससे

यह स्पष्ट था कि वह निर्मल, निष्कलुष और सरल थी। यदि उसके अग प्रत्यग का अलग अलग करके देखा जाय तो वह अतीव सुन्दरी नही कही जा सकती थी, किंतु अपनी समग्रता और सपूर्णता मे वह दिव्य सौंदय की सुरभि से आवेष्टित लगती थी। उसकी आखो मे विचित्र आभा थी जो बरबस देखने वालो के मन मे श्रद्धा उत्पन्न कर देती थी। उसकी इकहरी देह ऐसी लगती थी, मानो कोई सुकोमल बेलि पत्र पुष्पा का आवरण पहने हुए हो।

पाच छ रोज के समानातर मिलन और मूक सभाषण ने ही दोनो को एक दूसरे के लिए अभाव के भाव से भर दिया। सातवें रोज काता घाट पर नही आयी। आठवें रोज भी उसका कहीं अता पता न था। सुमन को लगा, जैसे गगा घाट उसे काटने दौड रहा हो। गगा की लहरें सप-दश बनकर उसके हृदय मे पीडा पहुचाने लगी। दूर चली जाती नौकाए उसके मन को खीचकर बचैन तनहाई के असीम समुद्र की ओर ले जाती-सी लगी। चन्द रोज के भीतर उसने कई कविताए लिख डाली, जिनमे विरह-वेदना साकार हो उठी।

तीसरे दिन काता आ गयी। सुमन अनायास ही उसकी ओर बढने के लिए उठ खडा होने को उद्यत हुआ कि अचानक ही उसे अपनी मूखता पर हसी आ गयी। वह उठता उठता धम्म से घाट की सीढियो पर बैठ गया। कुछ देर तक उसे काता की ओर देखने की हिम्मत भी नही हुई।

सुमन का यह मुखरित उद्वेग काता से छिपा नही रह सका। वह अपने होठो मे ही मुस्कराकर रह गयी और अपने मन का भाव मन मे ही दबा देने की इच्छा को अभिव्यक्ति देने के लिए सीढियो पर पडी ककरिया उठा उठाकर धारा मे फेंकने लगी। ककरिया गगा मे गिरती और वहा छोटा-सा वृत्त पूरी तरह उभर भी नही पाता कि जल का प्रवाह उसे बहा ले जाता। काता अपने हृदय मे उठने वाली बेचैन लहरो के एहसास से सिहर उठी थी। उसके मन मे इधर प्रश्न उठने लगा था कि यह युवक कौन हो सकता है? इसकी सूरत अजानी-बेपहचानी नही लगती। दूर बैठा रहकर भी यह अपने मन की अव्यक्त सुरभि मे उसे अपनी ओर आकर्षित करता-सा लग रहा है।

सुमन सोचता, शायद इसी तरुणी की प्रतीक्षा मे वह अपनी रचनाओ के माध्यम से अदृश्य को आमत्रित करता आ रहा था, शायद यही सौंदय था जिसकी तलाश मे वह बडी बेचैनी से इतजार कर रहा था। कठिनाई यह थी कि एक-दूसरे के पास आने का न तो कोई सपर्क सूत्र था और न कोई बहाना। फिर भी, दोना एक-दूसरे की मनोदशा को समझते परखते रहे। एक दिन बातचीत का ऐसा सुयोग हाथ लगा जिसके सहारे दोना बहुत करीब आ गये।

सीनेट हाल म कवि सम्मेलन था। मच पर हिंदी के जाने माने कवि उपस्थित थे। प्रमुख स्थानीय कवि होने के नाते सुमन को भी उस कवि सम्मेलन मे आमत्रित किया गया था। मच के पीछे बैठे-बठे ही उसने हाल के मध्य मे बायी ओर काता को बैठे देख लिया था। काव्य पाठ करने की जब उसकी बारी आयी, तब वह इतना घबरा गया कि बडी कठिनाई से माइक तक पहुच सका। उसने अपने आपको धिक्कारा। कहा तो वह अपने अह को प्रमुख स्थान देता आया था और कहा वह एक तरुणी की उपस्थिति मे कठ का स्वर खो जाने की आशका से विचलित उठा है।

सुमन के अह ने साथ दिया। उसने जमकर अपनी रचना सुनाई। सभी श्रोता वाह-वाह कर उठे। उसकी कविता मे प्रसाद गुण था। भाषा सहज और सरल थी। उसका कठ मधुर था ही। वह जानबूझकर अपना गीत सुनाते समय काता से आखें चुराता रहा।

कवि सम्मेलन समाप्त होने पर धडकते हुए हृदय से वह हाल के बाहर निकला। लोग बाग उसे सम्मानपूर्वक रास्ता देते जा रहे थे। कुछ लोगा ने भीड से बाहर निकलते समय, उसे सुनाकर, उसके काव्य पाठ की प्रशसा भी की। कई लोगो ने उसके सुरीले कठ पर उसे बधाई दी। सुमन इन तमाम समालोचना और साधुवाद से बेखबर किसी और से मिल पाने की अमिट इच्छा लिए जल्द से जल्द भीड से बाहर निकल जाना चाहता था। वह तेज कदमो से चलता हुआ बाहर सडक पर आ गया, लेकिन काता का कही पता नही था। रात अधिक हो गयी थी। निश्चय ही वह तरुणी अपने परिवार वालो के साथ आयी होगी, इसलिए वह रुक नही पायी। यह सोचकर वह बोझिल कदमो से अपने होस्टल की ओर चल पडा। उस रात

वह सो नही पाया। उसके अह का ठेस पहुची थी। इतन लोगो न उसक काव्यपाठ की सराहना की। हाल मे बैठे अधिकाश लोग कई वार वाह ! वाह ! कर उठे थे। क्या वह तरुणी दा शब्द कहने के लिए मेरी प्रतीक्षा नही कर सकती थी ?

दूसरे दिन गगा घाट पर सुमन थोडी जल्दी पहुच गया। उसकी नजरें गगा की धारा पर जमी हुई थी, किंतु उसके कान और मन किसीकी आहट सुनने को बेचन थे। कुछ देर प्रतीक्षा के बाद आहट हुई। उसने ध्यान से सुना उस आहट मे साडी की हलकी सरसराहट और चूडियो की मधुर खनखनाहट थी। फिर भी वह पूणत देख नही सका। दूर से आती हुई आहट बिल्कुल पास आकर खामोशी मे बदल गयी। न जाने क्या हुआ कि सुमन न मुडकर देखा। पास ही एक सीढी के ऊपर काता खडी थी और उसीकी ओर देख रही थी। घबराहट मे सुमन अपना अह भूल गया और वह जल्दी से उठकर खडा हो गया। दोनो की आखें मिली। काता ने शर्माकर अपनी आखें झुका ली। सुमन अपनको सभालता हुआ बोला

'बैठिये न । मैं आप ही की बाट जोह रहा था।"

'मेरी बाट। क्यो ?" काता ने आहिस्ता से कहा। आज पहली बार सुमन ने तरुणी का स्वर सुना था। कितनी मधुर है यह आवाज, लयबद्ध उन्मादक, सुमन ने सोचा। उसने फिर बैठन का आग्रह किया तो तरुणी आहिस्ता से अपनी साडी के पिछले हिस्से को सभालती हुई बैठ गयी।

"कल आपकी कविता बहुत अच्छी लगी।" काता न खामोशी तोडते हुए कहा। शायद यही सुनने के लिए सुमन तडप रहा था। उसने छूटते ही उत्तर दिया

"लेकिन आप तो घडी भर के लिए रुक भी नही सकी। सम्मेलन समाप्त होते ही मैं बाहर भागकर आया था।"

"चाचा जी मेरे साथ थे। उनसे मुझे बहुत भय लगता है।"

'मैंने भी ऐसा कुछ सोचा था। फिर भी न जाने क्यो, मेरा मन कैसा न कैसा हो गया।'

कुछ देर तक दोनो मे एक दूसरे के परिवार के बारे म बातें होती रही। काता के पिता स्वगवासी हो चुके थे। वह पिछले तीन साल से अपने

चाचा रघुबीर सिह के पास रहती थी। रघुबीर सिह शहर के प्रतिष्ठित वकील थे। काता के तीन छोटे-छोटे भाई थे, जो गाव के हाई स्कूल मे ही पढते थे। उसकी मा भी गाव मे ही रहती थी। काता के पिता तीन साल पहले तक गाव मे खेती का काम देखते थे। घर पर अच्छी-खासी जायदाद थी। लेकिन, काता के पिता के मरने के बाद सारी जमीन बटाई पर लगा दी गयी। काता को रघुबीर जी अपने साथ पटना लेते आए। यह बात रघुबीर जी की पत्नी राजो देवी को अच्छी नही लगी। राजो देवी का पूरा नाम राजकुमारी देवी था। लेकिन, देखने मे वह हिडिम्बा जैसी लगती थी, स्वभाव से ककशा थी। पाच बेटियो के बाद उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था। इससे भी सतोष नही हुआ तो सातवें को कोख मे बुला लिया था। काता अपनी पढाई लिखाई के साथ-साथ अपनी बहना को भी पढाती थी। सबको नहलाने धुलाने, कपडे पहनाने की जिम्मेदारी भी उसीपर थी। छोटी बच्चियो को खिलाने और दो साल के भाई को दूध पिलाने का कठिन काम भी उसे ही करना पडता था। इतना कुछ करके भी वह अपनी चाची को खुश नही कर पायी थी। राजो देवी की फटकार के सामने कोई नौकर पाच छह महीने से अधिक टिक नही पाता था। ऐसी स्थिति मे रसोई का काम भी काता को ही करना पडता था। इसके बावजूद काता अपनी कक्षा मे अच्छे नबर लाती थी। अब वह आई० ए० पास करके बी० ए० के प्रथम वर्ष मे पहुच चुकी थी।

इसी गगाघाट के सामने उसके पिता का दाहसस्कार हुआ था। गगा के इस पार पटना शहर मगध मे पडता है। मगध मे दाह सस्कार करने से मोक्ष नही मिलता, ऐसी मान्यता है। काता अपनी चाची के उपदेश से मुक्ति पाने के लिए शाम के समय जब-तब घाट पर आकर बैठ जाया करती थी। उसके पिता का अवशेष गगा की रेत मे घुल मिल गया था। काता रोज वहा कुछ देर बैठती तो उसे लगता जैसे पिता का आशीर्वाद उसके तन मन को सुख शाति से भर रहा हो।

उस दिन दाना जब चलने को हुए तब काता ने कहा, "कल वाली कविता मुझे दे सकेंगे?"

"अवश्य। कल लिखकर ला दूगा। मैंने और भी कविताए लिखी है।"

सुमन ने किंचित अहं से भरकर कहा। कांता सिर झुकाए हुए ही बोली

"मुझे कल वाली कविता बहुत अच्छी लगी कितने अच्छे भाव हैं— बुलाने पर तुम नहीं आते। मत आओ। जिस रूप में तुम्हें मैंने जाना है, वह तो मैं ही हूं। फिर तुम्हें आग्रह क्यों करूं? तुम्हारे आशीर्वाद की प्रतिध्वनि भी तो मैं ही हूं। मैं चाहकर भी तुमसे विमुख नहीं हो सकता क्योंकि मेरे बिना तुम्हारा चित्त मुदित नहीं हो सकता 'यही भाव था न आपकी उस कविता का।"

सुमन अवाक होकर कांता को देखता रह गया। जिस भाव को उसने छंदबद्ध करके अपने सुरीले कंठ के सहारे श्रोताओं तक पहुंचाया था, वह इतना प्रभावशाली और सार्थक नहीं बन पाया जितना प्रभावशाली कांता ने उसे अपने शब्दों में नया रूप देकर बना दिया। सुमन अपने ही मन के भाव को कांता के शब्दों में सुनकर आत्मविभोर हो उठा। उसे विश्वास नहीं हुआ कि ये भाव उसके अपने हैं। अपना आपा खोकर वह स्वाभाविक ढंग से बोल पड़ा

"कांता जी, मैं आपको कई रोज से देखता आ रहा हूं। कैसे बताऊं कि मेरी नजर में आप क्या हैं। मैं खुद अभी तक समझ नहीं पा रहा हूं। ऐसा लगता है कि बिना समझे बूझे ही मैं आपको अभिन्न मानने लगा हूं। शायद आपको मेरी यह बात बुरी लगे। हो सकता है आज के बाद आप मुझसे मिलना भी पसंद न करें। मैं नहीं जानता तब मेरा क्या होगा? आपसे मिलने से पहले मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि तरुणी वही होती है जो आप हैं। यह भी जान लीजिए कि जो आप हैं वह निश्चित रूप से दूसरी तरुणी नहीं हो सकती।'

कांता मूक होकर सुमन को देखने लगी। उसकी आखें भर आयी थीं। उसके भीतर कहीं सुषुप्त पड़ी हुई वीणा के तार झंकृत हो उठे थे। झंकार की यह ध्वनि मंद से तीव्र, तीव्र से तीव्रतर होती चली गयी। होश संभालने के बाद से अब तक किसी ने उसके लिए ऐसे प्रिय शब्द नहीं कहे थे। वह प्रेम के दो शब्द सुनने को पिछले तीन साल से तड़प रही थी। आज जब उसने सामने बैठे सुमन के मुंह से अपने प्रति अपूर्व आनंददायक वचन सुने

तो वह अपन-आपको सभाल नही पायी । उसकी भरी हुई आखो से दो तीन बूदें पत्थर की सीढियो पर चू पडी ।

२

दोना अब प्राय रोज ही मिलने जुलने लगे । यह मिलन स्थल मात्र गगा घाट ही नही, कालेज और बाकीपुर का बाजार भी बन गया । यह जानते हुए भी कि कल फिर मिलना है, वियोग की घडिया आते ही दोनो कातर हो उठते थे । रोज ही भविष्य के सपने देखे जाते और रोज ही उनके भीतर सोयी स्वाभाविक इच्छाए मर्यादा के गीले, भुरभुराये और सूखे कगारो को तोडकर एक-दूसरे को आत्मसात् कर लेना चाहती थी । सुमन कभी कभी इन इच्छाओ को सचमुच की पिपासा मे बदल देने को बेचैन हो उठता । किंतु, काता के प्रबल विवेक के समक्ष इच्छाओ के ज्वार वापस लौट जाते थे । काता शहर मे रहती जरूर थी, लेकिन उसका मन पूर्णरूपेण गाव की मर्यादित सीधी मिट्टी से सस्कारित था । वह स्वय तपा हुआ सोना थी जिसके भीतर मैल प्रवेश नही कर सकता था ।

सुमन काल्पनिक लोक का निवासी था । वह सोचता था कि उसका जीवन इसी प्रकार पल्लवित और पुष्पित होता रहेगा । उसमे सुरभि है इसलिए ससार उसकी ओर आकुल व्याकुल होकर देखता रहेगा । कवि द्रष्टा होता है । वह ऋषि भी होता है, क्योकि वह मन्त्र की सृष्टि करता है । उसकी कविता से प्रभावित होकर ही तो काता उसके वशीभूत हो चुकी है । इसी रफ्तार से उसका भविष्य सजता सवरता चला जाएगा । सुमन को क्या मालूम कि असीमित सूखी धरती को सिंचित करके शस्य श्यामला बना देने वाली गगा की शाखाए अलकनन्दा, मन्दाकिनी, भागीरथी और पिंडर जहा से फूटती है, वहा मात्र सूखी कठोर चट्टान होती है । उन पहाडो पर न तो खेती लहलहाती है, न फल फूल के वृक्ष होते हैं । उन पहाडो की गोद मे दुख और दारिद्रय के अतिरिक्त केवल भगवान होता है जो तटस्थ साक्षी के रूप मे यह सब देखकर द्रवित और विचलित

नही होता। धरती का बेटा यह दखन की कभी कोशिश भी नही करता कि जिस रसधार की बदौलत वह धन धान्य से पूरित है, वह रसधार प्रवाहित करने वाली मा कितनी विपन्न और व्यग्र है।

सुमन अपने पिता राघव बाबू का बडा और पहला बेटा था। पहली सतान का स्वागत, विशेषकर बेटे का, पूरे परिवार मे बडे उत्साह और धूमधाम स किया जाता है। उसे ईश्वर का अमूल्य प्रसाद समझकर उसकी महत्ता स्थापित की जाती है। गरीब से गरीब परिवार म भी प्रयत्नपूर्वक उसके सुख सुविधा की व्यवस्था की जाती है। घर के लोग एक एक कर उसे गोद मे उठाय फिरते ह। उसके जीवन मे लाड प्यार की कमी नही होने दी जाती। राघव बाबू अच्छे काश्तकार थे। सरैसा परगना मे जमीन बहुत कीमती होती है क्योकि यहा मिच, अदरख, हल्दी और तम्बाकू जैसी फसलें उगाकर महनती किसान चाहे तो रुपयो से घर भर सकते हैं। राघव बाबू के पास चौवालिस बीघा जोत की जमीन थी और व कमठ किसान थे। उन्होने निश्चय कर लिया कि वे सुमन का राजा बेटा की तरह पालन-पोषण करेंगे और पढने के लिए उसे शहर भेजेंगे।

दो साल के बाद विवेकानन्द का जन्म हुआ। इसस सुमन की प्रतिष्ठा और बढ गयी। सुमन को शुभ और सगुनिया सतान माना जाने लगा। यदि बेटी हो गयी होती तो वशक सुमन को यह सम्मान नहीं मिला होता। अभी भी बेटी का जन्म सवण जाति के परिवार म अभिशाप माना जाता है। ऐसा समझा जाता है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक बटी का पिता चिंतामुक्त नही हो सकता।

सुमन को पढान के लिए स्कूल मे दाखिल कराने के साथ-साथ घर पर भी मास्टर रख दिया गया। उसके पहनने के लिए शहर से कपडे खरीद-कर मगवाए जाते। मौसम की नयी सब्जी उसके लिए बनवाई जाती। सुमन जो कुछ खाना चाहता, बस कहने भर की देर थी। वह पकवान बनाकर तुरत सुमन के सामने परोस दिया जाता था।

शहर म भी उसे कोई अभाव नही होने दिया गया। महीने-दो महीने पर गाव से शुद्ध घी, दही आदि पहुचाने के लिए किसी न किसी को पटना भेज दिया जाता था। उसके साथ ही शुद्ध घी म बना हुआ ठेकुआ, नमकीन

और पुआ भेजना उसकी मा भूलती नही थी। पैसे की कभी कोई कमी नही होने दी गयी।

सुमन को इटरमीडिएट मे पहुचने तक इस बात की हवा तक लगन नही दी गयी कि उसके पिता कज मे डूबते जा रहे है और धीरे धीरे घर की जमीन 'सूद भरना' रूपी सुरसा के पट मे समाती चली जा रही है। यथाथ का कठोर रूप उसकी आखो से तब तक ओझल ही रहा जब तक कि वह बी० ए० म नही पहुच गया। इसीलिए काता से मिलन को भी वह अपनी प्रतिभा और प्रारब्ध की चीज मानने लगा था।

बी० ए० का परीक्षाफल निकला। सुमन ने द्वितीय श्रेणी मे अच्छा स्थान प्राप्त किया। काता का विरह अब उससे सहा नही जा रहा था। उसने सोचा कि शादी करने के बाद वह एम० ए० की पढाई जारी रखेगा। काता बी० ए० के दूसरे वष मे पहुच चुकी थी। ऐसी स्थिति म उचित यही होगा कि शादी के बाद कही मकान लेकर वे दोनो साथ रह और आगे की पढाई पूरी कर लें।

सुमन कल्पना के किले बनाता हुआ गाव पहुचा। तभी ऐसी दुघटना हो गयी जिसके चलते एकबारगी ही क्रूर यथाथ उसकी आखा के सामने आ खडा हुआ। यह यथाथ इतना अचानक था और ऐसा वीभत्स कि सुमन जैसा सवेदनशील, भावुक व्यक्ति उसे बर्दाश्त नही कर सका। उसने अपनी पढाई बद करने का निश्चय कर लिया और यह तय किया कि पटना लौटते ही वह कोई काम पकड लेगा। उसके बाद ही वह शादी करेगा।

बात यह हुई कि गाव से कुछ हटकर आम की गाछी (बगीचा) मे गाव भर के छोकरे चेत-कवड्डी क खेल मे मशगूल थे। चल कबड्डी कवडडी कबड्डी कबड्डी की अटूट ध्वनि से पूरा बगीचा गुजायमान हा रहा था। एक बारिश हा जान के बाद भी रेत और धूल उड रही थी। दोपहर के समय गर्मी से बचने के लिए गाव वासी दालान मे या घर के भीतर आराम कर रहे थे। बाबू भुवनश्वर सिह की ऊची हवेली के सामने 'जागरनथिया' भिक्षुक गा रहे थे—

कहवा राम जी के जनम भेलई,
कहवा भेलई सोर

अजुधा मे राम जी के जनम भेलई,
लका मे भेलई सोर
जागरनथिया रे भाई ।

भुवनश्वर सिंह उस गाव मे ही नही, उस जिले के सबसे बडे जमीदार थे। उनके पास ढाई हजार एकड जमीन काश्त मे थी। इसके अतिरिक्त छह सात गावो की जमीदारी भी उनके पास थी। उनके छोटे भाई का नाम था रामेश्वर लेकिन बुद्धि, विवेक के नाम पर वह अपढ और गवार तो था ही, दिमाग से पागल भी था। वह पच्चीस साल का हो चुका था, लेकिन मानसिक रूप से उसकी आयु सात आठ साल से अधिक नही रही होगी। भुवनेश्वर सिंह ने जान-बूझकर उसकी शादी एक ऐसी लडकी से कर दी थी जो गरीब और अनाथ थी। भुवनश्वर सिंह की मशा कुछ और थी। उनका सारा ध्यान अपन एकलौते बेटे विजय की ओर केन्द्रित था जो वर्षों तक देवी की मनौती के बाद पैदा हुआ था। विजय पद्रह साल का हो चुका था, लेकिन वह अब तक आठवे दर्जे मे ही पढता था। देखने मे सुन्दर था, लम्बाई इतनी अधिक थी कि वह अपनी उम्र से ज्यादा दिखता था।

भुवनेश्वर सिंह की योजना थी कि रामेश्वर निस्सतान मर जाए और उसके हिस्से की जायदाद विजय को मिल जाए। इस योजना को भुवनेश्वर सिंह इस ढग से कार्यान्वित करना चाहते थे कि साप भी मर जाए और लाठी भी नही टूटे। गाव वालो को शक नही हो, इसीलिए वे रामश्वर को सबके सामने अत्यधिक प्यार करन का अभिनय करते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने ऐसी लडकी से उसका विवाह करवा दिया जिसके अभिभावक उनके सामन खडा होन की हिम्मत नही कर सके और लोग कह कि वाह! कितने उदार और महान हैं भुवनेश्वर बाबू। उन्होने ऐसे भाई की भी शादी करवा दी, जो पागल है।

कबड्डी खेलने वालो मे विजय के साथ राघव बाबू का छोटा लडका विवेकानन्द भी था। विवेक उम्र मे विजय से छोटा था। किंतु स्कूल मे वह उससे ऊपर की कक्षा मे था। प्रतिभासम्पन्न कुशाग्रबुद्धि और मृदुल स्वभाव का होन के कारण विवेकानन्द गाव के हमउम्र लडको का स्वत अगुवा बन गया था। गाव म पुस्तकालय खोलना हो या पहरे के लिए

स्वयसेवको की व्यवस्था करनी हो, गाव के रैयतो और हरिजनो के विरुद्ध अनाचार पर चर्चा हो या कबड्डी का खेल, विवेकानन्द इन मौको पर सबके आगे होता था। सच्चाई तो यह थी कि सवर्णों के गरीब लडके उसे अपना आदश मानते थे।

विवेकानन्द गाव मे रह जाने के कारण देर से स्कूल मे दाखिला ले सका। बचपन के आरभिक दिन खेल-कूद मे बीत गए। भैंस की चरवाही से लेकर डड-बैठक तक लगाने मे वह गाव के लडको मे सबसे आगे था। स्कूल मे दाखिला लेने के बाद पढाई मे भी वह सबसे आगे जा निकला। भुवनेश्वर बाबू का बेटा विजय खुलकर उससे होड ले नही सकता था, इसलिए उसने उससे दोस्ती कर ली। विवेकानन्द तब दसवें दर्जे मे पढता था।

विजय अपने पिता की बदौलत गाव के लडको मे आगे रहना चाहता था। विजय के पिता भुवनेश्वर सिंह के जैसा रोबदार, नीतिकुशल और खूखार जमीदार इलाके म दूसरा कोई नही था। उनका दबदबा कहानिया बनकर गाव की अपढ, सरल और गवार महिलाओ की जबान पर चढ चुका था। कब किस गाव के साथ भुवनेश्वर सिंह की हसेरी (लठैत) का मुकाबला हुआ और किस प्रकार चार खून हो जाने पर भी कोट कचहरी भुवनेश्वर सिह का कुछ नही बिगाड सकी, यह बात सवविदित थी। इतनी अधिक जमीन का स्वामी होने पर भी मौका मिलते ही, भुवनेश्वर सिंह छोटे-बडे किसानो की जमीन बडी होशियारी के साथ अपने कब्जे मे ले लेते थे। शादी-ब्याह, मर मुकदमा, बाढ सूखा और यज्ञोपवीत अथवा श्राद्ध के अवसर पर स्वेच्छा और सद्भावपूर्वक सहायता के रूप मे कज दे देना उनके नीति-कौशल का अग था। सब जानते थे कि इसके एवज मे उनके पाव के नीचे से धरती तक खिसक जाएगी और खिसक भी जाती थी, फिर भी, भुवनेश्वर सिंह का प्रभाव बडा व्यापक था। मजबूर लोग उनके बडे दालान म, दालान के बाहर बरामदे पर और नीचे के आगन म हमेशा जमघट लगाए रहते थे। ऐसे भुवनेश्वर सिंह का एकलौता बेटा विजय था।

विजय भी चेत कबड्डी मे शामिल था। गाव के तमाम लडके इस तरह के मौको पर उसकी प्रतीक्षा मे रहते थे। उसके जाते ही स्टेशन से पान सिगरेट, बीडी, मिठाइया और नमकीन मगवाए जाते। सभी लडके

अपना सौभाग्य समझकर ग्रहण करते—केवल विवेकानन्द को छोडकर। विवेका सोचता, प्रतिभा, बुद्धि, श्रम और शारीरिक शक्ति मे वह विजय से कही आगे है, फिर वह उसका नेतृत्व क्या स्वीकार करे ? क्या केवल इसी लिए कि वह बडे जमीदार का बेटा है। होश सभालते ही उसमे सामाजिक व्यवस्था देखने और समझने की सूझ बूझ आ गयी थी। वह देख सकता था कि भुवनेश्वर सिंह किस रीति-नीति से अपनी जायदाद बढाते चले जा रहे हैं और इस रीति नीति मे वह सरासर अन्याय देखता था।

विजय जानता था कि विवेकानन्द पर वैभव और प्रभुता का आतक कारगर नही होगा। उसके दिमाग मे यह बात भी बैठ गयी थी कि यदि गाव के हमउम्रो में अपना प्रभाव कायम करना है तो विवेकानन्द का मित्र बनाए रखना होगा। विवेकानन्द की सगत मे रहकर न जाने क्यो विजय को भीतर ही भीतर प्रसन्नता का अनुभव होता था। कुरूप शरीर को ढकने के लिए स्वच्छ सुदर वस्त्र चाहिए। विजय के लिए विवेकानद आरभ में स्वच्छ सुदर वस्त्र ही था जो बाद मे चलकर सच्चे मित्र के रूप मे बदल गया।

हवेली के बाहर जागरनथिया भिक्षुक गाये चले जा रहे थे। चिल चिलाती धूप मे गाव की पगडडी, खेत खलिहान और धूल से भरी सडक पर जागरनथिया भिक्षुओ द्वारा वर्णित राम रावण का युद्ध एक अनोखा डर पैदा कर रहा था। जहा भी निगाह पडती, लगता कि आग की चमकती छोटी छोटी चिनगारिया सतह को छोडकर पक्तिबद्ध हो ऊपर उठ रही हैं। बीच-बीच मे हवा का गम झोका आ जाता, जैसे इस्पात के कारखाने की भट्ठी का दरवाजा कोई रह रहकर खोल देता हो। मकानो मे बधे या छाया मे बैठे पशु पागुर कर रहे थे और मक्खियो को देह पर से उडाने के लिए पूछ झाडते जाते और बीच-बीच में अपनी समूची देह का चम झकझोर देते तब ऐसा लगता जैसे दोनो छोर पर कसकर बधे हुए स्वरहीन मोटे तार को बीच से खीचकर छोड दिया गया हो।

भुवनेश्वर सिंह की अधेड पत्नी खाट के नीचे पीढे पर बैठी हाथ मुह चमकाकर दबे स्वर मे बातें कर रही थी "अगर इस ओर से कान मे तेल डाले पडे रहे तो एक रोज नाक कट जाएगी। फिर मुख मे कालिख पोतकर दूसरा की पचायत करते रहिएगा।"

"तुम नही समझोगी।" उदार सिंह ने चिलम की आग पर पडी हुई राख की पत को गौर से देखते हुए अपनी बात जारी रखी, "रामेश्वर तो आधा पागल है ही। उसके दोनो पावो मे भयकर चमरोग हो गया है, सो अलग। इन रोगो से मुक्ति उसे भगवान ही दे पायेंगे। उसकी पत्नी राधा थोडी पढी लिखी है। जवान और खूबसूरत है। स्वाभाविक ही है कि वह अपने निकम्मे, विक्षिप्त और असाध्य रोग से पीडित पति से विमुख होकर कही और ध्यान लगाए।"

"तो आप चाहते है कि बहू उस शहरी मास्टर धर्मेंद्र के साथ मुह काला कर भाग जाए? फिर हमारे परिवार का क्या होगा? हमारी इज्जत भी तो खाक मे मिल जाएगी।"

भुवनेश्वर सिंह अपनी पत्नी की बात सुनकर मन्द मन्द हसे। हसी की ध्वनि विचित्र थी जैसे दूर पर आटा मिल के चलन पर आवाज होती है। वैसी ही हसी हसते हुए बोले

"इज्जत धन से बनती है। जीवन जायदाद पर टिका होता है। जिस बात की तुम्ह आशका है, उसे घटित होने दो। एक निकम्मा आदमी विजय की सम्पत्ति का कानूनी हिस्सेदार बना बैठा है। ऐसी स्थिति पदा होने दो कि रास्ता साफ करने का मौका मिल जाए।"

भुवनेश्वर सिंह फिर हसते हुए हुक्का अपनी पत्नी को थमाकर, बाहर दालान पर चले आए। जागरनथिया भिक्षुओ को कुछ दे दिवाकर उन्होन विदा ही किया था कि आम के बगीचे की तरफ से भीड आती दिखाई पडी। भुवनेश्वर सिंह गौर से उस ओर दखने लगे। धीरे धीरे उनके कठोर चेहरे पर चिन्ता की रेखाए गहरी होने लगी। भीड जब बिल्कुल पास आ गयी तब उन्होंने देखा कि विजय को छह सात आदमी हाथो मे उठाए हुए है और उसका पूरा चेहरा खून से लहू लुहान है।

जागरनथिया भिक्षुक कुछ दूर पर स्थित राघव बाबू के दरवाजे पर गा रहे थे

> अजुधा मे राम जी के जनम भेलई,
> लका मे भेलई सोर
> जागरनथिया रे भाई।

४

आम की गाछी म चेत-कबड्डी का खेल जोरा पर था। एक दल मे विजय था और दूसरे दल मे विवेकानन्द। विवेकानन्द के दल में ऐसे लडके भी थे जो स्वभाव से ही भयभीत रहा करते थे। उन लडकों के माता पिता हमेशा उन्हें धमकाया करते थे, "देखो बेटे, विजय बाबू राजा हैं, उनके भरोसे हमारी घर गहस्थी चलती है। साथ रहना है तो रह, लेकिन उनके मन के खिलाफ कभी कोई काम मत करना।" मा-बाप की यह चेतावनी कुछ लडकों के दिल दिमाग पर भय बनकर बैठ गयी थी। भय न उनका अस्तित्व निगल लिया था। भय से क्रोध उत्पन्न होता है या दैन्य। जब अस्तित्व और अस्मिता ही नहीं रही, तब क्रोध कहा से आएगा। इसलिए इस तरह के लडके हर तरह से विजय को खुश करने की फिराक मे लगे रहते थे।

"चेत कबड्डी कबड्डी कबड्डी कबड्डी" बोलते हुए विवेकानन्द की तरफ के खिलाडी बडी तेजी के साथ विजय के दल में घुस जाते और उसके पास तक पहुचते ही वे जानबूझकर उसकी पकड में आ जाते और सास तोड देते थे। एक एक करके कई खिलाडी गए और विजय की पकड मे आकर सास तोड देते रहे। विजय अपनी इस विजय पर गर्वोन्नत होकर विवेकानन्द के दल की ओर इस प्रकार देखने लगता, जैसे सिंह अपने शिकार को देखता है। हकीकत तो यह थी कि वे लडके विजय की खुशामद म अपने आपको समर्पित कर देते थे। खेल के बाद विजय ऐसे लडकों को इनाम भी दिया करता था।

विवेकानन्द से यह बात छिपी हुई नही थी। फिर भी, पराजय कोई देखना नही चाहता, भले ही आमना सामना खेल में हो या युद्ध में। विवेकानन्द ने अपने बचे हुए चार साथियो पर विहगम दृष्टि डाली। उसके भीतर का स्वाभिमान चेहरे पर दप दप करने लगा। किन्तु उसकी आखो मे क्रोध या प्रतिशोध का भाव नही था था केवल आत्मविश्वास। वह 'चेत कबड्डी कबड्डी' करता हुआ विजय के दल मे जा घुसा। देखते देखते उसने बडी फुर्ती के साथ पाच खिलाडियो को छू दिया और वह विजय की ओर तीर की गति से बढा। विवेकानन्द को अपनी ओर आते देखकर विजय

घबरा गया। वह पीछे की ओर भागा। तब तक विवेकानन्द उसकी पीठ पर आ धमका था। उसने अपने हाथ से विजय के कंधे को पकड़ना चाहा। दोनों की गति बहुत तेज थी। विजय अपने-आपको बचाने की धुन मे था। वह देख भी न सका कि सामने आम का पुराना विशाल पेड है। घबराहट के मारे उसे ध्यान नही रहा और उसी पेड से वह जा टकराया।

विवेकानन्द उसे छूकर अपनी ओर लौट आया था। जब उसने सिर घुमाकर देखा तो उसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ। विजय पेड की जड के पास औंधा पडा हुआ था। विवेकानन्द चिंतातुर होकर दौडता हुआ विजय के पास आ पहुचा। वह उसे उठाकर देखते ही सन्न रह गया। विजय का सिर फूट गया था और भाल के ऊपर से रक्त की धारा बह रही थी। उसकी नाक और मुह से भी रक्त आ रहा था। विवेकानन्द ने तीन-चार बार जोर-जोर से विजय को पुकारा। विजय ने कोई जवाब नही दिया। उसकी आखें बन्द थीं। अग प्रत्यग शिथिल पड गए थे। विवेकानन्द ने उसे झकझोरकर होश में लाना चाहा। किन्तु, होश मे आना तो दूर विजय ने पलकें तक नही खोलीं। विवेकानन्द घबरा गया। क्षण भर के लिए उसके हाथ पाव ठंडे हो गए। अब क्या होगा ? यह सोचते ही विवेकानन्द सभावित परिणाम की कल्पना से आतंकित हो उठा। जमीदारों के प्रति घृणा और आक्रोश का भाव रखते हुए भी वह विजय को अपना मित्र मानता था। उसकी यह दशा देख-कर वह कातर हो उठा। विलम्ब होने से कहीं कोई अघटनीय घटना नही घट जाय, यह विचार आते ही विवेकानन्द विजय को उठाकर हवेली की ओर ले जाने की तैयारी करने लगा कि उसी समय वहा रामेश्वर सिंह आ खडा हुआ उसने पहले तो विजय को अनासक्त भाव से देखा। कुछ देर तक वह इसी मुद्रा में उसे देखता रहा। बच्चों की भीड सहमी सी खडी रही। अचानक रामेश्वर सिह की नजरें भीड की तरफ मुड गयी। वहा एकत्र लडके सहम-कर थोडा पीछे हट गए। रामेश्वर सिंह था तो अद्ध पागल, किन्तु वह अपनी अहमियत से अनजान नही था। उसने आखें तरेरकर पूछा

"क्यों खडे खडे मुह ताक रहे हो तुम लोग ?"

लडकों ने इस बार रामेश्वर सिंह को देखा और दूसरी बार मूर्च्छित पडे विजय को। रामेश्वर सिंह को शायद अब जाकर स्थिति का भान हुआ।

उसकी आख लाल हो गयी। उसने गरजकर पूछा

"किस स्साले हरामजादे न इसे मारा है ? मैं उसकी ।"

रामश्वर सिंह के मुह से भद्दी-भद्दी गालिया फूट निकलने लगीं। जमी हुई भीड फैलने लगी। कुछ लडके भाग खडे हुए। रामेश्वर सिंह ने फिर गालिया दी और पूछा, "बालत क्या नहीं ?

"वि विक् विवका विवकान द न।'

एक लडके न हिम्मत करके कहा।

"कहा है, विवेकान द का बच्चा स्साला। मैं उसकी खाल खीच लूगा।"

वहा बचे खुचे लडका न देखा, विवकान द का कहीं अता पता नहीं था। किसीको आभास तक नही हुआ, और वह वहा स छू मन्तर हो गया। रामश्वर सिंह को अकमण्य की तरह खडे-खडे केवल गाली बकत देखकर कुछ समझदार लडको ने मिलकर विजय को घर पहुचा दिया। थोडे उपचार के बाद ही उसे होश आ गया था। धर्मे द्र मास्टर हर फन की थोडी बहुत जानकारी रखता था। उसने खून साफ कर दिया। विजय को चोट तो आयी थी, लेकिन इतनी नही कि चि ता की जाय। थोडी ही दर म खून का बहना ब द हो गया था। होश मे आने पर उसे बराडी मिलाकर गरम दूध पिला दिया गया। मास्टर जी ने कहा

' चोट गहरी नही है। घबराहट क मारे विजय बहोश हो गया था। अब बिल्कुल ठीक है।"

असली चोट भुवनेश्वर सिंह को लगी थी। राघव सिंह का बेटा विवेका न द उनके बेटे का मार गिराकर सिर फाड दे, यह उ हे असह्य लगा। विवेका की इतनी हिम्मत हो गयी ? भुवनेश्वर सिंह तिलमिला उठे। राघव सिंह ने उनसे अठारह हजार रुपय कज ले रखे थे। सूद-दर-सूद लगाकर सैंतालीस हजार रुपय बनते थे, लेकिन भुवनेश्वर सिंह ने कुछ सोच-समझकर ढील दे रखी थी। उस गाव मे वैभव की दष्टि स दोना परिवार म कोई तुलना नहीं थी। भुवनेश्वर सिंह यदि आकाश म थे, तो राघव सिंह जमीन पर। फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से नम्बर दो पर राघव सिंह ही आते थे। अपनी कर्मठता, शील, स्वभाव और सूझ बूझ के बल पर राघव

सिंह ने समाज म अपनी जगह बना ली थी। उनका एक बेटा शहर मे रह-कर कालेज मे पढ़ता था, दूसरा बेटा गाव के स्कूल मे। ये बातें भुवनेश्वर सिंह को अखरती थी। वे मौके की तलाश मे बैठे थे। सीधा प्रहार विपरीत प्रभाव उत्पन्न कर सकता था। यह उनकी नीति के अनुरूप होता भी नही। वे तो परेशान इस बात से थे कि उनके जैसे वटवृक्ष के नीचे राघव सिंह जैसा शीशम का पेड़ उग कैसे आया? भुवनेश्वर बाबू ने योजना बनाकर राघव बाबू को कर्ज देना शुरू किया था। वे जिसे भी कर्ज देते, उसे यह समझ कर देते थे कि वह व्यक्ति कर्ज का भुगतान कर नही पायेगा। सूद दर सूद बढ़ता जायेगा, और एक दिन मजबूर होकर उसे अपनी जमीन जायदाद उसके नाम लिख देनी पड़ेगी।

सुमन के जन्म के बाद राघव सिंह का खर्च बढ गया था। कर्ज शायद तब भी नही लेना पड़ता यदि वे अति उत्साह और अति प्रेम मे आकर सुमन को राजकुमारो की तरह रहने की आदत न डाल देते। कर्ज सुरंग मे लगी आग की तरह है, जो धीरे धीरे बढकर पहाड तक को उडा देती है। राघव सिंह कर्ज के साथ-साथ सूद दर सूद की लपेट मे आते जा रहे थे। वे नही चाहते थे कि उनकी आर्थिक स्थिति का आभास तक उनके बेटो को मिल सके। विवेकानन्द को स्थिति की थोडी-बहुत जानकारी थी। फिर भी वह अपने मस्त स्वभाव के कारण इन बातो की ओर से लापरवाह था। सुमन जो भी सुविधा चाहता, उसे तुरत वह प्राप्त हो जाती। स्वभाव से भी वह अव्यावहारिक था। उसने यह जानने की कभी कोशिश नही की कि उसके पिता की आमदनी क्या है?

भुवनेश्वर सिंह की हवेली के बाहर गाव के चापलूस लोग इकटठे हो गये थे। विजय पूरी तरह खतरे से बाहर हो चुका था। सब जानते थे कि घाव गहरा नही है। धीरे धीरे यह भी मालूम हो गया कि विवेकानन्द ने विजय को जानबूझकर धक्का नही दिया, बल्कि विजय खेल खेल मे अपने को बचाने के लिए पेड से जा टकराया था। हवेली के भीतर गरजती बरसती अपनी मा को विजय ने खुद कहा था

"क्यो सिर पर आसमान उठा लिया है मा? विवेकानन्द का इसमे क्या कसूर है कि उसे कोसती जा रही हो। उसने तो मुझे छू लेना चाहा और मैं

बचने के लिए तेज भागा। सामने का पेड़ रोज ही देखता था रहा था लेकिन उस समय देख नहीं पाया और उससे जा टकराया।"

विजय की बातों का उसकी मां पर कोई असर नहीं पड़ा। वह समझती थी कि उसके पति के इशारे पर ही गांव में सूरज का उदय और अस्त होता है, फिर राघव के बेटे विवेकानन्द की हिम्मत क्या इतनी बढ़ गयी? वह उसके बेटे का छूने के लिए दौड़ा ही क्या? क्या वह नहीं जानता कि उसका बाप राघव सिंह इसी हवेली की कृपा पर मूंछें चढ़ाये फिरता है? वह अपने पति पर गुस्सा उतारती हुई बोली

"आपने ही उस छोकरे को शह दे-देकर सिर चढ़ा रखा है। उसकी इतनी हिम्मत कि मेरे बेटे का सिर फोड़ दे। वह तो भगवान की कृपा हुई जो मेरा लाल बच गया। और बुलाइये उस बदमाश को अपनी हवेली पर पढ़ने के लिए। मास्टर रखा आपने विजय को पढ़ाने के लिए और मौका दे दिया उस दरिद्दर के बेटे को। क्या उसकी संगति में रहकर विजय लिखने पढ़ने में मन लगायेगा? अरे, उस छोटे खानदान के छोकरे की संगति में यही सब होना था। वह तो खेल कबड्डी, ताश, जुआ का खेल सिखाकर मेरे बेटे को बरबाद कर देना चाहता है।"

"क्यों बेकार बक बक किये जा रहे हो। बच्चों के झगड़ों में सयाने नहीं कूदा करते।" भुवनेश्वर सिंह ने अपनी पत्नी को समझाने के ख्याल से कहा। उनकी पत्नी और भड़क उठी। बोली

"मैं बक बक करती हूं और आप? आप क्या सभी काम सोच-समझकर किया करते हैं? इसीलिए आप विवेका के बाप को दान पर दान देते जा रहे हैं। हमारे पैसे के बल पर उसका बेटा शहर में ठाट-बाट से रहकर ऊंची पढ़ाई कर रहा है। एक लम्पट मास्टर को अपने घर में घुसा लिया है जो विजय के बदले विवेका को पढ़ाया करता है। यही है आपकी बुद्धिमानी का सबूत? कान खोलकर सुन लीजिए। जिस तरह का आपका रवैया है उसका नतीजा आपको भुगतना पड़ेगा। आज विवेका ने आपके बेटे को मारा है, कल वह आपका सिर फोड़ डालेगा और यह जो छला मास्टर है, धर्मेन्द्र उद्दनाम कैसा है? धर्मेन्द्र वह आपकी इज्जत को।"

"क्या मैं अन्दर आ सकता हूं?" भुवनेश्वर सिंह की पत्नी ने अपनी

बात पूरी भी नही की थी कि धर्मेन्द्र मास्टर की आवाज सुनाई पडी। भुवनेश्वर सिंह की पत्नी ने सिर का आचल नाक तक खीचकर सरका लिया और दूसरी ओर मुह घुमाकर खडी हो गयी। इस मौके पर धर्मेन्द्र का वहा आना भुवनेश्वर बाबू को अच्छा नही लगा, फिर भी उन्होने गम्भीर दृष्टि से मास्टर धर्मेन्द्र की ओर देखा और कहा

"आ जाइए।"

धर्मेन्द्र मास्टर ने भीतर जाकर विजय के सिर पर हाथ रखते पूछा, "कैसी तबीयत है ?"

"ठीक है। घाव मे थोडी टीस हो रही है।"

"घाव ताजा है न, इसीसे। दो-तीन रोज मे यह जख्म भर जायेगा। मैंने तो कितनी बार मना किया कि चेत-कबड्डी का खेल तुम्हारे लायक नही है। अब उस ओर पैर भी मत देना। अच्छा।"

"जी।" विजय ने अस्फुट आवाज के साथ अपना सिर हिला दिया। मास्टर जी ने उसके गाल को थपथपाकर बाहर जाते जाते भुवनेश्वर बाबू से कहा

"बच्चा है। खेल कूद की ओर झुकना स्वाभाविक है। अब ठोकर लगी है तो होश आ जायेगा। लेकिन, एक बात है। राघव बाबू को बुलाकर आप उन्हे बता दीजिए कि विवेका ने ठीक काम नही किया।। सतर्कता नही बरतेंगे तो कल कुछ अनहोनी भी हो सकती है।"

भुवनेश्वर सिंह ने वेधक दृष्टि स धर्मेन्द्र की ओर देखा। दोनो की आखे मिली। उस दृष्टि को देखकर मास्टर जी सिर से पाव तक काप उठे। भुवनेश्वर सिंह ने उसी गम्भीर मुद्रा मे धीरे से कहा

"सतर्कता तो बरतनी ही पडेगी। लेकिन, होनी को कौन टाल सकता है।"

धर्मेन्द्र पढे लिखे व्यक्ति थे। वे जानते थे कि जमीदार साहब नाप-तौल कर बोलने वाले लोगो मे है। इसलिए, जमीदार के कथन के अनेक अर्थ लगाते हुए वे जल्दी से हवेली के बाहर चले गये। भुवनेश्वर सिंह ने राघव बाबू को बुला भेजा। राघव बाबू खुद परेशान थे। अपने पुत्र विवेकानन्द के प्रति उनका गुस्सा काफूर हो चुका था, क्योंकि उसका कही अता पता

नहीं था। दुर्घटना की खबर सुनते ही राघव बाबू बोल उठे थे

'आने दो उस बदमाश को, उसने विजय का सिर फोड़ा है, मैं उसका अजर पजर ढीला कर दूंगा।"

किसका अजर पजर ढीला करते राघव बाबू। मिनट घंटों में बदले गये। शाम उतर आयी। गाय गोरू सब गांव के बाहर के चरागाह से वापस लौट आये। घरों में दिये और लालटेन जल गये। दूध दुहने का वक्त भी गुजर गया और विवेकानन्द की मां घर के बाहर अंधेरे बरामदे में बैठी अपने बेटे के लिए विलाप करती रही

"नहीं नहीं अब मेरा बेटा घर नहीं आयेगा। वह जरूर अनर्थ कर बैठेगा। परले सिरे का जिद्दी है वह।"

राघव बाबू वहीं खड़े थे। विवेकानन्द के प्रति क्रोध की जगह बेचैनी उभर आयी थी। कहीं वह सचमुच ही लापता तो नहीं हो गया? फिर क्या होगा? उसकी मां सत्यभामा तो रो रोकर जान दे देगी। वे खुद भी तो अपने पमान के बिना नहीं रह सकते। सुमन उन दिनों गांव आया हुआ था। वह विवेकानन्द को ढूंढने के लिए रेलवे स्टेशन गया हुआ था। राघव बाबू को विश्वास था कि विवेकानन्द स्टेशन की तरफ भागा होगा। सुमन निश्चित रूप से उसे पकड़ लायेगा। इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी को सांत्वना देते कहा

"बेकार घबरा रही हो। सझौता का वक्त हो गया है। उठो, लालटेन जलाकर सभी कमरों में रोशनी कर दो। वैसे ही लक्ष्मी हमसे रूठी हुई हैं।"

"तुम्हें लक्ष्मी की चिन्ता सता रही है। जिन्दगी भर खुरपी ठेलते ठेलते मर गये लेकिन जमींदार का कर्जा नहीं उतार सके। पैसे के सिवाय तुम्हें और कुछ सूझता भी है? तुम्हारे पास पैसा तो नहीं ही रहा, अब सोने जैसा बेटा भी कहीं चला गया। करो उसका अजर पजर ढीला। तुम जो चाहते थे वही हुआ। कह देती हूं, अगर प्रमोद नहीं आया तो मैं कुएं में कूदकर जान दे दूंगी।

उसी समय सुमन लौटकर आ गया। वह अकेला था। उसका चेहरा उदास था। उसपर ज्योंही मां की नजर पड़ी, वह सूनी सूनी आंखों से कुछ देर तक बड़े बेटे की ओर देखती रही और फिर अचानक ही पुक्का

फाडकर गाने लगी।

सत्यभामा कलजा पीट-पीटकर राती हुई टूट हुए स्वरो म विलाप भी करती जाती थी

"अब मैं नही बचूगी। मेरा बेटा अब लौटकर घर नही आयेगा।"

कलेजा दहला देने वाला वह रुदन आसपास के घरा से टकराकर लौट आता था। कुछ ही देर म कई महिलाए वहा आ जुटी। विवेकानन्द की मा पछाड खा खाकर जमीन पर गिर पडती थी। बडी कठिनाई से कई महिलाओ न मिलकर उस अपनी बाहा मे पकड रखा था। जब भीतर का दुख आसुओ के रूप म बिछलकर बाहर आ गया तब सत्यभामा का मन कुछ स्थिर हुआ। अवसर देखकर सुमन न विश्वास के स्वर मे कहा

"मा, जहा कही भी प्रमोद होगा, सकुशल ही हागा। मा हाकर भी तुम उस नही पहचानती हो। वह ऐसा कुछ नही करेगा जिसकी तुम्हे आशका है। मैं ठीक कहता हू। उसकी इच्छा शक्ति का मै पहचानता हू। चलो, उठो।"

विवेकानन्द की मा महिलाओ का सहारा लेकर उठी और निष्प्राण की तरह डगमगाती हुई घर के भीतर चली गयी। सुमन न स्वय लालटेनें जलायी। जब वह एक लालटेन लेकर बाहर दालान पर आया तब उसे मालूम हुआ कि उसके पिता को जमींदार के यहा से बुलावा आया था। सुमन के मन म कुछ खटका हुआ। वह लालटन दालान पर रखकर जमीदार की हवेली म जा पहुचा।

जमीदार की हवेली के दो हिस्से थे। बायी तरफ दालान था और दाहिनी तरफ जनानखाना। महिलाआ के रहन का यह घर बहुत बडा था, लगभग चौन्ह पन्द्रह कट्ठे मे फैला हुआ। चारो तरफ स कमरे बने हुए थे जिनके सामने बरामदे थे। बीच म बडा सा आगन था। सडक के सामने के सभी घर ईंट के बन हुए थे आर छत सीमेंट की। पिछली तरफ के घर खपडपोश थे। पूरा दालान इट का बना हुआ था। बीच मे बहुत बडा हाल था। दायें बायें बडे बडे कमरे थे। तीन तरफ बहुत चौडा बरामदा था जो दीवाने-आम के रूप म काम आता था और जब भुवनेश्वर सिंह की मशा सबके सामने किसीकी भत्सना करने की होती तब वे सामने वाले बरामदे

पर ही बैठा करते थे।

सुमन बरामदे के नीचे ही ठिठककर खड़ा हो गया। वहां अंधेरा था। इसलिए किसीकी नजर उसपर न पड़ी। बरामदे पर जो वार्तालाप चल रहा था, उसे सुनकर सुमन का सारा कल्पनालोक रूई के फाहे की तरह बिखर गया। भुवनेश्वर सिंह आराम कुर्सी पर बैठे थे और उसके पिता वहीं पास में रखी चौकी पर बैठे थे, सिर झुकाए, पांव नीचे किए। भुवनेश्वर सिंह के स्वर में अभद्रता थी। वे कह रहे थे

"आप अपने रक्त बेटे को राजकुमार बनाने के लिए जिस आदमी से छियालीस सैंतालीस हजार रुपये कर्ज ले चुके हैं उसका बेटा तो जन्म से ही राजकुमार है। विवेकानन्द और आप इतने कृतघ्न निकलेंगे यह मैंने कभी नहीं सोचा था। जब कभी आप दीन हीन होकर कर्ज मांगने आये, आपपर दया करके मैंने उदारतापूर्वक आपकी मांग पूरी की। इसका फल आपसे मुझे जो मिला, वह आप देख ही रहे हैं। अब बेहतर यही होगा कि या कर्ज की पूरी रकम आप मुझे महीने-भर में लौटा दें या उस कीमत की जमीन विजय के नाम से लिख दें।"

सुमन की आंखों के आगे उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य भयावह रूप में चक्कर काटने लगा। साथ ही साथ उसका सिर भी घूम गया। किसी तरह उसने अपने-आपको संभाला और उल्टे पांव वहां से घर लौट गया। तभी उसने निश्चय कर लिया कि वह बी० ए० की पढ़ाई पूरी करने के लिए घर से कुछ नहीं लेगा। उसे कोई न कोई काम ढूंढ़ना होगा और होस्टल भी छोड़ देना होगा। कल्पनालोक में विचरण करने वाले कवि और संवेदनशील सुमन को अचानक ही ऐसे यथार्थ के सामने आ खड़ा होना पड़ा कि उसके जीवन की दिशा ही पूरी तरह बदल गयी। उसके भीतर का अहं क्षोभ, कुंठा और निराशा में परिवर्तित होकर हीनभावना के रूप में उसके व्यक्तित्व से लिपट गया।

५

विवकानन्द को क्या सूझा कि गाडी से सरपट भागता हुआ वह सीधे रेलवे स्टेशन जा पहुचा। हवा गुम ही नही थी, वातावरण म उमस भी थी। बुकिंग आफिस के सामने वाले छोटे से हाल मे कुछ गरीब यात्री और दो-तीन भिखमगे दीवार से सटकर सो रहे थे। उनके शरीर से पसीना चू-चूकर फश को भिगो रहा था। एक भिखमगे के पास एक बीमार कुत्ता मह बाये बैठा हुआ जोर-जोर स हाफ रहा था। उसकी जीभ का काफी बडा हिस्सा बाहर निकला हुआ था। बुकिंग आफिस की खिडकी के पास पाच-छह यात्री जमघट लगाये टिकट माग रहे थे।

विवेकानन्द ने चारो तरफ शकालु दष्टि से देखा कि कही उसकी जान पहचान का कोई आदमी उसे देख तो नही रहा है। फिर न जाने क्या उसके होठो पर स्पष्ट मुस्कराहट दौड आयी। शायद उसने मन ही मन सोचा कि वह क्यो डर रहा है? उसका कसूर क्या है? चेत कबड्डी का खेल वैसा ही होता है। जानबूझकर उसने विजय को धक्का नही दिया था। वह तो विजय को प्यार भी करता है। आर्थिक विपमता के बावजूद कही न कही उसका मन विजय से मिलता-जुलता है। बेशक, विजय जिस व्यवस्था का प्रतिनिधि है, वह व्यवस्था विवेकानन्द को फूटी आख भी नही सुहाती। विजय का पिता राय साहब का खिताब पाने के लिए हुकूमत की चापलूसी मे लगे रहते हैं। गलत सलत काम करते हैं। बेकसूरो को पुलिस से सजा दिलवाने से बाज नही आते। और विवेकानन्द विदेशी हुकूमत को नफरत की नजर से देखता था। वह ऐसी व्यवस्था को पसद नही करता था, जिसम चद लोगो का सुख और सत्ता के सिहासन पर बैठा दिया जाय ताकि वे सपूण समाज को जूते के नीचे रख सकें।

यह वह समय था, जब गाधी जी का आदोलन भारत भर म फैल चुका था। भारत में ही नही, इगलैड, जमनी, चीन और अमेरिका मे भी गाधी जी का नाम ईर्ष्या अथवा श्रद्धा के साथ लिया जाने लगा था। गाव गाव म महात्मा गाधी जी के स्वराज्य की लहर पहुच चुकी थी। महात्मा गाधी तीन बार राष्ट्रीय पैमाने पर जन-आंदोलन छेड चुके थे। आम जनता

निर्भीक हो चुकी थी। विवेकानन्द ने अपने पिता से ही कुछ वर्ष पहले सुना था कि गांव में एक लाल पगड़ी वाला सिपाही भी आ जाय तो उसका स्वागत-सत्कार दामाद की तरह किया जाता था। ढाई तीन हजार बीघा जमीन के मालिक भुवनेश्वर सिंह तक उस सिपाही को कुर्सी पर बैठाने में गर्व का अनुभव करते थे। उसके लिए कचौड़ी, हलुआ, रबड़ी और दही के नाश्ते का इंतजाम किया जाता था। विदाई में उसे समुचित राशि भी दी जाती थी। लेकिन पिछले चार वर्षों में स्थिति काफी बदल गयी थी।

पिछले साल गांधी जी के एक बड़े शिष्य समस्तीपुर की आम सभा में आये थे। हुकूमत ने सभा करने पर रोक लगा दी थी। चारों तरफ पुलिस तैनात कर दी गयी थी। लाठी वाली पुलिस ही नहीं, बन्दूकधारी पुलिस भी वहां मौजूद थी। लेकिन आम लोगों ने हुकूमत के इस बल प्रदर्शन की कोई परवाह नहीं की। विवेकानन्द भी वहां चुपचाप जा पहुंचा था और उसने देखा कि चारों तरफ सिर ही सिर दिखाई पड़ते थे। तिल धरने को भी जगह नहीं थी। तभी उसने महसूस किया था कि महात्मा गांधी कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। वह कोई जादूगर हैं, जिसने देखते देखते भारत के आम लोगों में स्वाभिमान और आत्मबल पैदा कर दिया है।

विवेकानन्द स्वभाव से निर्भीक था। उसके मन में एक बात बैठ गयी थी कि जो सही राह पर चलता है उसे भय छू नहीं सकता। आज इस छोटी-सी घटना ने उसमें जो भाव भर दिया और जिसके चलते वह भाग खड़ा हुआ, क्या वह भय का भाव था? विवेकानन्द ने विचार किया, नहीं, यह भय प्रेम का भय था। शक्ति और सत्ता का नहीं। इस घटना से उसके पिता को दुख पहुंचा होगा। विजय को भी शायद तकलीफ पहुंची हो पर वह क्या करता! रामेश्वर बाबू ने आते ही गाली गलौज शुरू कर दी थी। यदि वह उनके इस अभद्र व्यवहार का प्रतिकार करता तो दुबारा झंझट उठ खड़ा होता। बात अधिक बिगड़ जाती और बाद में सभी मिलकर उसीपर दोषारोपण करते। गांव में रहकर वह अपने पिता और विजय की सही स्थिति बताने में असमर्थ हो जाता। विवेक ने सोचा कुछ दिनों के लिए गांव से गायब हो जाने में ही भलाई है। इसका निर्णय समय पर छोड़ देना ही बेहतर है। भुवनेश्वर सिंह जैसा कुटिल जमींदार निश्चित रूप से उसके

पिता को दबाना चाहेगा और यदि वह स्वय अन्तर्धान हो जाये तो हो सकता ह कि ऐसी स्थिति मे भुवनेश्वर सिंह को अपना क्रोध जाहिर करने का मौका न मिले।

विवेकानन्द यही सब सोच रहा था कि सामने प्लेटफाम पर एक गाडी आकर लग गयी। वह कहीं न कहीं चल देने का निणय कर चुका था। इसलिए सामने के डिब्बे मे जाकर बैठ गया। रास्ते मे कई स्टेशन आये जहा गाडी रुकती हुई आगे बढती गयी। विवेकानन्द घटो तक ऊहापोह मे ही डूबा रहा। वह जान भी नहीं पाया कि गाडी कहा से कहा जा पहुची। शायद वह इसी प्रकार गाडी मे बैठा बैठा कहीं का कहीं चला जाता यदि टिकट परीक्षक ने उससे टिकट नहीं माग लिया होता।

"मेरे पास टिकट नहीं है।" उसने सहज स्वर मे सामने खडे टिकट परीक्षक से कहा। उस समय विवेकानन्द के चेहरे पर न तो भय का भाव था न सकोच का। उसने सोचा, क्या कर लेगा यह रेल कमचारी। बहुत होगा तो अगले स्टेशन पर उतार देगा या जेल भिजवा देगा। उसे इसकी चिन्ता नहीं थी।

टिकट परीक्षक ने सामने बैठे सोलह सत्रह वष के किशोर को गौर से देखा। उसने मन ही मन सोचा, कैसा ढीठ है यह लडका? ऐसे बोल रहा है जैसे रेल गाडी इसके बाप की हो, इसीलिए मुफ्त चलने का इसे अधिकार मिला हुआ है या हो सकता है यह किसी रेल कमचारी का लडका हो। अनायास ही टिकट परीक्षक ने पूछा

"तो क्या पास है?"

पास का नाम सुनते ही विवेकानन्द को ख्याल आया कि उसके मामा मोतिहारी म बडे टिकट बाबू है। उसे अपनी मजिल तत्क्षण सूझ गयी। उसने छूटते ही कहा

"पास भी नहीं ले सका। मोतिहारी मे चतुर्भुज बाबू हैं न मैं उनका भाजा हू।"

"ठीक है, ठीक ह। अगला स्टेशन ही मोतिहारी है। उनका डेरा देखा है न?" टिकट परीक्षक ने स्नेहपूवक पूछा। विवेकानन्द ने लापरवाही से उत्तर दिया

'ढूढ लूगा।'

विवेकानन्द की बातचीत के ढग से टिकट परीक्षक बहुत प्रभावित हो गया था। उसने मन ही मन सोचा, कितना निर्भीक है यह लडका। अवश्य यह एक दिन बडा आदमी बनेगा। वह टिकट परीक्षक चतुर्भुज बाबू को अपना गुरु मानता था। इसलिए और भी अधिक स्नेहातुर हो उठा। उसने कहा

"नही, नही। मैं तुम्हे वहा तक पहुचाने की व्यवस्था कर दूगा। हा लगता है कि वे ड्यूटी पर ही हो।'

गाडी लगभग रात के आठ बजे मोतिहारी पहुची। प्लेटफाम पर बडी भीड थी। गाडी पर चढने वाले और गाडी से उतरने वाले आपस म धक्कम धक्का कर रहे थे। वहा अधिक रोशनी भी नही थी। उन दिनो मोतिहारी स्टेशन के प्लेटफाम पर बिजली नही पहुची थी। यात्रियो, खोमचे वाला और कुलिया के धक्के सहता हुआ विवेकानन्द स्टेशन कार्यालय म पहुचा। भीड म वह कही खो नही जाय इसलिए टिकट परीक्षक उसका हाथ पकडे हुए था। इस कारण कई जगह उसे जोरदार धक्के भी खाने पडे। खैरियत हुई कि चतुभुज बाबू ड्यूटी न रहने पर भी कुछ काम से अपने कार्यालय मे आ बैठे थे। पहली नजर मे विवेकानन्द को देखकर वे उसे पहचान भी नही पाये। जब टिकट परीक्षक ने कहा

"यह लीजिए, बडे बाबू। अपने भाजे को सभालिए।"

भाजा शब्द सुनते ही चतुर्भुज बाबू ने तुरत विवेकानन्द को पहचान लिया। आठ साल पहले उन्होने वैद्यनाथ धाम ले जाकर उसका मुडन करवाया था। तब उनकी बहन सत्यभामा भी साथ थी। चतुर्भुज बाबू विवेकानन्द को देखते ही प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होने लपककर उसे कलेजे से लगा लिया। रह रहकर उसका मुह निहारने लगे। 'कितना लम्बा हो गया है? पूरी तरह जवान लगता है।" चतुर्भुज बाबू ने कहा और हसने लगे। टिकट परीक्षक चतुभुज बाबू का वात्सल्य प्रेम देखकर आत्मविभोर हो रहा था। उसे इस बात का अभिमान था कि उसने अपने गुरु का उनके भाजे से मिला दिया था।

चतुर्भुज बाबू की उम्र पचास वर्ष के लगभग थी। स्थूलकाय,

गेहुआ रग, बडी बडी बिखरी हुई मूछे, लगभग साढे पाच फुट के चतुर्भुज बाबू भाल पर त्रिशूल की तरह चदन लगाते थे। पुराने ख्याल के आदमी थे। लगभग पच्चीस वर्षों से बगाल नार्थ वेस्टन रेलवे की नौकरी मे थे। लेकिन कभी किसीने नही सुना कि उन्होने किसी यात्री से छदाम भी लिया हो, बल्कि बिना टिकट चलन वाले लडको को कोई सख्त टिकट कलक्टर पकड लेता था और बात बढ जाती थी तो चतुर्भुज बाबू उसके टिकट के पैसे खुद भर देते थे। उन दिनो इस चरित्र का आदमी रेलवे मे दूरबीन से देखने पर ही मिलता था। तब तो हर बडा बाबू व्यापारियो से घूस लेना अपना कानूनी अधिकार मानता था और कोई भी टिकट कलक्टर या टिकट परीक्षक अपनी ड्यूटी करके अपने घर लौटता तो उसकी जेब मे २०-२५ रुपये इकट्ठे हो जाया करते थे।

चतुर्भुज बाबू अपनी पत्नी के साथ रहते थे। उनके कोई सतान नही थी। यह भी एक अजीब बात थी कि सतानहीन होते हुए भी दोनो पति-पत्नी बडे ही खुशमिजाज थे। उनमे दया-माया की कमी नही थी। चतुर्भुज बाबू के एक ही छोटी बहन थी जो राघव बाबू से ब्याही थी। जब विवेकानन्द का जन्म हुआ तब चतुर्भुज बाबू धोती-साडी और मिठाई लेकर आये थे। उन्होने मजाक मे अपनी बहन से कहा था

"सत्यभामा, तुम्हारे पास तो सुमन है ही। अब इस लडके को मुझे दे दो।"

विवेकानन्द की मा सत्यभामा ने कहा था, "ले जाइयेगा भैया! बडा होने दीजिए। आपके यहा आदमी बन जायेगा।'

विधाता का विधान कि विवेकानन्द अनायास ही चतुर्भुज बाबू के पास पहुच गया। उसे देखकर उसकी मामी खुशी से पागल हो उठी थी। कभी वह कहती, "जल्दी नहा धो लो" तो कभी कहती, "रात के समय नहाना ठीक नही है। तबीयत खराब हो जायेगी। केवल मुह-हाथ धो लो। खाना परास देती हू। लेकिन, अजी सुनते ह, बाजार से जाकर कुछ मिठाई ले आइये न। नही, रहने दीजिए घर मे दूध है खीर बना देती हू।" तभी उन्हें अचानक ख्याल आता कि रात काफी बीत चुकी है। खीर बनने में देर हा जायेगी। तब वह कुछ बिगडकर अपने पति से कहती,

"खीर बनने म देर हो जायेगी। थका मादा है। इस सीन म देर हो जायगी। जाइये मिठाई ही ले आइये। अच्छी मिठाई ले आइयेगा।"

मामी का असीम प्यार और निश्छल व्यवहार देखकर विवेकानन्द अपनी सारी चिन्ता भूल बैठा। उसके मन मे उठने वाली समस्याए गायब हो गयीं। जब वह खा पीकर उठा तब चतुर्भुज बाबू को अचानक ख्याल आया

अरे हा, तुम्हारे पास कोई सामान नही दख रहा हू। कहीं गाडी ही म तो नही छोड दिया ?'

ऐसे निश्छल मामा मामी स विवेकानन्द ने कुछ छिपाना उचित नही समझा। उसने सक्षेप मे सारी बात चतुभुज बाबू को सुना दी कि वह किन कारणा स वहा आ पहुचा है। चतुभुज बाबू चिन्ता और प्रसन्नता के सयोग स द्विविधा म पड गये। अब व विवेकान्द को छोडना नही चाहत थे, लकिन उन्हे मालूम था कि विवेकानन्द के भाग आने स सत्यभामा की क्या दशा हो रही होगी।

निणय पर पहुचन म चतुभुज बाबू को देर नही लगी। बारह बजे रात मे नरकटियागज की तरफ से एक गाडी आती थी। यदि उससे किसी आदमी का भेज दिया जाय तो कल सबेरे दस बजते बजते राघव बाबू को सूचना मिल जायगी कि विवेका यहा आ गया है। चतुभुज बाबू ने चिट्ठी तैयार कर दी और उसमे यह भी लिखा कि अब चिरजीव विवकानन्द यही पढेगा, गाव वापस नही जायेगा।

चतुभुज बाबू न विवकानन्द का नाम जिला स्कूल म लिखवा दिया। स्टेशन से एक मील दूर रेल लाइन के किनारे ही जिला स्कूल था। यह जल्दबाजी का काम चतुभुज बाबू न सोच समझकर किया। उनके मन मे भय समाया था कि कहीं राघव बाबू और सत्यभामा के दिल न जोर मारा और वे विवका को वापस ले गय तो उनके घर मे फिर सूनापन आ जायेगा।

विवेका का दाखला दसवीं कक्षा मे होना था, लेकिन जब उसकी परीक्षा ली गयी तो वह शिक्षकों की दृष्टि म ग्यारहवी कक्षा के छात्रों से भी अधिक का ज्ञान रखता था। इसलिए उसका दाखला ग्यारहवी कक्षा मे

ही कराया गया। यह बात ग्यारहवी कक्षा के कुछ शोहदे छात्रा का अच्छी नही लगी। गाव का एक फटीचर लडका शिक्षको पर अचानक प्रभाव डाल दे यह बात भला उनके गले कैसे उतरती ? विवकानन्द देहात से आया था, इसलिए उसकी पोशाक भी देहाती थी। पूरी बाह की कमीज, घुटना तक धोती और पाव मे पुराना फटा हुआ जूता। उसका भाई सुमन पहली सतान था और शहर मे रहता था। इसलिए मा-बाप उसकी हर बात का ख्याल रखते थे। उसकी पोशाक ठीक शहर के अनुरूप होती थी, कुरता, पायजामा या पैंट-कमीज। विवेकानन्द को कभी अच्छे कपडे-लत्ते पहनने का शौक भी नही हुआ।

क्लास के ज्यादा लडके अच्छी पोशाक मे ही सजे धजे रहते थे। उन लोगा की बोलचाल भी भिन्न थी। अधिकाश लडके बोलचाल मे खडी बोली का प्रयोग करते थे और कुछ लडके आपसी बातचीत मे भोजपुरी बोलत थे। विवेकानन्द न तो खडी बाली बोलने में अभ्यस्त था और न उसे भोजपुरी ही आती थी। यह सब देखकर उसमे सकोच पैदा हो गया।

विवेकानन्द के क्लास म एक खूखार जैसा युवक बैठा हुआ था, जो रह रहकर उस इस तरह देखने लगता, जैसे वह विवेकानन्द के शरीर का नाप-तौल कर रहा हो। उस युवक की आयु बीस साल से कम नही होगी और अभी वह ग्यारहवे दर्जे मे पढता था। उसने नीले रग की हाफ पैंट पहन रखी थी। ऊपर खादी की कमीज और पाव मे चप्पल। उसके सिर पर बडे बडे सूखे सूखे बाल थे। चौडे चेहरे पर छोटी छोटी आखें, कुछ मोटी नाक और पतले पतले होठ उसकी आकृति को किंचित् भयावना बना रहे थे। अपनी ओर बार-बार उस युवक को घूरते देखकर विवेकानन्द का भी उधर ध्यान देना पडा। दोनो की आखें मिली। उस युवक के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गयी। विवकानन्द को लगा कि इस युवक की आखा म आक्रोश के साथ साथ कही न कही स्निग्धता भी है।

टिफिन हुआ। सभी विद्यार्थियो को एक निश्चित रकम जमा करानी पडती थी ताकि स्कूल की तरफ से उन्हे नाश्ता कराया जा सके। क्लास से सभी लडके पक्तिबद्ध होकर स्कूल के मैदान मे बने 'जिमनाजियम हाल' मे पहुचते थे और नाश्ता करने के बाद उन लोगो को खेलने कूदने के लिए

स्वतन्त्र छोड दिया जाता था। विवेकानन्द कतार मे चल रहा था। उसके आगे वही खूखार युवक था और पीछे वही एक नाटा भद्दा-सा लडका चल रहा था जिसकी रग रग से शैतानी टपक रही थी। विवेकानन्द क्लास से निकला ही था कि पीछे से किसीने उसे जोर का धक्का मारा। विवेकानन्द गिरते गिरते बचा। पीछे चलने वाले सभी लडके ठहाका मारकर हस पडे। उसने सिर घुमाकर देखा, वही नाटा भद्दा लडका अपने पीछे चलने वालो को अपराधी ठहराकर उन्हें डपटने का स्वाग कर रहा था। विवेकानन्द चुपचाप सभलकर चलने लगा। कुछ ही देर बाद उस नाटे लडके ने उसके पाव मे पीछे से अपना पाव भिडा दिया। विवेकानन्द मुह के बल जा गिरता, लेकिन वह आगे चलने वाले नौजवान की पीठ से जा टकराया। उस खूखार नौजवान ने पीछे मुडकर गुस्से से देखा। नाटा लडका अपने दोनो हाथ जोडकर माफी मागने लगा।

अब विवेकानन्द अत्यधिक सतर्क होकर चलने लगा। कुछ ही देर बाद वह नाटा लडका कुछ इस तरह की आवाज करने लगा जैसे पीछे चलने वाले लडके उसे धक्के देकर गिरा देना चाहते हो और वह अपने आपको गिरने से बचाने की कोशिश कर रहा हो। विवेकानन्द सावधान था। उसके कान पीछे की ओर ही लगे हुए थे। अचानक उसकी पीठ पर नाटे लडके का सिर बडे जोर से टकराया। विवेकानन्द दाहिनी तरफ हट गया और वह नाटा लडका मुह के बल जमीन पर जा गिरा। क्लास के सभी लडको ने आश्चर्य से देखा कि विवेकानन्द ने बडी फुर्ती से उस नाटे लडके की टाग पकडकर एक तरफ खींच लिया था और उलटकर उसकी छाती पर चढ बैठा था। जब तक क्लास का मानीटर उस नाटे लडके को बचाने के लिए पहुचा तब तक विवेकानन्द ने उसकी अच्छी मरम्मत कर दी थी। टिफिन के बाद विवेकानन्द को क्लास टीचर के सामने प्रस्तुत किया गया। सब कुछ सुन लेने के बाद भी शिक्षक ने उसकी दोनो हथेलियो पर दो-दो बेंत लगाकर सजा पूरी कर दी। विवेकानन्द जब अपनी जगह पर बैठने के लिए मुडा तब वह नाटा लडका मुस्कराकर उसीकी ओर देख रहा था, किन्तु विवेकानन्द की कठोर भगिमा और जलती हुई आखें देखकर उस लड़के ने सकपकाकर अपनी आंखें नीची कर ली।

छुट्टी होने के बाद खूंखार लडका विवेकानन्द के साथ हो लिया। उस लडके का नाम था भोला। वह जाति का चमार था। चमार ? विवेकानन्द का सस्कार थोडा सजग हुआ। उसके मन के भीतर सोया हुआ अह का भाव सुगबुगा उठा। किन्तु तुरन्त ही उसने सोचा, क्या अन्तर है मनुष्य-मनुष्य म। भुवनेश्वर ऊची जाति के प्रतिष्ठित जमीदार हैं और यदि विचार और कर्म के तराजू पर उन्हे तौला जाय, तो क्या निकलेंगे ? शिव-बदन भी तो ऊची जाति का है, किन्तु कितना कुटिल और पतित है वह व्यक्ति ? वह नाटा लडका ब्राह्मण है, लेकिन कितना बदमाश है। फिर यह तो शहर है। यहा नल से पानी आता है, जिसे सब छूते ह। नल का पानी

यह सब विवेकानन्द सोच ही रहा था कि भोला ने कहा

"गाव से आये हो। थोडा सोच समझकर रहना। क्लास के बहुत-से लडके बीडी सिगरेट पीने, पढना लिखना छोडकर सिनेमा देखने और तरह-तरह की गदी आदतो को पालते रहने मे ही अपनी शान समझते है। उनके सामने कोई आदर्श नही है। आदमी को अपना कोई न कोई उद्देश्य रखना चाहिए और वह तभी प्राप्त होगा जब लगन और निष्ठा से उस ओर बढा जाय।"

विवेकानन्द एक चमार के मुह से ऐसी बातें सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। वह इतना तो जानता ही था कि पढाई लिखाई का उद्देश्य नौकरी पाना है। लेकिन नौकरी करने की बात सोचते ही उसका मन विद्रोह कर उठता था। वह समझ नहीं पाया कि भोला किस उद्देश्य की बात करता है। उस दिन वह कुछ पूछ नही सका। मन मे एक जिज्ञासा लिए वह अपने डेरे पर लौट आया। भोला स्टेशन से आगे एक ऐसे इलाके मे रहता था, जहा उसीकी जाति के लोग कीडे मकोडो की तरह बसे हुए थे।

डेरे पर पहुचकर बरामदे पर चढा ही था कि सकपकाकर खडा रह गया। बरामदे पर ही उसके पिता राघव बाबू मामा जी के साथ बैठे बातें कर रहे थे। विवेकानन्द को देखते ही राघव बाबू ने कहा

"यही बेटे का धर्म है ? मेरी चिन्ता नहीं की तो न सही। तुम्हें अपनी मा का तो ख्याल करना चाहिए था। उन्होने चौबीस घण्टे तक पानी तक नही पिया। रोते रोते प्राण देने पर उतारू हो गयी सो अलग। यह तो खैरियत

हुई कि चतुर्भुज बाबू का भेजा हुआ पेटमैन दूसरे दिन दोपहर वहा आ पहुचा, नही तो अनर्थ हो जाता।"

विवेकानन्द सिर झुकाए चुपचाप अपने पिता की बातें सुनता रहा। राघव बाबू अपनी बात जारी रखते हुए बोले

"मैंने तुम्हे बार-बार मना किया था कि विजय से अधिक घनिष्ठता ठीक नही है। वह बहुत बडे जमीदार का बेटा है। उन लोगो के साथ हमारा मेल नही खा सकता। लेकिन तुम मानते तब न ? यह तो ईश्वर की ही कृपा हुई कि विजय को गहरी चोट नही लगी। यदि उसे कुछ हो जाता तो आज तुम जेल मे होते और हम बर्बाद हो जाते।"

"मुझसे भूल हो गयी। उस दुर्घटना के बाद मुझे कुछ भी ध्यान नही रहा। मैं अपने आप यहा आ पहुचा।" यह कहकर विवेकानन्द भीतर कमरे मे चला गया।

उस रात विवेकानन्द देर तक सो नही पाया। भोला की बातें उसके दिमाग मे चक्कर काटती रही। क्या उद्देश्य हो सकता है किसी आदमी का ? वह जितना ही इस प्रश्न पर सोचता उतना ही उसका ध्यान बार-बार पिता की बातो की ओर चला जाता, 'वह बहुत बडे जमीदार का बेटा है।' तो क्या हुआ ? विवेकानन्द का ध्यान देश की गुलामी और जमीदारो की मनमानी की ओर जा पहुचता था। गुलामी दूर करके ही जमीदारो की मनमानी भी रोकी जा सकती है। एक गुलाम देश के नौजवान का उद्देश्य और क्या हो सकता है ? नौकरी करके रोटी मिल जायेगी। रोटी तो कुत्ता को भी मिल जाती है। विवेकानन्द इसी उलझन मे पडा पडा सो गया।

६

मोतिहारी मे कुछ दिनो तक विवेकानन्द को बहुत अटपटा लगा था। मोतिहारी न तो पूरी तरह शहर था, न गाव। दो-ढाई वर्ग मील के इलाके मे बसा जिले का यह मुख्यालय चारो ओर गावो से घिरा हुआ था। जिलाधीश का कार्यालय और कचहरी शहर से कुछ दूर रेल लाइन के उस पार थी।

शहर और स्टेशन के बीच एक पुरानी झील थी, जिसे स्थानीय लोग 'मन' कहते थे। इसी झील के किनारे छोटा सा कस्बेनुमा शहर बसा हुआ था, जहा अधिकाश दुकानें छोटी छोटी थी। सडक न कच्ची थी, न पक्की। एक सिनेमा हाल भी था, जहा शाम होते ही भोपू बाजा बजने लगता था। पासिंग शो, तूफान मेल जैसे खेल वहा उन दिनो दिखाये जाते थे।

कचहरी मे गाव के लोगो की भरमार होती थी। गावो के मुकदमो का फैसला ही तो यहा होता था। स्टेशन पर उतरते ही लोग पीछे लगी दुकानो पर सत्तू चिउडा दही या पूरी तरकारी खा लेते थे और वहा से पैदल या टमटम से कचहरी चले जाते थे। ये दुकानें स्टेशन के पीछे उस सडक के किनारे थी, जो सडक बायी ओर से मुडकर शहर के अन्तिम छोर छूती हुई सुगौली होकर बेतिया की ओर चली जाती थी और दाहिनी ओर जाने वाली सडक आगे जाकर दो हिस्सो मे बट जाती थी। एक सडक बायी ओर शहर मे और दूसरी दाहिनी ओर रेल लाइन पार करके कचहरी की ओर चली जाती थी।

स्टेशन के पीछे, हलवाइयों की दुकानो के पास, एक बडा-सा वटवृक्ष था जहा दोपहर को, ढोलक की थाप पर, आल्हा ऊदल के गीत गूज उठते थे। विवेकानन्द को न तो शहर घूमने का शौक था, न सिनेमा देखने का। उसके डेरे के पीछे ही आल्हा-ऊदल के गीत का नियमित कार्यक्रम चलता था। उन दिनो उसके स्कूल की कक्षाए सुबह आठ बजे लगती और साढे बारह बजे खत्म हो जाती थी। उसकी मामी उसे स्कूल से लौटते ही खिला पिला-कर आराम करने को मजबूर कर देती थी। विवेकानन्द को दिन के समय सोना अच्छा नही लगता था। आदत भी नहीं थी। बिस्तर पर पडा पडा वह आल्हा-ऊदल गाने वाले की ललकार भरी आवाज सुना करता था। उस ललकार की लय पर ढोलक की थाप सुनकर उसे रोमाच हो आता था।

छह-सात रोज बाद जब उससे नही रहा गया तब मामी से अनुमति लेकर वह एक दिन वटवृक्ष के नीचे जा पहुचा। आल्हा और ऊदल की बहादुरी का बखान सुनने मे उसे इतना रस मिला कि अब नियमित रूप से वह वहा जाने लगा। श्रोताओ मे अधिकाश अपढ़-अशिक्षित लोग हुआ करते। कुछ ही दिनो में वह उनसे घुल मिल गया। कोई स्टेशन पर बोझा ढो

वाना कुली था ना कोई टमटम चलाने वाला कोचवान। मूगफली, भूजा और हवाई मिठाई बेचने वालो के अलावा रेलवे क्वाटरो में रहने वाले बाबुओ के लडके और नौकर चाकर, खलासी आदि भी वहा मौजूद होते थे।

धीरे धीरे विवेकानन्द की समझ में आने लगा कि गरीबी हर जगह एक जैसी है। समाज म जातिया भी मुख्यत दो ही ह—अमीरो की जाति और गरीबो की जाति। यही आर्थिक आधार रहन सहन, आचार-विचार और दृष्टिकोण के विभाजन का निर्णायक है। वह कक्षा म इतिहास पढता या वटवृक्ष के नीचे आल्हा ऊदल सुनता, तो इस नतीजे पर पहुचता कि बडे बडे युद्ध भले ही ऊचे सिद्धान्तो की रक्षा के नाम पर लडे गये गए हो, लेकिन यथार्थ कुछ और ही है। पत्नी, प्रेमिका अथवा सिहासन ही इन लडाइयो के मुख्य कारण रहे ह। जीत या हार किसी राजा या महाराज की हुई है, किन्तु कुर्बानी गरीब जनता ने दी है। इन युद्धो मे हजारो लाखो गरीब वेतनभोगी सैनिक मौत के घाट उतार दिए गए ह। समाज म नैतिकता होनी चाहिए। नैतिक चरित्र के अभाव मे समाज टिक नही सकता। किन्तु यह नैतिकता समाज के प्रतिष्ठित वग का कवच बनकर क्यो रह गई है? अधिकाश जन की जान माल और प्रतिष्ठा प्राचीन काल मे असुरक्षित थी, आज भी असुरक्षित है। रैयत, खेतिहर मजदूरो और समाज के उपेक्षित वर्गों की बहू बेटियो की इज्जत सरआम नीलामी पर चढा दी जाती है। लेकिन, नैतिकता के सिद्धान्त यहा लागू नही होते।

विवेकानन्द के दिन शायद इसी तरह की पहेलियो को सुलझाने म उलझकर रह जाते, यदि वह भोला के निकट सम्पर्क म न आया होता। तिमाही इम्तहान का समय था। पढते-पढते उसे नीद आने लगी। उसने लाख कोशिश की कि वह जगा रह सके, लेकिन नीद के मारे उसका बुरा हाल हो रहा था। पलकें स्वत बन्द हो जाती थी। अभी पढने को कुछ शेष था। अन्त म उसे एक उपाय सूझा। वह सामने के स्टेशन के प्लेटफाम पर जा तेज कदमो म चक्कर लगाने लगा। हवा का ठडा झोका लगने से उसकी आधी की नीद जाती रही। प्लेटफाम के अन्तिम छोर पर पहुचकर वह मुडना ही चाहता था कि सामने से एक लम्बी आकृति आती दिखलाई पडी। उस आकृति को देखकर विवेकानन्द को भ्रम हुआ कि कही भोला तो

नहीं है। धीरे धीरे आकृति साफ होने लगी। हाफ पैंट और हाफ कमीज म भोला चला आ रहा था।

'इतनी रात को कहा से आ रहे हो?" भोला के पास आने पर विवेकानन्द न जिज्ञासा के स्वर म पूछा। भोला न कोई उत्तर न देकर उससे भी इसी तरह का सवाल कर दिया

"इतनी रात मे तुम प्लेटफाम पर क्या कर रहे थे?"

"मैं मैं तो अपनी नीद को भगा रहा था। पढते-पढते थक गया तो नीद आने लगी। तीन दिन बाद इम्तहान है।"

' मेरा इम्तहान तो रोज ही हुआ करता है। आज भी परीक्षा देकर आ रहा हूं।"

"कैसी परीक्षा? इतनी रात म उस तरफ जगल मे कौन-सी परीक्षा हो रही है?"

' वही परीक्षा, जिसमे सभी देशवासियो को बैठना चाहिए, लेकिन किसीमे उत्साह और निष्ठा नही है। गुलामी की नारकीय जिन्दगी उन्ह पसद है, मरघट की शाति उन्हें सुखद लगती है। इससे मुक्ति पाने के लिए वे कुछ करना नही चाहते।"

विवेकानन्द की जिज्ञासा बढती जा रही थी। उसने सुना था कि अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध आन्दोलन चलाने वालो मे एक महात्मा गाधी है और दूसरे कुछ क्रातिकारी युवक। ये क्रातिकारी युवक गुप्त रूप से अपना सगठन चलाते है। बम और पिस्तौल बनाते है। उसने भगतसिह और चन्द्रशेखर आजाद का नाम सुना था। भोला कही उसी दस्ते का सदस्य तो नही है? विवेकानन्द ने कहा

"मैं तुम्हारी बात समझ नही पाया।"

"तुम समझ भी नही पाओगे।"

"जब इतनी बडी बात कह रहे हो तो समझाना भी तुम्हे ही पडेगा।"

उस दिन भोला उसकी बात टालकर चला गया। विवेकानन्द का कौतूहल बेचैनी मे बदल गया। काफी दिनो तक वह स्कूल मे या छुट्टी होने पर स्कूल के बाहर भोला के आगे पीछे चक्कर काटता रहा। इतना वह समझ चुका था कि भोला किसी रहस्यमय सगठन का सदस्य है। विवेकानन्द

मे बचपन से ही कौतूहल और जिज्ञासा का भाव प्रबल था। किसी वस्तु या व्यक्ति को ज्यो का त्यों वह कभी ग्रहण नही कर पाया। यह क्या है ? क्या है ? कैसा है आदि प्रश्न कर देना उसका स्वभाव हो गया था। जैसे जैसे वह बडा होता गया, ये प्रश्न अव्यक्त बनते गये और उसका मन किसी वस्तु या व्यक्ति की गहराई मे उतर जाने को बेचैन रहने लगा। वह भुवनेश्वर सिंह को देखता तो उसे लगता कि यह व्यक्ति पूरे गाव की छाती पर बैठा है। जतना और उसके जैसे लोगो को देखकर उसका हृदय सहानुभूति और नफरत से भर जाता था। वह समझ नही पाता था कि भेद और विषमता की जड कहा है ? मन ही मन भटकते भटकते वह अग्रेजी हुकूमत तक पहुच जाता था। भोला की रहस्यपूर्ण गतिविधि देखकर उसे लगा, जैसे भोला भी उसी हुकूमत का शिकार करने की तैयारी कर रहा हो।

विवेकानन्द चाहता था, वह भी अपने देश के लिए कुछ करे। उन्ही दिनो सुभाषचन्द्र बोस का मोतिहारी मे आगमन हुआ। शहर के एक किनारे बहुत बडी सभा हुई। सुभाषचन्द्र बोस को उस सभा तक जुलूस म लाया गया। वे घोडागाडी मे बैठकर जुलूस मे शामिल हुए। पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार विवेकानन्द भी भोला के साथ ही उस सभा मे शामिल हुआ था। सुभाषचन्द्र बोस बहुत ही प्रभावशाली वक्ता थे। उन दिनो उनका काग्रेस और महात्मा गाधी से मतभेद हो गया था। महात्मा गाधी का प्रभाव पूरे देश पर जादू की तरह छाया हुआ था किन्तु सुभाषचन्द्र बोस न अपना भाषण समाप्त करने क बाद भीड से यह पूछा कि उनके साथ जो लोग है, वे हाथ उठायें। विवेकानन्द को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहा उपस्थित सभी लोगो ने अपने हाथ उठा दिये थे। उस दिन विवेकानन्द को मालूम हुआ कि महान उद्देश्य और आदर्श की प्राप्ति के लिए बडे से बडा या प्रिय से प्रिय व्यक्ति का भी त्याग किया जा सकता है। उस दिन विवेकानन्द को जानकारी मिली कि अग्रेजी हुकूमत ने भारत मे इस कदर लूट मचा रखी है कि नादिरशाह की लूट और हत्या की कहानी भी धूमिल पड गयी। वह तो साढे छियासठ करोड रुपये ही भारत से ले जा सका जबकि अग्रेजी सरकार एक सदी के भीतर एक खरब अस्सी अरब रुपये लूटकर ले गयी। भारत म इस बीच बार-बार अकाल पडता रहा, लाखो लोग भूख से मर गये किन्तु

अंग्रेजी सरकार यहां के धन से इंगलैण्ड का पेट भरती रही। विवेकानन्द का खून खौल उठा।

सभा के बाद भोला और विवेकानन्द साथ-साथ चल पड़े। सुभाषचन्द्र बोस का भाषण सुनकर विवेकानन्द तय कर चुका था कि वह भी देश की सेवा में अपने आपको अर्पित कर देगा। उसके सामने सवाल यह था कि देश-सेवा की कौन सी राह सही है। चलते चलते उसने भोला से पूछा

"सुभाष बाबू का भाषण तुम्हें कैसा लगा ?"

"बहुत अच्छा। इनके विचार हम लोगों से काफी कुछ मिलते जुलते हैं। हुकूमत हमपर गोलियों की बौछार करे और हम अहिंसा और शांति का सहारा लेकर केवल प्रदर्शन करते रहें, यह कैसे कारगर होगा ?"

"देश को तैयार भी तो करना है। जब तक पूरा देश नहीं जागेगा, तब तक हम कर ही क्या सकते हैं ? हमारे पास शक्ति कहां है ? हुकूमत के पास लाठी और बन्दूक ही नहीं, तोप भी है, पुलिस ही नहीं, फौज भी है।"

"गरज कि हुकूमत ने हमारे मन में भय पैदा कर दिया है—लाठी, बन्दूक और तोप का भय। भयभीत आदमी कमजोर होता है। यदि हम अपने देशवासियों में यह आत्मविश्वास पैदा कर सकें कि इसी प्रकार का भय सत्ताधारियों के दिल दिमाग में भी बैठाया जा सकता है तो एक दिन सफलता हमारे चरण चूमेगी।"

"यही काम तो गांधी जी कर रहे हैं। उन्होंने देश के गांव गांव में जागृति ला दी है। जनता निर्भीक होती जा रही है।"

"खाक निर्भीक होती जा रही है। आंदोलन चलाते चलाते बीस बाईस साल हो गए और हुकूमत के खूनी पंजे ज्यों के त्यों इस देश की रग रग में चुभे हुए हैं। बीस-बाईस साल से तो गांधी जी प्रयत्न कर ही रहे हैं। इनके पहले भी कांग्रेस के बहुत से सभापति हुए जो सभाएं करते रहे, भाषण देते रहे और प्रस्ताव पास करते रहे। क्या हुआ ? देश स्वाधीन हो गया ? नहीं विवेका, हम दिखा देना चाहते हैं कि गोली का जवाब गोली से देने की कला हमें भी आती है।

"मुट्ठी भर लोग देसी पिस्तौल और हथगोलों से इतनी बड़ी हुकूमत का क्या बिगाड़ लेंगे ?"

"भय—हम उनमें भय पैदा कर देंगे। बता देंगे कि हमने भी मां का दूध पिया है। फिर उनमें दृढ़ता नहीं रह जाएगी। उनकी सारी ताकत अपने बचाव में लग जाएगी। दूसरी तरफ हमारी जनता में विश्वास उभरेगा। वह महसूस करेगी कि यदि मुट्ठी भर लोग इतनी बड़ी हुकूमत को हिला सकते हैं तो असंख्य जनता मिलकर इस राक्षसी हुकूमत को उठाकर समुद्र में फेंक सकती है।"

चन्द रोज बाद ही विवेकानन्द भोला के दस्ते में शामिल हो गया। अपने खून से उसे प्रतिज्ञा पत्र लिखकर दस्तखत भी खून से ही करने पड़े। रात के समय ये लोग पास के जंगल में चले जाते थे। इस संगठन में शामिल सदस्यों को हथगोले बनाने, पिस्तौल चलाना सिखाने के साथ साथ शारीरिक व्यायाम करने की भी हिदायत दी जाती थी। इसमें दौड़ना, छलांग लगाना और कूदना शामिल था। इस दल ने छह महीने के भीतर ऐसे दो घरों में डाके भी डाले, जिस घर के मुखिया बहुत ही धनाढ्य थे और अंग्रेजी हुकूमत के पिछलग्गू भी थे।

इस क्रांतिकारी दल का हेड क्वार्टर बेतिया में था। कुछ साल पहले स्वयं चन्द्रशेखर आजाद वहां आकर ठहरे थे। विवेकानन्द के दिल दिमाग में यह बात बैठ गयी कि वह भी चन्द्रशेखर आजाद की तरह महान क्रांतिकारी बन सकता है।

उन दिनों शहर में और शहर के बाहर स्वराजियों की सभाएं होती रहती थीं। विवेकानन्द उन सभाओं में भी जाया करता था। पटना से प्रकाशित 'हुंकार' में राष्ट्रीय भावना को उद्वेलित करने वाले लेख छपा करते थे। विवेकानन्द नियमित रूप से वह पत्रिका पढ़ने लगा।

विवेकानन्द का रहन-सहन, बोल चाल बिल्कुल बदल चुका था। महात्मा गांधी के मार्ग पर न चलते हुए भी वह खादी की धोती, खादी की कमीज और पांव में चप्पल पहनने लगा था। बालों में तेल लगाना उसने छोड़ दिया था। अधिकतर वह गुम-सुम रहने लगा था। उन्हीं दिनों उसके मामा चतुर्भुज बाबू का तबादला महेन्द्रूघाट हो गया। चतुर्भुज बाबू इधर कुछ दिनों से विवेकानन्द में अप्रत्याशित परिवर्तन देखकर चिंतित हो उठे थे। कई बार उन्होंने विवेकानन्द को रात में बिस्तर से गायब पाया था।

जब वे पूछते तो वह इतना ही जवाब देता, "घूमने चला गया था।" अधिक पूछ ताछ करने पर वह खामोश रह जाता था। चतुर्भुज बाबू अपने भाजे की इस खामोशी के अभ्यस्त हो चुके थे, लेकिन उनके मन के किसी कोने मे यह भय समा गया कि विवेकानन्द कहीं किसी गुप्त सगठन मे शामिल तो नही हो गया।

रात ढल चुकी थी। मई का महीना था। गर्मी के मौसम मे चतुर्भुज बाबू डेरे के बाहर खुले मे सोया करते थे। एक हफ्ते बाद उन्हे सरो-सामान के साथ महेन्द्रू चला जाना था। मोतिहारी मे वह दस साल रह चुके थे। इसलिए इस जगह को छोडने मे उन्ह मोह सता रहा था। यही कारण था कि काफी रात तक उन्हें नीद नही आती थी। इधर विवेकानन्द की रहस्यमय गतिविधियो के चलते भी वे उद्विग्न रहा करते थे। उस रात भी वह देर तक सो नही पाए थे और जब झपकी लगने लगी तो जूतो की चरमराहट सुनकर उनकी आखें खुल गयी। मच्छरदानी के भीतर से ही उन्होने देखा, पुलिस अधिकारी की वर्दी मे एक व्यक्ति उनकी खाट के पास खडा है। वे चौंककर बाहर निकल आए और चादनी रात की झिलमिलाती रोशनी म उस आगन्तुक को पहचानते ही बोल उठे

"अरे, आप। जगता बाबू। बैठिए, बैठिए। ठहरिए, कुर्सी ले आता हू।"

"नही, रहने दीजिए। मैं आपसे यह कहने आया हू कि भोला गिरफ्तार कर लिया गया है। उसपर डाका डालने और हत्या करने का इल्जाम है। उसके घर से चार बम और तीन पिस्तौलें भी निकली हैं। आप मेरे मित्र ही नही, गाव के रिश्ते मे सबधी भी हैं। इसीलिए आपको आगाह करने चला आया हू।"

चतुर्भुज बाबू घबराहट के मारे कापने लगे। अचानक ही उनके दिमाग मे विवेकानन्द आ खडा हुआ। उस समय वह डेरे के भीतर आगन मे सो रहा था। उन्होने भयभीत होकर अपने डेरे की तरफ देखा जैसे वह कोई उपाय निकालकर विवेकानन्द को वहा से भगा देना चाहते हो। तुरत उन्हें होश आया। जगता बाबू अभी तक खडे थे। चतुर्भुज बाबू ने जल्दी से मच्छरदानी हटाकर जगता बाबू को बैठाना चाहा, किंतु मच्छर

दानी के डडे जमीन पर गिर पडे। जगता बाबू ने चतुर्भुज बाबू का हाथ पकडकर खाट पर बिठा दिया और स्वय भी बैठते हुए बोले

"मैं जानता हू कि आपका भाजा विवेकानन्द भोला की सगत मे फस गया है। पुलिस की नजर से कोई बच नहीं सकता। लेकिन मैं यह भी जानता हू कि विवेकानन्द अनजाने ही इस जाल मे फस गया है। उसके विरुद्ध जितने भी सबूत थे, मैंने उन्हें नष्ट कर दिए है। आप सुबह की गाडी से विवेकानन्द को उसके गाव भेज दीजिए। अब उसका यहा रहना ठीक नही है।"

चतुर्भुज बाबू की जान मे जान आयी। जगता बाबू जा चुके थे। किसी को शक न हो इसीलिए वह अकेले ही चतुर्भुज बाबू के यहा रात के समय आए थे। सुबह होने मे अभी देर थी। चतुर्भुज बाबू की आखो से नींद उड चुकी थी। सुबह सात बजे नरकटियागज की तरफ से एक गाडी आती थी। चतुर्भुज बाबू ने तय किया कि विवेका को उसी गाडी से गाव भेज देंगे।

विवेकानन्द को जब भोला की गिरफ्तारी का हाल मालूम हुआ तब उसे दुख इस बात का हुआ कि यह लाल दस्ता बहुत दिनो तक काम नहीं कर पाएगा। इस तरह के गुप्त सगठनो मे यही त्रुटि रहती है। नेतृत्व विहीन होते ही इस तरह के सगठन मृतप्राय हो जाते है, क्योकि जनता से इनका सीधा सपर्क नहीं होता। विवेकानन्द अपने साथी भोला से मिल नहीं ले पाया। यह सभव भी नही था। गुप्त सगठन के सदस्य एक-दूसरे से खुलकर मिल नही सकते थे।

विवेकानन्द गाडी मे बैठते समय बहुत दुखी था। चतुर्भुज बाबू ने समझा कि वह उनसे और अपनी मामी के वियोग से दुखी है। उन्होने सात्वना के स्वर मे कहा

"अभी तो छुट्टी है। जुलाई से कालेज खुल जाएगा। तब तक के लिए ही तो तुम्हे गाव मे रहना है। आखिर तुम्हें कालेज की पढाई के लिए मुजफ्फरपुर या पटना तो जाना ही था। अच्छा ही हुआ कि हम भी पटना बस रहे हैं।

विवेकानन्द के होठो पर हल्की हल्की मुस्कराहट कापने लगी।

उसकी आखों मे भोला की आकृति उभर आयी। भोला सीखचो म बद होगा, यह सोचते ही विवेकान द की आखें डबडबा आयी।

७

सिर मुडाते ही ओले पडे। विवेकान द मोतिहारी से भागकर गाव आ गया था, ताकि झझटो, उलझनो से मुक्त होकर समय बिता सके। यदि वह मोतिहारी रह जाता तो भोला के साथ उसके भी फस जाने का खतरा था। वह खतरे से घबराता नही था, किंतु, मामाजी की घबराहट ने उसे परेशान जरूर कर दिया था। विवेकानन्द कई महीनो बाद घर आया था। इसलिए उसकी मा के पाव जमीन पर नही पड रहे थे। वह बिना किसी सूचना के अचानक ही आ गया था। सत्यभामा ने जल्दी-जल्दी मौसम की नई तरकारी परवल मगवाकर उसके लिए बना दिया। विवेकानन्द को परवल का चोखा बहुत पसद था, जिसे थाली मे देखत ही वह प्रसन्न हो उठा। किंतु मा का अति प्रेम देखकर वह सकोच मे पड गया। सत्यभामा अपन बेटे के पास बैठकर उसे पखा झलने लगी। वह रह रहकर अपने बेटे को निहारने लग जाती थी। विवेकान द मा से इस तरह के व्यवहार की अपेक्षा नही रखता था, इसलिए अन्न का ग्रास उसके कठ के नीचे उतर नही रहा था। सुमन जब कभी शहर से गाव आता था तो उसे देखते ही मा इसी प्रकार पागल हो जाया करती थीं और तब विवेकान द अपने बडे भाई का मजाक उडाया करता था। वह अपने भाई से कहता था

"खाओ भइया, खूब खाओ। तुम इस घर के तो हो नही। मेहमान बनकर यहा आए हो। तभी तो तुम्हारी इतनी खातिरदारी हो रही है।"

आज अपन प्रति भी वैसा ही व्यवहार देखकर विवकान द को अपन भाई की याद आ रही थी। वह मा को देखते ही झेंप जाता था। उसने कई बार प्रयत्न किया कि मा उसके पास से उठकर चली जाए और दूसरा काम देखे। मा थी कि वहीं बठकर जबदस्ती उसे खिलाए जा रही थी। शाम को

गाव के किशोर उससे मिलने के लिए दालान पर आ जुटे। उन्ही लोगों से उसे मालूम हुआ कि इन दिनों मास्टर धर्मेन्द्र के रंग ढंग अच्छे नहीं हैं। तरह तरह की कहानिया गाव की हवा में तैरने लगी हैं और इन कहानियों का नायक या खलनायक मास्टर धर्मेन्द्र हैं। नायिका का नाम सुनते ही विवेकानन्द चौंक उठा। वह थी राधा, विक्षिप्त रामेश्वर सिंह की पत्नी। भुवनेश्वर सिंह का आतंक इतना अधिक था कि गाव के किसी व्यक्ति की जुबान उनके सामने नहीं खुलती थी, फिर भी लोगों को विश्वास था कि धर्मेन्द्र जी और राधा के संबंध की बात जमींदार साहब तक पहुच चुकी है।

विवेकानन्द की रात ऊहापोह में कट गयी। 'शासक और शोषक एक ही थैले के चट्टे बट्टे है, दोनों संस्थाए अनैतिकता की भित्ति पर खडी हैं'—विवेकानन्द का निष्कर्ष था। उसने सोचा, महात्मा गाधी सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू और यहा तक कि भोला जिस शासक के विरुद्ध लड रहे हैं यदि वे अपनी लडाई में सफल भी हो जाए तो इससे क्या फर्क पडेगा? भुवनेश्वर सिंह जैसे शोषक तो बने ही रहेंगे। उनकी पैठ तो हमारे समाज की जडों तक है। गाव में हजारों आदमी हैं। लेकिन, उनका अस्तित्व ही क्या है? वास्तविक सत्ता तो उनके हाथ में है, जिनके नियंत्रण में देश की पूरी उपजाऊ जमीन है, जिनकी मुट्ठियों में पूजी है। ये जमींदार सामन्त और पूजीपति आज अग्रेजों के साथ गठबंधन करके देश को नचाते हैं कल स्वाधीनता के बाद यही साहबों के साथ गठबंधन करके करोडों जनता का अधिकार हडप लेंगे। स्वाधीनता के बाद यदि सामाजिक व्यवस्था और ढांचा यही रहे, तो क्या होगा? तब लडाई का रूप ही तो बदलेगा लेकिन जतना, काकिना भोला आदि तो तब भी पिसते रहेंगे। प्रश्न यह है कि शोषित कब तक शोषित बने रहेंगे? समाज के असली नर राक्षस कब तक सम्पूर्ण समाज को पैरों तले रौंदते रहेंगे? नर राक्षस एक हो तो उसे खत्म किया जा सकता है। पूरी की पूरी व्यवस्था ही शोषण पर आधारित है। यह व्यवस्था ही रक्तबीज है।

रात आधी से ज्यादा बीत गयी। विवेकानन्द की बेचैनी दूर नहीं हुई। गाव में पहरा देने वाला चौकीदार 'जागते रहो जागते रहो' कहता कहता थककर विवेकानन्द के दालान पर ही आकर सो गया। दालान के पीछे

पीपल के पेड से उल्लू के बोलने की आवाज कभी कभी सुनाई पड जाती थी। सामने कुछ दूर पर, ताड के पेड के नीचे उगे झाडियो से, दुहुक् दुहुक् की आवाज आ रही थी। लोगो के कथनानुसार यह साप की आवाज थी। विवेकानन्द करवटें बदल-बदलकर सोने की कोशिश मे व्यग्र हो रहा था कि तभी कुम्हार टोली की ओर से एक कुत्ते के रोने की आवाज सुनाई पडी। विवेकानन्द उठकर बैठ गया। वह जानता था कि कुत्ते का रोना अशुभ होता है। वह अपने अधविश्वास पर आप हस पडा। कुछ ही देर बाद उसे नींद आ गयी।

विवकानन्द शायद देर तक सोता रहता। रात भर वह सो नही पाया था। किंतु पोखर के भिडा पर से आने वाली चीख चिल्लाहट सुनकर वह उठ बठा। वह जगह विवेकानन्द को वही से नजर आ रही थी, जहा से रोने चिल्लाने और डाटने-फटकारने की आवाज पूरे गाव मे गूज रही थी। वहा बीस पच्चीस व्यक्ति इकटठे हो गए थे और काफी लोग अपने अपने घरो से निकलकर उसी ओर भागे चले जा रह थे।

विवेकानन्द ने सुना, काई कह रहा था, 'बाप रे, मार डाला र बाप!' चीख भरे इन शब्दो के साथ साथ एक औरत के राने की तीखी आवाज कोलाहल को चीरकर आकाश मे उठ रही थी। विवेकानन्द खाट पर से उतरकर दालान के नीचे खडा उसी ओर देख रहा था कि एक नौजवान न आकर कहा

"जतना को जमीदार साहब के कोचवान न मारते मारते बेदम कर दिया।"

"क्या? वहा घोडागाडी पर कौन बैठा है?" विवेकानन्द ने उस नौजवान से पूछा। विवेकानन्द के स्वभाव से नौजवान भली भाति परिचित था। वह जानता था कि बात को यदि चढा बढाकर कह दिया जाए तो विवेकानन्द कुछ ऐसा कर गुजरेगा जो दर्शनीय होगा। जमीदार की मूछ थाडी नीची हो जाएगी। इसलिए उस नौजवान ने उत्साहपूर्वक कहा

"आज सुबह सुबह ही जतना ने दुसाध टोली जाकर कई गोली ताडी चढा ली। ताडी पीते ही वह अपना होश हवास गवा बैठता है। सो, उसकी पत्नी उस सभालकर लिए जा रही थी कि उधर से विजय बाबू

अपने मास्टर के साथ घोडागाडी पर सवार होकर हवाखोरी के लिए आ निकले। घोडागाडी देखते ही, जतना ने अनाप शनाप बकना शुरू कर दिया।

'यह किसकी गाडी है? इसको हम खरीद लेगा।"

"चुप रहा, देखते नहीं, हवेली की गाडी है।" जतना की बीवी ने दबी जुबान से कहा, ' छोटे सरकार और मास्टर जी उसपर बैठे हैं।"

"क क कौन सरकार? कुछ नहीं। कुचबिहार, नेपाल कलकत्ता से हम घूमि आया है। वहा दे दे देखा है सरकार को, तुम देखा है, हवडा का पुल। हम देखा है। यहा का सरकार चूतिया है।

नौजवान ने पूरा स्वाग रचकर बना-बनाकर जतना के कथोपकथन को दुहरा दिया और तब थोडी देर रुककर वह विवेकानन्द के चेहरे पर आने जाने वाली रखाओ को देखता रहा। फिर बोला

"बस। इसी बात पर मास्टर जी ने घोडागाडी रुकवा दी और कोचवान को हुकम दिया कि वह जतना की चमडी उधेड डाले।"

"और सभी लोग वहा खडे खडे यह तमाशा देख रहे हैं?" विवेकानन्द ने स्वगत भाषण के लहजे मे कहा। नौजवान ने छूटते ही जवाब दिया, "जतना जमीदार साहब की ही रैयत है। उन्हीकी जमीन मे बसा है और उन्हीके खेत म काम करता है। वे चाहें उसकी खाल खीच ले या चाहे उसे जान से मार डालें वहा खडे लोगो का यही कहना है।"

विवकानन्द उस नौजवान को कोई उत्तर दिये बगैर तेज कदमों से पोखर के भिडे की तरफ चल पडा। वह नौजवान भी तमाशा देखने के लिए उसके पीछे हो लिया। जिस समय विवेकानन्द घटनास्थल पर पहुचा उस समय विजय घोडागाडी से नीचे उतरकर जतना से कह रहा था

' तू इस तरह शोर क्यो मचा रहा है? हरामी, बदतमीज, साला ।"

' देखिए छोटे सरकार, गा गा गाली मत दीजिए। हमारा भी इ इज्जत है।"

जतना जमीन पर पडा हुआ अपनी दोना केहुनिया के सहारे थोडा सिर उठाकर कह रहा था। उसकी खुली देह पर जहा-तहां खून निकल आया

था। विजय भला यह कैसे बर्दाश्त करता कि जाति का चमार और वह भी उसकी टुकरखोर रयत उसके सामने अपनी इज्जत की दुहाई दे। उसने कोचवान के हाथ से चाबुक लेकर जतना की देह पर बरसाना शुरू कर दिया। जतना का आधा नशा तो कोचवान की मार से ही उतर चुका था। विजय भूल गया कि यह चाबुक घोडे के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जतना का नशा हिरन हो गया। वह रोता गिडगिडाता हुआ बोला

"दुहाई मालिक। हा बाप बाप रे।"

लेकिन विजय का क्रोध पागलपन मे बदल चुका था। वह सामने पडे शिकार को भूखे सिंह की तरह नोच-नोचकर मिटा डालना चाहता था। शायद वह जतना को मार ही डालता यदि विवेकानन्द की तेज आवाज उसके कान के पर्दे को झनझना नही देती

"क्या मारते हो?"

विजय का हाथ रुक गया। वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि इस गाव का कोई आदमी उसे रोकने की हिम्मत कर सकता है। तब तक विवेकानन्द जतना के पास आकर खडा हो गया था। विजय हतप्रभ होकर उसकी ओर देखने लगा। भीड में फुसफुसाहट होने लगी। धर्मेन्द्र मास्टर ने दो कदम आगे बढकर क्रुद्ध स्वर मे कहा

"तुम बीच मे बोलने वाले होते कौन हो अभी और मारो विजय। इन लोगो का यही इलाज है। यदि इसे पूरी सजा नही मिली तो कल ये लोग हवेली पर हल्ला बोल देंगे। मारो साले को।"

"खबरदार जो हाथ उठाया।" विवेकानन्द ने विजय से कहा। विजय का उठा हुआ हाथ नीचे गिर गया। धर्मेन्द्र से विवेकानन्द का यह व्यवहार बर्दाश्त नही हुआ। उसने आगे बढकर कहा

"क्या शहर जाकर तुमने यही सीखा है? बडो के सामने जुबान लडाते शर्म नही आती?"

विवेकानन्द के चेहरे पर अर्थपूर्ण मुस्कान फूट पडी। वह पिछली शाम को ही उसके कुकर्म के किस्से गाव के किशोरो से सुन चुका था। भीतर ही भीतर वह नफरत और क्रोध से जल उठा। किन्तु अपने आपपर नियन्त्रण रखते हुए बोला

"जी, शर्म तो आती है, लेकिन अपनी जुबान पर नहीं, बल्कि उनके काले कारनामे पर जो अपने आपको बड़ा समझने का अधिकार खुद ही ले बैठे हैं। मास्टरजी, शहर जाकर मैंने जो कुछ सीखा है वह सीधे गाँव की हवा को दूषित नहीं करेगी। भोले-भाले ग्रामवासियों की निश्छलता का नाजायज फायदा नहीं उठायेगी।" इतना कहकर विवेकानन्द विजय की ओर बढ़कर बोला, "क्या विजय, तुमने तो ताड़ी नहीं पी, फिर यह क्या भूल गये कि जनता तुम्हारी रैयत है नौकर है, लेकिन गुलाम नहीं। और गुलाम की जान लेने का अधिकार भी आज का समाज स्वामी को नहीं देता।'

"क्या मतलब ?" विजय ने झेंपते हुए पूछा। विवेकानन्द ने लपककर उसके हाथ से चाबुक छीन लिया। वहां खड़ी भीड़ में घबराहट फैल गयी। कुछ लोग यह सोचकर सहम गये कि विवेकानन्द का हाथ कहीं विजय पर उठ न जाए। गनीमत हुई कि विवेकानन्द ने ऐसा कुछ नहीं किया। उसने चाबुक को पोखर में फेंक दिया और कहा

"मतलब यह कि आदमी आदमी होता है, मवेशी नहीं। उसे समझाने और सुधारने के लिए नियम बने हुए हैं। वह नियम तभी तोड़ा जाता है, जब बहुजन हिताय या बहुजन सुखाय की कोई बात हो। तुम मेरे मित्र हो। लेकिन, तुम्हारी यह हरकत देखकर तुम्हें मित्र कहने में मुझे शर्म आती है।"

"और अपनी बदतमीजी पर तुम्हें शर्म नहीं आयी ?" मास्टर जी ने दूर से ही ऊंची आवाज में कहा। विवेकानन्द ने मुड़कर मास्टर धर्मेन्द्र को देखा और दांत पीसता हुआ बोला

"शर्म आयी अपने उस संस्कार और उस तमीज पर जिसने मर्यादा के नाम पर मुझे आगे बढ़ने से रोक दिया है।"

"तो तुम क्या कर लेते ?' मास्टर धर्मेन्द्र का चेहरा इस अपमान से फीका पड़ गया था। विवेकानन्द ने उसी लहजे में जवाब दिया

'वही करता जो आपने जतना का किया।"

"खामोश।" मास्टर जी गरज पड़े।

"खामोशी तो आपके लिए उपयोगी है, मास्टर जी। परदे के पीछे जिस नाटक की तैयारी में आप लगे हुए हैं वह खामोशी रखने से ही चलना

रह सकेगा।"

मास्टर जी का चेहरा फक पड़ गया। भीड़ में खड़े लोगों ने इस बात का कोई अर्थ नहीं समझा। मास्टर जी को इस वाक्य से भी अधिक भय विवेकानन्द की मुस्कराहट देखकर लगा। वह विजय का हाथ पकड़कर जल्दी से घोड़ागाड़ी पर जा बैठे। कोचवान को गाड़ी चलाने का आदेश हुआ। चलते चलते मास्टर धर्मेन्द्र ने कहा

"इसका नतीजा बहुत बुरा होगा, विवेका। तुमने बीच सड़क पर सबके सामने विजय की बेइज्जती की है।"

घोड़ागाड़ी चलने के बाद लोगों का ध्यान जतना की ओर गया। पानी का छींटा देने से उसे पूरी तरह होश आ गया। लेकिन वह चल सकने की स्थिति में नहीं था। चमार को कौन सहारा दे? विवेकानन्द ने भीड़ पर नजर दौड़ाई। जब कोई आगे नहीं बढ़ा तो उसने जतना को उठाकर उसे सहारा देते हुए उसके घर की ओर ले चला। विवेकानन्द का यह साहस देखकर कुछ किशोरों को शर्म महसूस हुई। दो-तीन किशोर आगे बढ़े और जतना को सहारा देते हुए ले गये। विवेकानन्द अपने घर लौट आया।

पोखर के भिंडे पर घटित घटना का समाचार आग की तरह पूरे गाव में फैल गया। राघव सिंह उस समय रेलवे लाइन के उस पार वाले खेतों पर गये हुए थे। उन तक भी यह खबर जा पहुंची। राघव सिंह धीर और गम्भीर व्यक्ति थे। छोटी मोटी समस्याओं को देखकर वह विचलित नहीं होते थे। किन्तु, यह घटना ऐसी थी कि इसके चलते उनकी अपनी पारिवारिक स्थिति डावाडोल हो सकती थी। पिछली बार जब विजय चेतनवडडी के मैदान में विवेकानन्द के हाथों घायल हो गया था तब उन्हें तीन बीघे जमीन बेचकर भुवनेश्वर सिंह से समझौता करना पड़ा था। सत्रह हजार रुपये का कर्ज उनपर अभी चढ़ा हुआ था।

राघव सिंह को विवेकानन्द का यह व्यवहार उचित नहीं लगा। विजय और धर्मेन्द्र मास्टर ने जतना के साथ जो कुछ किया, गाव में रैयत या नौकरों के साथ हर मालिक ऐसा ही करता आया है। इसमें प्रमोद अपनी टांगें अड़ाने गया ही क्यों? जतना भुवनेश्वर बाबू की रैयत नहीं नौकर है, जर खरीद गुलाम है। वे चाहें, तो उसकी खाल खींच लें, इसमें गाव वाला

को क्या लेना देना ? हर तीसरे दिन जतना जमींदार के मनजर से या सिपाही से मार खाता ही रहता है और सुबह होते ही उसी जमींदार की सेवा में हाजिर हो जाता है। लात गाली खाकर भी जब जतना उन्हीं की सेवा में जुटा रहता है, तब प्रमोद के कलेजे पर क्यों छुरी फिरने लगी ? राघव सिंह को अपने बेटे प्रमोद पर गुस्सा हो आया। उन्हें लगा कि प्रमोद खुद ही एक समस्या बनता जा रहा है। एक दिन इसके चलते कहीं पूरा परिवार ही न स्वाहा हो जाय। उसे क्या पड़ी थी कि जतना को बचाने गया ? आखिर जतना है क्या चीज ? जतना जैसे कितने चमार-दुसाध इसी गांव में मार डाले गये और कभी किसीने उफ् तक नहीं की। पुलिस ही नहीं सारी हुकूमत भुवनेश्वर सिंह के साथ है। युद्धकोश में पचास हजार रुपया देकर भुवनेश्वर सिंह ने अंग्रेजी सरकार से राय साहब का खिताब पा लिया है। वे दिन दहाड़े किसीकी हत्या करवा दें, तो भी उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। अब उनका अपना बेटा ही उस जुल्मी जमींदार से उलझ पड़ा है। भगवान ही मालिक है। यह सब सोचकर राघव सिंह खेत में नहीं रुक पाये और घर की तरफ चल दिये।

विवेकानन्द अपने विचारों में उलझा हुआ था। भोला ने उससे कहा था, "भारत मां कोई देवी नहीं है। वह पहाड़, जंगल, नदी, तालाब, खाई और समतल भी नहीं है। वह तो दलितों, पीड़ितों, उपेक्षितों के घर घर में कहीं धान कूटती है तो कहीं आटा पीसती है। कहीं बच्चों को दूध पिलाकर उनका पालन पोषण करती है तो कहीं वह आधी पानी में खेतों में धान रोपती रहती है। भारत माता पूरे देश की प्रतीक है और वह देश जंजीरों में जकड़ा हुआ है। भारत माता वही है जिसकी उपज और जिसका धन विदेशी हुकूमत लूटकर ले जाती है। जब तक यह जंजीरों में बंधी है तब तक यहां गरीबी रहेगी, पिछड़ापन रहेगा और यहां के लोग अपमानित होकर खून के घूंट पीते रहेंगे।" लेकिन यह भुवनेश्वर सिंह कौन है ? और विजय ? ये लोग तो इसी देश के निवासी हैं। भारत माता क्या इनकी मां नहीं लगती ? जब देश स्वाधीन हो जायगा तब क्या जतना की गरीबी दूर हो जायगी ? उसे भी इज्जत के साथ जीने का अधिकार मिल जायगा ? विवेकानन्द को याद आया, भोला ने कहा, 'गुलामी है, इसी

लिए शोषण है। ये जमीदार अग्रेजो के एजेंट ह। इ्हीकी बदौलत वे अपनी हुकूमत चलाते हैं। विदेशी हुकूमत बदर बाट के सिद्धा त पर ही कारगर हा पाती है। जब अग्रेज चले जायेंगे, जमीदारी प्रथा भी समाप्त हो जायेगी। समाज मे तब विषमता नही रहेगी। धन का ्यायोचित वितरण होगा। तब ऐसा नही होगा कि कमाने वाला भूखा रह, कीडे-मकोडो की जि दगी जिए और बडे बडे पूजीपति या जमींदार ऐश-मौज करें।"

जितना ही विवेकान द विचारो के समुद्र की ओर बढता जाता, उतने ही जोर से उसके दिल दिमाग मे ज्वार उठने लगते। यह कैसे होगा? अपना स्वाथ कोई अपने-आप तो छोडता नही। अन त काल से शारीरिक श्रम करने वाले या ईमानदारी का जीवन जीने वाले परवश रहते आये हैं। जो येन-केन प्रकारेण प्रभुत्वसम्प न हो जाता है, सम्पदा और सत्ता के शिखर पर जा पहुचता है, वह कभी नीचे नही आना चाहता, बेशक नीचे नारकीय जीवन जीने वालो की आखो के सामने आदर्शों और सिद्धान्तो का एक लुभावना सपना अवश्य बुन देता है ।

विवेकान द इ्ही विचारो म डूबा हुआ था कि एक ओर से उसके पिता राघव सिंह आये और दूसरी ओर से हवेली का सिपाही आ धमका। राघव सिंह अपने बेटे स कुछ पूछ नही पाये थे कि सिपाही ने कहा

"बडे सरकार ने आपका बुलाया है। वे दालान मे बैठे आपकी बाट देख रहे हैं।"

राघव सिंह न विवेकान द की ओर देखा। विवेकान द उ्हीकी ओर देख रहा था। उस समय उसकी आखें और उसका मुखमडल राघव सिंह को बहुत अच्छा लगा। उ्होने सोचा, उनका बेटा प्रमाद ठीक है और वे गलत हैं। अ याय का विरोध करना ही चाहिए, चाहे अ यायी असीम शक्ति क्यो न रखता हो। पिता पुत्र मे एक मूक भाषण हुआ और राघव सिंह के मन के भीतर से आवाज आयी, 'लीक छोडकर सिंह ही चल सकता है।' बिना कुछ बोले वह चुपचाप सिपाही के साथ हवेली की ओर चल पडे।

८

सूरज की रोशनी दूर पडो के पीछे झाकने लगी। किसान अपने मवेशियो को सानी पानी देने मे व्यस्त हो गये थे। उसी समय गरीब खेतिहर मजदूर बाहर के बरामदे म नीचे जमीन पर बैठे हुए थे और ऊची जाति क कुछ गृहस्थ वही रखी चौकियो पर। कुल मिलाकर चौदह-पन्द्रह आदमी होंगे। हवली क सामने वाले चौडे आगन मे दो दो, चार चार के गिरोह म बठे लोग आपस मे बातें कर रहे थे। आगन के किनारे, बखारिया के पास, तीन टायर गाडिया खडी थी। राघव सिंह समझ गये कि बाबू भुवनेश्वर सिंह भीतर के बडे हाल मे बैठे होंगे। गरज कि पेशी दीवाने-आम मे नहीं होनी है।

राघव सिंह के बराभद पर पाव रखत ही चौकी पर बैठे हुए एक व्यक्ति ने उन्ह भीतर जाने का इशारा किया। राघव सिंह ने भीतर जाकर देखा कि बाबू भुवनेश्वर सिंह बायी हथेली पर तम्बाकू तोड-तोडकर मजा रह ह। उन्हे सुरती खान की आदत थी। राघव सिंह को देखते ही बोले

"आइए बाबू राघव सिंह, बैठिए। सुबह की घटना का पता आपको हो गया होगा।"

"जी हा, बहुत बुरा हुआ।' राघव सिंह न वहा बैठे श्यामनुमा पर विहगम दृष्टि डालते हुए कहा। भुवनेश्वर सिंह की दाहिनी ओर कुछ हट कर, विजय के बिलकुल पास एक कुर्सी पर मास्टर धर्मेन्द्र बठे हुए थे। धर्मेन्द्र ने छूटते ही कहा

"आप इसे बुरी बात कहते है ? यह तो अनथ हो गया। बीच सडक पर दजनो गाव वालो के सामने विवेका न विजय को बेइज्जत किया, वह भी एक चमार की खातिर।'

"ऐसा कभी इस गाव मे नही हुआ। अब तो शूद्रो की बन आयेगी। हम बाभन ठाकुरो की इज्जत धूल मे मिल जायेगी। सुबह-सुबह जतना चमार ताडी पीकर बीच गाव से गालिया बकता हुआ निकल रहा था। और जब उसे मना किया गया तो उल्टे विवेकानन्द ने विजय बाबू को मारने के लिए चाबुक उठा लिया। लगता है, यह लडका पागल हो गया है।

शिवबदन न मास्टर धर्मेंद्र का समर्थन ही नही किया बल्कि अपन कथन से पहले से बिछी सुरग मे आग लगा देने की कोशिश की। शिवबदन जमींदार का चापलूस था और मैनेजर भी। वह दूसरे गाव का रहने वाला था, इसलिए इस गाव के किसी व्यक्ति या वस्तु मे उसकी आस्था नहीं थी। वह परले दर्जे का पतित, चरित्रहीन और स्वार्थी व्यक्ति था। सभी जानते थे कि वह जतना की जवान बेटी जिरिया से जार कम का सम्बध रखता था, फिर भी उसके मन मे जतना के प्रति थोडी सी सहानुभूति भी नही थी। राघव सिंह न उस चापलूस की ओर कातर दृष्टि से देखा मानो कह रह हा कि रहम करो, वैसे ही तुम काफी अनथ कर चुके हो। राघव बाबू न सिर झुका लिया, वे कुछ बोल नहीं सके। भुवनेश्वर सिंह ने खामोशी तोडते हुए पूछा

"अब आप ही बताइए कि क्या किया जाए? लक्ष्मी मेरे पास है और सरस्वती आपकी ओर। दोनो के सहयोग से ही समाज चल सकता है।"

"प्रमाद अभी बच्चा है। उसे ठौर कुठौर की समझ नहीं है।" राघव सिंह ने विनीत होकर कहा।

"बच्चा कह देने-भर से तो बात खतम नही हो जाती। एक चिनगारी पूरे नगर को जलाकर राख कर देती है। आज विवेका ने विजय को बेइज्जत किया है, कल वह बडे सरकार पर हाथ उठा सकता है। शैतान के आने का नहीं, परकने का डर है। कोई भी व्यवस्था बिना अनुशासन और मयादा के नही चल सकती।" मास्टर धर्मेंद्र ने आग मे घी डालन के विचार से रोपावेष्टित स्वर म कहा। एक गाव वाला मौके से लाभ उठाकर बोल उठा

"हा राघव भाई, यह अच्छा नही। क्यो शिवबदन भाई?"

'हा भाई, विवेकानन्द ने गाव की नाव म छेद कर दिया है। अब इसके डूबने मे देर ही क्या है?" शिवबदन ने हा मे हा मिलाई।

"कृतघ्नता की हद हो गयी। मैंने आपसे बिना कुछ लिए ही उसे लिखाया पढाया, इतना स्नेह दिया, विजय और उसमें कभी कोई भेद नही समझा और वह ऐसा दुष्ट निकला।" धर्मेंद्र ने अपने चौड़े जबडे को

फैलाकर चीखते हुए कहा।

राघव सिंह समझ गए कि वातावरण उनके विरुद्ध है। यहां उनका कोई तर्क काम नहीं आएगा। दीन हीन होकर उन्होंने सबकी ओर देखा और कहा।

"जो होना था, सो हो गया। प्रमोद के इस कसूर के लिए मैं हाथ जोड़कर भुवनेश्वर बाबू से माफी मांगता हूं।"

"मैं कौन होता हूं, माफी देने वाला।" भुवनेश्वर सिंह ने छूटते ही कहा। राघव बाबू ने दुखी होकर पूछा

"तो फिर क्या हुक्म है?"

"विवेका स्वयं यहां आकर विजय से माफी मांगे। बड़े सरकार की यही इच्छा है।" मास्टर जी बिना किसी संकोच के बोल उठे। भुवनेश्वर सिंह ने दूसरी शर्त लगाई

"उसे मास्टर जी से भी माफी मांगनी पड़ेगी और वह भी बाहर बरामदे में सबके सामने।"

राघव सिंह समझ गए कि पूरी योजना पहले ही निश्चित कर ली गयी है। यहां बैठा हर व्यक्ति एक-दूसरे के समर्थन में बोल रहा है। वह जानते थे कि प्रमोद टूट जाएगा लेकिन झुकेगा नहीं। फिर भी वहां उपस्थित लोगों को संतुष्ट करने के लिए उन्होंने कहा

"जैसी आप लोगों की इच्छा। प्रमोद को बुलवा लिया जाए, वह क्षमा मांग लेगा तो सबसे अधिक खुशी मुझे होगी।"

विद्यानन्द को बुला भेजा गया। भुवनेश्वर सिंह को उम्मीद नहीं थी कि इतनी आसानी से राघव सिंह तैयार हो जाएंगे। राघव सिंह की सहज स्वीकृति मिलते ही वातावरण की गम्भीरता दूर हो गयी और सब खुलकर बात करने लगे। धर्मेन्द्र ने अपनी कटुता पर पर्दा डालने के ख्याल से कहा

"बात यह है राघव बाबू, कि हम लोग विवेका की भलाई चाहते हैं। वह होनहार लड़का है। अगर कभी वह बेकाबू हो गया तो उसका भविष्य अन्धकारमय हो सकता है। प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी पर कड़ी नजर रखनी चाहिए क्योंकि वह यदि बहुत अच्छा हो सकता है तो बहुत बुरा भी हो

सकना है।"

"हा, राघव भाई, विवेकानन्द को इतनी आजादी देकर आपने अच्छा नहीं किया। वह अभी से अपने-आपको जवाहरलाल समझने लगा है। जरा सोचिए जवाहरलाल जी तो बैरिस्टर ह। समृद्ध परिवार के रत्न है। उनके पास इतना धन है कि उनके कपडे धुलने के लिए पेरिस भेजे जाते है। इसके बावजूद उन्होंने त्याग और तपस्या की मिसाल हम सबके सामन पश की ह। वे जिसे तिसे उकसाने का काम नही करते हैं। मैं राय साहब होन हुए भी, ऐसे नेताओं की इज्जत करता हू। लेकिन विवेकानन्द अभी क्या है? कालेज तक का मुह नही दखा है। बडी कठिनाई से आप अपने इन बेटो को पढान मे लग हुए हैं और यह विवेकानन्द आपकी स्थिति को समझ नहीं रहा है, बल्कि चमार दुसाध को बहकाता फिर रहा है। वह भूल जाता है कि समाज की मयादा होती है। भगवान ने सबका अपने-अपने कमफल भुगतने के लिए दुनिया मे भेजा है। भगवान के लेख को मिटाने वाल हम कौन होते है? मेरी नजर मे तो विजय और विवेकानन्द मे कोई अन्तर ।"

उसी समय विवेकानन्द आ पहुचा। भुवनेश्वर सिंह अपनी बात पूरी नही कर पाए। क्षण भर के लिए फिर वही पहले जसी खामोशी छा गयी। राघव सिंह ने प्रमोद की ओर मुखातिब होकर चुप्पी को तोडते हुए कहा

'जमीदार साहब की इच्छा है कि तुम विजय और मास्टर जी से आज सुबह की भूल के लिए क्षमा मागो। मैं भी इसीमे तुम्हारी भलाई देखता हू। यह गाव है, शहर नहीं। जैसा देश, वैसा वेष।" अपने पिता की बात सुनते ही विवेकानन्द के चेहरे पर नफरत और व्यग्य की समन्वित मुस्कराहट दौड गयी। उसने विजय की ओर देखा और फिर धर्मेंद्र की ओर। विजय ने अपनी आखें झुका ली। सबकी दृष्टि विवेकानन्द की ओर लगी हुई थी। केवल भुवनेश्वर सिंह दरवाजे के बाहर दूर के खेत मे नजर गडाए हुए थे और अगूठे से बाइ हथेली पर सुरती मसल रहे थे। बडे कमरे म अजीब शाति छायी हुई थी।

"मैंने तो कोई भूल नहीं की है।" विवेकानन्द ने आत्मविश्वास से कहा। मास्टर जी ने तमककर पूछा

"बीच सडक पर इतने आदमियो के बीच तुमने मेरी और विजय की बेइज्जती की, विजय पर चाबुक उठाया, उसे क्या तुम अपनी भूल नही मानते हो ?"

मास्टर की बातें सुनकर विवेकानन्द को क्रोध आ गया। उसकी इच्छा हुई कि मास्टर के चौडे तमतमाये चेहरे पर भरपूर तमाचा दे मारे, एसा तमाचा कि उसकी कनपटी तक पर स्याह दाग पड जाए। हरामी बोलता कैसे है, ग्रामोफोन रिकाड की तरह। विवेकानन्द आपादमस्तक जल उठा था किंतु वह अपने मनोभाव पर नियत्रण रखता हुआ बोला

"और आपने इतने लोगो के बीच जतना को मारते मारते बहोश कर दिया सो क्या बडा अच्छा काम किया ? आप तो पढे लिखे शहरी सुसस्कृत व्यक्ति है। क्या आप इतना भी नही जानते कि किसीको उसकी पत्नी के सामने नही मारना-पीटना चाहिए ? आप अपनी इज्जत की दुहाई देते फिर रहे है लेकिन आपकी नजर मे हर आदमी इज्जत पाने का हकदार नही होता। क्या आपको स्वय भगवान ने बनाया है और जतना को ? उसे जन्म देने वाले क्या आप है ? आपने ही उसे धरती पर उतारा है ? आप सोचते हैं कि जतना मनुष्य नही है, उसे और उसके जैसे लोगा को कीडे मकोडा की तरह मसलकर मिटा देने से समाज का कुछ बनता बिगडता नही है ? मास्टर जी, मैं आप लोगो के इस सिद्धात का कायल नही हू। मैंने विजय पर चाबुक नही उठाया। बेशक जतना को आप लोगो की क्रूरता और पैशाचिकता का शिकार होने से बचाया, इसमे मेरी भूल कहा है ?'

विवेकानन्द की बातें सुनकर उपस्थित लोग सन्नाटे मे आ गए। किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि विवेकानन्द वहा उपस्थित लोगो, विशेष कर भुवनेश्वर सिंह जैसे बडे जमीदार के सामने एसी अभद्रता करने का साहस करेगा। कुछ लोगा ने छिपी नजरो से एक दूसरे को देखा। कोई कुछ बोल नही सका। विजय अपनी जगह पर हिल डुल करने लगा, जसे बैठे रहने मे वह कठिनाई का अनुभव कर रहा हो। अत मे वह थूक घोटता हुआ बोला

'क्या जतना की हमसे कोई बराबरी है ?"

"कोई बरावरी नही। इसे मै क्या, सारी दुनिया मानती है और दुर्भाग्य से इसी मान्यता पर चलती भी है। जतना खेत जोतता है। फसल उगाने के लिए बारह घटे खटता है और सबकी चाकरी करता है। इसके बावजूद अपने बूढे बाप, बीवी और बच्चो को दोनो शाम सूखी रोटिया तक नही दे पाता। उसकी देह पर कभी किसीने कुर्ता या कमीज नहीं देखी। कमर म चियडो के अतिरिक्त उसने कभी कुछ नही पहना। उसकी बराबरी तुमसे किस प्रकार की जा सकती है ? तुम तो घोडागाडी पर सैर करते हो, बिना काम किए छह सात बार खाना खाते हो, आराम और ऐश की जिन्दगी जीते हो और ज्ञान की वद्धि के लिए मास्टर जी जैसे आदमी से मत्र लेते हो। तुम्हारी उसकी कोई बराबरी नही है।"

भुवनेश्वर सिंह अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रा मे अब तक बैठे हुए थे। इतनी बातें हो जाने के बाद भी उनके चेहरे पर किसी तरह के भाव-अनुभाव की रेखाए नही उभर पायी थी। राघव सिंह कातर दृष्टि से कभी अपने प्रमोद की ओर तो कभी भुवनेश्वर सिंह की ओर देखने लग जाते थे। मास्टर धर्मेन्द्र ने क्रूरतापूर्ण हसी हसते हुए कहा

"यह अपनी-अपनी किस्मत है, विवेका। विजय ने जतना या तुमसे कुछ छीन तो नही लिया है। सत्य तो यह है कि जतना की परवरिश इसी हवेली से होती है। तुम्हारा दिया हुआ वह नही खाता। बल्कि तुम लोगो को भी, जरूरत पडने पर, इसी हवेली के सामने हाथ फैलाना पडता है।"

"यह तो समय समय की बात है मास्टर जी, किस्मत की नही। जमीदारी या पूजी पसीने की कमाई से नही आती। यह मैं मानता हू कि विजय के पूवज किस्मत के धनी थे कि इतनी बडी जमीदारी उनके हाथ लग गयी। जिस कर्म के लिए सजा मिलनी चाहिए थी, उस कर्म के लिए जमींदार के रूप मे पुरस्कार मिल गया। लेकिन, आने वाला समय बताएगा कि विजय की और आपकी किस्मत, बदले हुए जमाने मे, किधर जा रही है।"

"तो तुम अपनी गलती के लिए शर्मिन्दा नही हो ?" अत मे भुवनेश्वर सिंह ने पूछा।

"जब मैंने गलती की ही नहीं, तब शर्मिन्दा होने की बात कहा

उठती है।

'जो मैं पूछता हू उसका जवाब दो। मैं बहस करने का आदी नही हू।'

'बहस के लिए कोई आधार ।''

"चुप रहो। ज्यादा समझदारी भी जी का जजाल हो जाती है।" धर्मेंद्र न गुस्से से कापते हुए कहा। विवेकानन्द ने ऊचे स्वर मे जवाब दिया

"किस किसकी जुबान पर लगाम लगाएगे मास्टर जी? बहुत सी बातो को हवा ले उडती है और हवा को आप मुट्ठी मे बद नही कर सकते। जिस राह पर आप चल रहे ह, उस राह पर जरा सभलकर पाव बढाइएगा। यह राह बहुत ही खतरनाक मजिल की ओर जाती है। विजय को गलत काम करने से रोककर मैंने उसकी भलाई ही की है, लेकिन आपकी राह पर चलकर वह कहा पहुचेगा इसका अदाजा न तो विजय को है और न जमीदार साहब को।" इतना कहकर विवेकानन्द तेजी से दालान के बाहर चला गया। सब लोग हक्का बक्का होकर कुछ देर तक उसे जाते हुए देखते रहे।

दिन काफी चढ आया था। अधिकतर लोगो को सूरज की व मौसम की गर्मी अच्छी नही लग रही थी। विवेकानन्द के अतिम वाक्य से भुवनेश्वर सिंह समेत उनके पास बैठे हुए सभी लोगो के दिमाग मे एक अजीब कटुता का भाव भर गया। वातावरण को आशकापूर्ण शाति न ग्रस लिया। राघव सिंह न प्रश्नवाचक दृष्टि से भुवनेश्वर सिंह की ओर देखा। भुवनेश्वर सिंह उस समय अपनी अगली योजना बनाने मे व्यस्त हो गए थे।

६

दुपहर का समय था। हवा मे उमस थी। एक बार हल्की वर्षा हो चुकी थी। किसान मकई की खेती करने के लिए तैयार हो रहे थे। सबको जल्दबाजी थी कि खेत म हल चला दिया जाए फिर जल्दी से बीज डाल दिया जाए।

कुछ ही दिनों बाद बरसात शुरू हो जाएगी तब तक मकई के पौधे कुछ बडे हो जाएंगे और तब उनके डूबने या सूखने खतरा नही रहगा।

बाबू भुवनेश्वर सिंह अपने बरामदे पर बैठे बडी उत्सुकता से पश्चिम की तरफ देखते जा रहे थे। सडक के उस पार खेत थे। खेत मे पगडंडिया बनी हुई थीं। वही पास मे उनका मैनेजर शिववदन खडा था। वह भी रह रहकर खेत की ओर देख लेता था और जब उधर से किसीको आते हुए नही देख पाता तब उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आती थीं। उसने थोडा झुककर धीरे से कहा।

"कही जतना को विवेकवा ने पोट तो नही लिया। इधर चार पांच दिन से विवेकवा को चमार टोली की तरफ जाते देखा है।" शिववदन जानबूझकर विवेकानन्द को अनादृत करने के लिए बार बार 'विवेकवा' कहकर पुकार रहा था।

भुवनेश्वर सिंह ने सिर उठाकर अपने मैनेजर की ओर देखा। उनकी भृकुटी चढ गयी। फिर, खेत की ओर देखते हुए वे स्वगत भाषण करते हुए-से कहने लगे, "फिर तो सीधे चौदहम विद्या का सहारा लेना पडेगा, भले ही दो चार फौजदारी क्यों न चल पडे।"

आज की योजना मे भी फौजदारी ही अन्तर्निहित थी। फर्क यह था कि इससे भुवनेश्वर सिंह पृष्ठभूमि मे बने रह जाते थे। योजना सफल हो जाने पर सांप भी मर जाता, लाठी भी नही टूटती। दारोगा को खबर भेजी जा चुकी थी। वे आते ही होंगे। यदि तब तक योजना ने कायरूप नही लिया तो? भुवनेश्वर सिंह सोच रहे थे।

"हमारा आदमी आ रहा है सरकार। लगता है, काम बन गया है।" शिववदन ने ऐसे उल्लसित स्वर म कहा, जैसे उसके नाम डर्बी की लाटरी निकल आयी हो।

खेत की पगडंडी मे एक गरीब मजूर भागता हुआ चला आ रहा था। हवेली के बाहरी बरामदे पर बैठे दोनों व्यक्ति आतुर होकर उसी ओर देखने लगे। वह आदमी पास आकर बोला

"गजब हो गया सरकार। जतना ने राघव बाबू पर हाथ उठा दिया।"

भुवनश्वर सिंह ने घूरकर उस आदमी को देखा, जैसे पूछ रहे हो कि आगे क्या हुआ ? वह आदमी इसी बात से वेहोश हो रहा था कि आज एक चमार ने गाव के बडे गहस्थ और ऊची जाति के प्रतिष्ठित व्यक्ति पर हाथ उठा दिया। वह आदमी जमीदार की भगिमा को देखकर डर गया और वोला, "उसने सुबह सुबह ताडी पी ली थी। वह होश मे नही था सरकार।"

"फिर क्या हुआ सरकार का बच्चा। पूरी बात क्यो नही कहता।" भुवनेश्वर सिंह ने गरजकर पूछा। वह आदमी भय से कापने लगा। सहायता के लिए उसने मैनेजर की ओर आशा भरी नजर से देखा। मैनेजर ने भी डपट दिया

"अरे साला, आधी बात काहे वोलता है। तुमसे ता कहा था कि अलग अलग से देखते रहना और ज्यो ही कुछ अनहोनी होते देखना कि भागकर हवेली पर आ जाना।"

"जी मालिक, मैं तो खेत के पुरवरिया हिस्से म काम कर रहा था। जतना को क्या सूझा कि उसने राधव बाबू के खेत के साथ लगने वाले सीमाना पर बने आरी डरेर को भी जोत दिया ।"

"क्या बकता है हरामी ? फिर ऐसी वात जुबान पर नही लाना।" भुवनेश्वर सिंह के स्वर मे थोडी घबराहट थी। ठीक उसी समय भुवनश्वर सिंह की नजर सडक की पूव दिशा की ओर चली गयी। टमटम पर दारोगा जी तीन सिपाहियो के साथ चले आ रहे थे। भुवनेश्वर सिंह ने मैनेजर से कहा, "ले जाइए इस गदहे को हवेली के पीछे। ठीक से समझा दीजिए कि क्या कहना है और क्या नही कहना है।'

दालान के सामन टमटम आकर रुक गया। भुवनेश्वर सिंह आगे वढकर दारोगा साहब का स्वागत करते हुए उसे एक ओर ले गए और चार-पाच मिनट तक फुसफुसाहट के स्वर मे उससे बात करते रह। दारोगा न पूरी वात सुनकर हसते हुए कहा

"आप फिक्र मत कीजिए। पहले मैं मौके पर जाकर तहकीकात कर आता हू। फिर हुजूर के पास आऊगा।"

दारोगा अपने सिपाहियो के साथ फिर टमटम पर जा बैठा। टमटम

पश्चिम दिशा की ओर बढ गया। भुवनेश्वर सिंह का चेहरा अचानक ही भयानक हो उठा था। क्षण भर बाद ही उन्होने मैनेजर से कहा, "तुम भी खेत पर चले जाओ। किसीका पूरा भरोसा नही करना चाहिए। क्या पता, दारोगा दोनो तरफ से खाने पीने की व्यवस्था कर ले। तुम बस, चुप चाप देखते रहना।"

उधर घटना यो घटी कि राघव सिंह मकई बोने के लिए अपना खेत तैयार करवा रहे थे। वहा पर साढे तीन बीघे का प्लाट उनका था। उस खेत के बाद ही भुवनेश्वर सिंह का दो बीघे का प्लाट पडता था। जतना भुवनेश्वरसिंह के खेत मे हल चला रहा था। राघव सिंह की नजर रह रह-कर उस ओर चली जाती थी। उन्हें कुछ शक हुआ और वह जब अपने खेत की सीमा पर पहुचे तो देखते क्या हैं कि जतना ने मेड पर भी हल चला दिया है। राघव सिंह ने गुस्से के स्वर मे कहा

"इस मेड को देखो जोत रहे हो ? यह तो सदियो से हमारे और जमी दार साहब के खेत के बीच सीमा के रूप मे बना चला आ रहा है।"

'अब सरकार, हमे का मालूम कि यह मेड-टरेर किस खेत मे पडता है।'

"तू तो ऐसी बातें कर रहा है, जैसे इस गाव के लिए बिल्कुल नया है। जानता नही कि मेड जोता नही जाता।"

"हमारे लिए तो बडा मुसकिल है। मैनेजर साहब इसे भी जोत डालन को बता गए हैं और आप मना करते ह।"

"बहस मत कर। जसा कहता हू, वैसा ही कर।"

"यह कैसे हो सकता है ? मेरे मालिक बडे सरकार हैं। उनका नमक खाता हू। अब आप ही बताइए कि आपका हुकुम मानू कि जमीदार साहब का ?"

जतना से कुछ दूर पर राघव सिंह खडे थे। अन्तिम वाक्य जतना ने राघव सिंह के बिल्कुल पास आकर कहा था। उसके मुह से ताडी की दुर्गन्ध भभर उठी। राघव सिंह ने सोचा, इससे मुह लगाना अभी बेकार है। उन्होंने खेत मे काम कर रहे अपने आदमी को पास बुलाकर कहा

"जुते हुए मेड पर फिर से मिट्टी चढा दे। गाछी के पास से सरपत

निकालकर पाच छ जगह लगा दे ताकि मेड मिटने न पाए।"

राघव सिंह के जन ने जुते हुए मेड के हिस्से पर मिट्टी चढाना शुरु किया था कि जतना इस प्रकार उछलकर वहा जा पहुचा, जिस प्रकार सिखाया हुआ कुत्ता फेंके हुए गेंद को पकडने के लिए दौडता है। जब तक जमींदार साहब के खेत में काम करने वाले कुछ और मजदूर भी वहा आ पहुचे। जतना ने लपककर राघव बाबू के जन का हाथ पकड लिया। राघव बाबू के जन ने जतना को जोर का धक्का दिया जिससे वह दूर जाकर चारो खाने चित पड गया। तब तक दोनो तरफ के लोग एक दूसरे से भिड गए। शोरगुल सुनकर आसपास के लोग भी वहा आ पहुचे।

थोडी देर राघव सिंह हतप्रभ से खडे रहे। उन्होंने ऐसी घटना की कल्पना तक नहीं की थी। वह शात प्रकृति के आदमी थे। शायद ही कभी किसीने उन्हें लडाई झगडे मे पडते देखा हो। किन्तु आज उलटी गगा बहते देखकर उनको भी क्रोध आ गया। उनके दिमाग मे विजय और प्रमोद की घटना चक्कर काट गयी। वह समझ गए कि जमींदार साहब के प्रतिशोध की चक्की चल पडी है। इस चक्की मे या तो वे बिना आह ऊह किए पिसते चले जाए या इसे चलने ही नहीं दें। दूसरा विकल्प ही उन्हे ठीक जचा और वह तेजी से उस ओर दौडे जहा दोनो दलो में मुठभेड हो रही थी। ठीक उसी समय जतना भी उठकर उसी ओर लपका आ रहा था। राघव सिंह ने जतना को रोकना चाहा। जतना अपना पूरा होश हवाश खो चुका था। उसके दिमाग म मैनेजर की यह बात बैठी हुई थी कि यदि उसने आज राघव सिंह की इज्जत उतार ली तो उसे बारह रुपये ताडी पीने के लिए इनाम और डेढ सौ रुपया बेटी के ब्याह के लिए नकद मिल जाएगे। उसे पुलिस की चिंता भी नहीं करनी है। ठीक समय पर जमींदार साहब उस मोर्चे को सभाल लेंगे। इसलिए जतना मन ही मन निश्चय कर चुका था कि आज वह खूब जमकर ताडी पिएगा और पिछला उधार भी चुकता कर देगा। राघव सिंह को सामने देखते ही पहले तो वह झिझका लेकिन पेट की ताडी अचानक दिमाग मे पहुच गयी। उसने राघव सिंह को ढकेलकर आगे बढना चाहा। राघव सिंह ने उसकी बायी बाह कसकर पकड ली थी। जतना ने मौका देखा ही दाहिने हाथ का पैना

राघव सिंह पर चला दिया। एक निश्चित संस्कार और परम्परा में पले राघव सिंह का मन अचानक जतना के इस व्यवहार पर विश्वास नहीं कर सका। पैने की चोट उनके कंधे पर पड़ी थी। वह जतना को छोड़कर अनायास ही कंधा सहलाने लगे। तब तक जतना ने दूसरा वार करने के लिए हाथ उठाया ही था कि पीछे से विवेकानन्द ने उसका पैना पकड़कर छीन लिया।

शोरगुल सुनकर विवेकानन्द वहां जा पहुंचा था। राघव सिंह उसे देख नहीं पाये थे। विवेकानन्द ने दूर से ही अपने पिता को भीड़ की तरफ बढ़ते देखा था और यह भी देखा था कि जतना बुरी नीयत से उनकी तरफ लपका जा रहा है। विवेकानन्द ने आव देखा न ताव और जतना पर पैना बरसाना शुरू कर दिया। नये विचार का होते हुए भी वह अपने पिता का अपमान बर्दाश्त नहीं कर सका। क्रोधी वह था ही, इसलिए उसे इतना भी होश नहीं रहा कि पैने का प्रहार जतना के सिर पर हो रहा है कि पीठ पर। जब जतना लहू-लुहान होकर खेत में गिर पड़ा तब जाकर विवेकानन्द को वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। उसने अपने पिता की ओर देखा जो पास में ही चल रहे गुत्थमगुत्थी और मारपीट से बेखबर अपने बेटे की ओर गर्व से देख रहे थे। उनकी आंखें कह रही थीं कि तुम्हें जन्म देकर तुम्हारी मां की कोख सार्थक हो गयी।

दोनों अभी इसी मनोदशा में खड़े थे कि तभी सामने की सड़क पर टमटम आकर रुका। सिपाही दौड़ते हुए खेत की तरफ लपके। कुछ मजदूरों ने सिपाहियों को देख लिया था और वह अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए। जतना के साथ साथ विवेकानन्द और राघव बाबू को भी दारोगा ने पकड़ लिया। सबको हवेली के दालान में ले आया। दंगा फसाद और कातिलाना हमला करने के जुर्म में दारोगा ने तीनों अभियुक्तों पर मुकदमा चलाने का फैसला किया। दोनों खेतों पर धारा १०४ लगा दी गयी।

विवेकानन्द और उसके पिता को जमानत पर छोड़ दिया गया किन्तु जतना की जमानत देने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ। इसलिए उसे ले जाकर हवालात में बन्द कर दिया गया।

१०

धर्मेन्द्र उसी गाव का रहने वाला था, जिस गाव की राधा थी। धर्मेन्द्र का पिता रामलाल मुजफ्फरपुर शहर मे कपडे के एक थोक व्यापारी के यहा मुनीम था। धर्मेन्द्र को जन्म देने के तीन साल बाद ही उसकी मा इस दुनिया से चल बसी थी। इसलिए धर्मेन्द्र को कभी मा का प्यार नसीब नही हुआ। वह कभी जान भी नही पाया कि निस्वार्थ प्रेम किसे कहते हैं। उसके पिता रामलाल को चिन्ता थी कि धर्मेन्द्र का लालन पालन कौन करेगा। सयोग से, कुछ ही महीने पूर्व उसकी बहन विधवा हो गयी थी। पति के जीवनकाल मे ही वह अपनी दो पतोहुओ से त्रस्त थी। पति के मरते ही उसकी बहुओ ने नगा नाच शुरू कर दिया। भाभी की मृत्यु उसके लिए वरदान सिद्ध हुई। वह अपने चार छोटे बडे बच्चो के साथ भतीजा का लालन-पालन करने भाई के घर आ धमकी। लेकिन, वह खुद ही अपने बाल बच्चो को सम्भालते परेशान रहती थी, फिर भला रामलाल के बेटे की खोज-खबर किस प्रकार ले पाती ?

रामलाल घर से समृद्ध आदमी नही था। सेठ की मुनीमी मे उसे इतनी आमदनी नही थी कि वह अपने नवजात शिशु के साथ साथ अपनी बहन रामकली के बाल बच्चो का पूरा खर्च भी उठा सके। जो कुछ रामकली का भाई से नकदी के रूप मे मिलता, उसका बडा हिस्सा उसके अपने बाल-बच्चो पर ही खर्च हो जाता था। रामलाल के पास कुल चार बीघा खेत था, जिसे बटाई पर लगा देना पडा।

मुनीम रामलाल ने जान-बूझकर दूसरा विवाह नही किया था। सेठानी ने उसका स्वाद बिगाड दिया था। सेठ खरीद फरोख्त के काम से लगभग हर महीने हफ्ते डेढ हफ्ते के लिए कलकत्ते चला जाया करता था। उसके घर पर अकेली बैठी सेठानी भला क्या करती ? वह बीस साल के जवान मुनीम की तरफ स्वत ही आकर्षित हो गयी। सेठ की मौजूदगी मे भी घर का सामान जुटाना मुनीम का ही काम था। सेठ की गैरहाजिरी मे सेठानी का सीधा सम्पर्क मुनीम से रहने लगा। मुनीम ने भी सोचा क्या हर्ज है ? हींग फिटकरी लगनी नही है। फिर वह दूसरी शादी करके बेकार की

मुसीबत क्या उठाये ? और इसकी क्या गारण्टी है कि धर्मेंद्र को उसकी सौतेली मा अपने पुत्र के रूप म स्वीकार कर ही लेगी। निदान मुनीम रामलाल बिना कोई जिम्मेदारी उठाये रास-रग मे लीन रहने लगा और उधर धर्मेंद्र एक उपेक्षित बालक के रूप मे अपनी बूआ का तिरस्कार झेलता हुआ बडा होने लगा।

कुछ दिन के बाद मुनीम रामलाल को गाव वालो से मालूम हुआ कि वह जो कपडा ले जाता है या रुपये भेजता है उसका उपयोग उसकी बहन के बच्चे करते हैं। धर्मेंद्र दिन भर गाव के खेत खलिहान मे भटकता रहता है। बुरी सगत मे पडकर धर्मेंद्र कम उम्र मे ही बडे बडे दुर्गुणो का शिकार बन गया है। स्वभाव से वह ईर्ष्यालु, धूर्त और ओछा बन गया है। तब तक धर्मेंद्र दस साल का हो चुका था। किसीके बगीचे से चुराकर आम, केला-अमरूद तोड लेने मे वह पारगत हो गया था। बीडी की ही नही, उसे गाजा पीने की लत भी लग गयी थी। वह अब दूसरो की फसल तक काट लाता था, किसीके दालान पर या घर मे कोई कीमती सामान देखता तो उसे भी उठाकर दुकानदार के हाथ बेच आता था। यह सब सूचना जब रामलाल को मिली तब उसे होश आया और अपने बेटे को वह मुजफ्फरपुर ले गया। वही उसे स्कूल मे दाखिल करा दिया। धर्मेंद्र की बुद्धि कुशाग्र थी। पढने-लिखने मे वह कुशल सिद्ध हुआ किंतु उसके चरित्र म जो गिरावट आ गयी थी, वह सुधर नही सकी। धर्मेंद्र को अपने पिता का मार्गदर्शन या वास्तविक छत्रछाया मुजफ्फरपुर म भी नही मिल पायी। उसका पिता रामलाल स्वय गलत राह पर चल पडा था। उसे कहा फुर्सत थी कि बेटे को स्नेह दे सके। धर्मेंद्र की आदतें पहले से ही बिगडी हुई थी। धीरे धीरे वह मुजफ्फरपुर की हर गली और हर कूचे से परिचित हो गया। छुट्टियो म वह कभी-कभार अपने गाव चला जाया करता था।

राधा को धर्मेंद्र बचपन से ही जानता था। राधा अत्यधिक गरीब परिवार की लडकी थी। उसके घर के पास ही मिडिल स्कूल था। इसीलिए उसे मिडिल तक लिखने-पढ़ने की सुविधा मिल गयी थी। मिडिल पास करने के बाद, उसके लिए पढ़ाई जारी रखना सभव नहीं था। वह चार बहनो म सबसे छोटी थी। निर्धनता के अभिशाप ने राधा के पिता को कहीं का नहीं

रहन दिया था। बटिया पराया धन होती है इसीलिए राधा के पिता ने तीन लडकियों का विवाह एस लोगों से कर दिया था जो उन लडकियों से चौगुनी-पाचगुनी उम्र के थे।

राधा क घर मे प्राय एक ही शाम चूल्हा जला करता था। उसकी मा को लकवा मार चुका था। इसलिए, वह चल फिर सकने योग्य नही रह गयी थी। राधा कभी पोखर के किनारे से कर्मी की साग ले आती, तो कभी आम के मौसम म बगीचे से गिरे हुए आम ले आती थी। जलाने के लिए लकडिया भी उसे ही जुटानी पडती थी। इसी सिलसिले म उसकी भेंट धर्मेन्द्र से होती रहती थी। राधा के सलोने रूप पर धर्मेन्द्र शुरू से ही मोहित था। शहर जाकर वह बातचीत करने में बहुत ही माहिर बन गया था। उसने राधा के दिल पर यह बात बठा दी थी कि एक न एक दिन वह राधा को दुलहन बनाकर अपने घर ले जायेगा। वह भोली भाली लडकी उसके जाल मे फस गयी। स्वभाव से राधा अत्यधिक भावुक थी। थोडी पढाई लिखाई ने उसके मन मे खतरनाक महत्त्वाकाक्षा उत्पन्न कर दी थी।

धर्मेन्द्र शहर से कुशवाहा और आवारा की किताबें लाकर राधा को देने लगा। सस्ते उथले प्रेम की कहानिया राधा क मन म जहर की तरह घुलने लगी। वह धर्मेन्द्र के जाल म फसती चली गयी। उन्ही दिनो भुवनेश्वर सिंह को अपने पागल भाई रामेश्वर सिंह के लिए एक लडकी की जरूरत पडी। व एसे घर मे भाई की शादी करना चाहते थे, जो उनकी तुलना म अत्यधिक निधन और मजबूर हो।

जब भुवनेश्वर जैसे बडे जमींदार न अपने छोटे भाई के लिए राधा का हाथ मागा तब राधा के पिता को अचानक विश्वास नही हुआ। इतने बडे घर म उसकी बेटी जायेगी, यह सोचकर ही राधा के पिता ने अपनी बची खुची जमीन तक बेच डाली। भला वह अपनी बेटी को बिना कुछ दिये लिये कैसे विदा करते? वे जानते थे कि बडे घर की बहुए जेवरो से लदी होती हैं, लेकिन उनकी इतनी सामर्थ्य कहा कि वह बेशकीमती जेवर चढा सकें। इसलिए उन्होंने राधा का हाथ मे बाजू, जवसम, बाक, टर बिजली, तिन खण्डी और पाव म कडा, छरा, पाजेब गले म हमुली और सिकडी बनवाकर दिया। य सब जेवर चादी के थे।

राधा निश्चय ही धर्मेन्द्र के वियोग मे दुखी थी, किन्तु उसका कल्पनाशील मन बडी हवेली के सुख-वैभव की कल्पना मे चचल हो उठा था। उसे क्या मालूम कि जिस व्यक्ति के साथ उसका विवाह होने जा रहा था, वह अनपढ, गवार और पागल था। भुवनेश्वर सिंह जानते थे कि उनके भाई का विवाह किसी अच्छे घर में नहीं हो सकता था। वह तो कहीं न कहीं से कोई लडकी खरीदकर अपने भाई के कौमार्य का कलक धोना चाहते थे। वे गाव समाज को दिखाना चाहते थे कि पागल भाई के लिए उनके मन में अपार स्नेह है। जैसी उन्होंने योजना बना रखी थी, उसे कार्यरूप देने के लिए स्नेह का दिखावा जरूरी था।

जिस देश मे नारियो की पूजा का ढोग रचा जाता है, जिन्हें शक्ति और मा के रूप मे देखा जाता है, उस देश म सच्चाई कुछ और है। वैदिक काल के बाद से ही नारियो को वस्तु से अधिक कोई महत्त्व नही दिया गया है। तभी तो कन्या का दान किया जाता है। खजुराहो की मूर्तिया और चारवाक जैसे विद्वान का वेद विरोधी होना इसी बात को सिद्ध करता है कि भारत के हिन्दू समाज मे नारी को भोग की वस्तु बनाकर रख दिया गया था।

राधा ससुराल पहुचते ही यथार्थ की कठोर धरती पर जा गिरी। उसका पति रामेश्वर सिंह गवार और अर्द्ध विक्षिप्त तो था ही, वह अपने घर मे ही अस्तित्वहीन भी था। आधी जमीदारी का स्वामी होने के बावजूद उसका अधिकार मकई के एक दाने तक पर नही था। राधा आकुल-व्याकुल होकर बेजान जिन्दगी जीने लगी।

धर्मेन्द्र ने उस दिन निश्चिन्तता की सास ली जिस दिन उसे राधा के विवाह की सूचना मिली। वह राधा को विवाह का लुभावना सपना तो दिखाता रहता था, लेकिन वास्तविकता यह थी कि राधा उसकी नजर मे भोग की वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। राधा से वह विवाह करने का अधिकारी भी नही था। दोनो भिन्न जातियो के थे और समाज ऐसे विवाह की अनुमति देता नही। धर्मेन्द्र में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि समाज के विरोध के बावजूद राधा की जिम्मेदारी उठा लेता।

धर्मेन्द्र आई० ए० मे पढ रहा था कि तभी पडोस की एक लडकी से उसका सम्बन्ध हो गया। कुछ ही दिन मे वह मा बनने की स्थिति में जा

पहुंची। उस लडकी का परिवार प्रभावशाली था। धर्मेन्द्र के मन म डर समा गया और वह वहा से भाग खडा हुआ। वह जानता था कि राधा का विवाह एक पागल से कर दिया गया है और वह पागल बहुत बड़े जमींदार का भाई है। उसने सोचा, क्यों न राधा की हवेली मे जाकर एक अजनबी की तरह समय काटा जाये? और एक दिन वह हाथ जोडे हुए भुवनेश्वर सिंह के सामने जा खडा हुआ।

भुवनेश्वर सिंह बदलते हुए समय को देख रहे थे। वह चाहते थे कि उनका लडका समय के अनुरूप सुशिक्षित बनकर उनके नाम को रोशन करे। धर्मेन्द्र का व्यक्तित्व देखकर भुवनेश्वर सिंह प्रभावित हो गये। यदि ऐसा आदमी हवेली म रहकर विजय को नियमित रूप से पढा सके तो विजय निश्चय ही एक दिन बडा आदमी बन जायेगा।

धर्मेन्द्र को हवेली मे काम मिल गया और उसने भुवनेश्वर सिंह के प्रभाव का लाभ उठाकर उनके हाईस्कूल मे शिक्षक का पद भी प्राप्त कर लिया। वह बी० ए० पास नही था, किन्तु जालसाजी मे निपुण था। उसने बी० ए० की नकली डिग्री पश कर दी।

धर्मेन्द्र का व्यक्तित्व आकर्षक था। चेहरे-मोहरे और बातचीत में वह सुदूर पश्चिम का निवासी लगता था। पढा लिखा अधिक नही था, किन्तु पहली मुलाकात म वह किसीपर बुद्धिजीवी होने की छाप छोडता था। वह अपनी मूछें साफ रखता था। उसके सिर के बाल घुघराले थे, भवें तनी हुई थी और वह अपन गोरे पुष्ट शरीर के अनुरूप अंग्रेजी वेश भूषा म रहता था। वह बडा ही व्यवहार कुशल था। हाईस्कूल के हेड मास्टर को शेक्स पीयर, मिल्टन, शेली जोला और टालस्टाय का सम्पूर्ण सग्रह उपहार-स्वरूप समर्पित करके उसन पूरे स्कूल मे अपनी धाक जमा ली। चन्द महीनो मे ही उसका प्रभाव पूरे गाव पर छा गया। विजय तो शुरू मे ही अपने मास्टर जी का गुलामानुदास बन गया। धर्मेन्द्र चाहता भी यही था क्योकि उसके और राधा के बीच यही सम्पर्कसूत्र था। विजय के माध्यम से ही धर्मेन्द्र ने राधा के साथ पत्राचार करने लगा क्योकि उस बडी हवेली मे राधा से सीधे मिल पाना सभव नही था।

धर्मेन्द्र हवेली के बाहर, दालान के एक कमरे मे, रहता था। राधा

अपनी स्थिति से विक्षुब्ध थी ही। धर्मेन्द्र के पत्रों मे विचित्र आशा भरे स्वप्न और उसकी अपनी आतुरता न राधा को बेबस बना दिया और वह रात म, सबके सो जाने के बाद, छिप-छिपकर धर्मेन्द्र से मिलने के लिए उसके कमरे तक पहुचने लगी। मास्टर जी का समय सुख भोग मे कटने लगा।

सामाजिक दृष्टि से राधा रामेश्वर सिंह की पत्नी थी, लेकिन जब कभी वह आइने के सामने खडी होकर अपने आपको देखती तो उसे अहसास होता, जैसे उसकी माग का सिन्दूर एक जलती हुई आग की लकीर है। वह भावशून्य होकर अपने-आपको देखती ही रह जाती थी। अपनी महत्त्वाकाक्षा और कोमल भावनाओ की तिलाजलि देकर राधा जड बन गयी थी। मास्टर धर्मेन्द्र के आते ही उसका बीता हुआ जीवन उसे चिढाने लगा। कुछ दिनो तक वह अपने अतीत को दफन करने की कोशिश म लगी रही, लेकिन धर्मेन्द्र के पत्राचार ने उसके भावुक और दुर्बल मन मे कही न कही सोये हुए प्रतिशोध की आग को कुरेदकर जगा दिया। वह सोचने लगी कि उसे किस कसूर की सजा दी जा रही है? वह अपनी जिन्दगी की लाश को अपने ही कन्धो पर क्यो ढोये? जिस परिस्थिति और समाज ने उसे ऐसी स्थिति म ला पहुचाया है, उसे धता बताकर वह अपनी महत्त्वाकाक्षा के अनुरूप जीवन जीने का प्रयत्न क्यो नही करती? क्या यह जरूरी है कि जिस समाज ने उसके गले मे एक पागल को बाधकर लटका दिया हो, वह उसीको चुपचाप ढोती फिरे? क्या यह जरूरी है कि जिस समाज ने उसकी उम्र और उसकी भावना की रच मात्र भी परवाह नही की, वह उसी समाज की मयादाओ को माथे का टीका बनाकर लगाये रहे?

धर्मेन्द्र से मिलकर वह फिर से अपने अतीत मे लौट गयी। वह एक न एक दिन धर्मेन्द्र के साथ बाहर भाग निकलने की योजना को अपनी कल्पना में कार्यान्वित होते देख-देखकर स्पन्दित होने लगी। वह यथाथ को भूल गयी। राधा के हृदय मे अपने प्रेमी के प्रति श्रद्धा का दीप जल उठा। जीवन के वीरान, बजर, मरुभूमि मे रसधार बरसन लगी। भोली भाली राधा यह सोच भी नही सकी कि उसके सामन 'ओएसिस' का भ्रम पैदा करके उसे छला जा रहा है। यद्यपि वह देख चुकी थी कि सामाजिक रूढिया और

मर्यादाएं कितनी कठोर होती हैं, जिन्हें तोड़ पाना एक नारी के लिए सम्भव नहीं है, फिर भी वह द्वारा धर्मेन्द्र को पाकर भाग्य का भरोसा करने लगी।

दोनों का मिलन व्यापार बेशक सबकी नजरों की ओट में चलता रहा, किन्तु कुछ बातें ऐसी होती हैं जो गुप्त रहते हुए भी अपनी हकीकत से समाज को आभासित कर देती हैं। धर्मेन्द्र और राधा के बीच का संबंध बहुत दिनों तक गुप्त नहीं रह सका। घर के नौकर चाकरों में कानाफूसी होने लगी और यह कानाफूसी गाँव वालों की जुबान पर चर्चा का विषय बन गयी। इसी से संकेत पाकर विवेकानन्द ने उस दिन धर्मेन्द्र पर व्यंग्य कर दिया था। धर्मेन्द्र ने सोचा कि व्यंग्य का यथार्थ दूसरों पर प्रकट नहीं होगा। यह उसका भ्रम था। सच तो यह था कि भुवनेश्वर सिंह तक यह कानाफूसी पहले ही पहुंच चुकी थी और वह एक तीर से दो निशाने साधने की योजना को कार्यरूप देने में लगे हुए थे।

आज धर्मेन्द्र कुछ अधिक व्यग्र था। कई रोज से वह राधा का प्यार पा नहीं सका था। विवेकानन्द के उग्र रूप ने गाँव में किंचित आक्रोश की हवा बहा दी थी। लोग आश्चर्य और आशंका में डूबे हुए थे कि भुवनेश्वर सिंह जैसे सामर्थ्यवान और क्रूर जमींदार ने विवेकानन्द के खुले विरोध को पचा कैसे लिया? भुवनेश्वर सिंह खून का घूंट पीने वाले व्यक्ति तो थे नहीं। इधर भुवनेश्वर समय के इंतजार में थे। उन्हें मालूम था कि स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में किसान आंदोलन उग्र रूप ले रहा है। गाँव के कुछ नौजवान रैयत लोग उस आन्दोलन की ओर उन्मुख भी हैं। भुवनेश्वर सिंह के मन के किसी कोने में विवेकानन्द का भय भी समा गया था। लेकिन उन्हें इन बातों की चिन्ता नहीं थी। वे तो विजय की समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आतुर थे। विवेकानन्द तो फिलहाल शांति भंग करने के अपराध में पुलिस केस में फंस ही गया था। आधी-आधी रात तक दालान में अपने विश्वासपात्रों के साथ भुवनेश्वर सिंह मंत्रणा में मशगूल रहते थे। वे इस तरह की योजना बनाना चाहते थे कि न रहे बांस न बजे बांसुरी। इस मंत्रणा में शिववदन प्रमुख रूप से भाग लेता था। दालान में चहल पहल होने के कारण राधा चाहकर भी धर्मेन्द्र से मिल नहीं

पाती थी। कई राज बाद आज धर्मेंद्र राधा से मिलने वाला था। भुवनेश्वर सिंह अपनी कोठरी मे जाकर सो गये थे। गाव मे पहरा पडने लगा था।

धर्मेंद्र अपनी कोठरी मे इतजार मे बेचैन था। राधा ने ही सवाद भेजा था कि आज वह मिलने आयेगी। बडी बेसब्री के साथ धर्मेंद्र उसका इतजार कर रहा था। लालटेन की रोशनी उसने बहुत ही मद्धिम कर दी थी ताकि राधा अधेरे मे आसानी से वहा आ सके।

आखिर राधा आ पहुची। धर्मेंद्र ने उसे बाहो म भर लिया। राधा अपने आपको छुडाती हुई बोली

"इस तरह छुपकर मिलना कब तक चलता रहेगा?"

"बस, जल्दी ही हम लोग यहा से चल देने का कायक्रम निश्चित कर लेंगे।"

"कब तक?"

"बात यह है राधा, कि हम लोगो को यहा से बहुत दूर चला जाना पडेगा। तुम जानती हो कि मेरे पास इतना पैसा नही है कि किसी शहर मे घर बसाकर हम लोग जीवन यापन कर सकें। मैं यही से लिखा पढी कर रहा हू। कोई न कोई नौकरी मिल ही जाएगी। फिर हम चल देंगे।" राधा कुछ देर सिर झुकाकर खडी रही। उसके मन म तूफान उठ रहा था। उसे भी गाव म चलने वाली चर्चा का आभास मिल चुका था। दो रोज पहले उसके पागल पति ने खीसे निपोरते हुए कहा था

'लाग कहते हैं कि तुम्हारा विवाह तो मेरे साथ हुआ है, लेकिन असली हकदार धर्मेंद्र मास्टर है ही ही ही ही।" राधा अपने पति की बात सुनकर सन्न रह गयी थी। निश्चय ही इसको किसी गाव वाले न कहा होगा। अब अधिक दिना तक उसका प्रेम मिलन इस तरह नही चल पाएगा। राधा ने कातर दृष्टि से धर्मेंद्र को देखते हुए कहा

"मेरे पास बहुत सारे जेवर हैं। यहा से जितने भी जेवर मिले है सब सोने के हैं और बहुत कीमती है, उन्हे मैं ले आयी हू। यह थैला रखो और दो-तीन रोज के भीतर यहा से चलने की तैयारी करो।' इतना कहकर राधा ने कपडे का एक थैला धर्मेंद्र की ओर बढा दिया। धर्मेंद्र मन ही मन प्रफुल्लित हो उठा, लेकिन अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए बोला

"तुम्हारे जेवर बेचकर मैं तुम्हारा पालन पोषण करूंगा। धिक्कार है, मुझे।" यह कहकर धर्मेन्द्र जेवरों से भरा थैला पलंग पर एक ओर फेंक दिया और राधा की बांह पकड़कर उसे बैठाना चाहा, लेकिन राधा ने बैठने से इंकार करते हुए कहा

' मैं आज बैठूंगी नहीं, यह बता दो कि यहां से कब चलना है।"

"बात यह है राधा, कि दारोगा ने राघव सिंह और विवेकानन्द पर मुकदमा चला दिया है। लोगों के साथ साथ मैं भी उसमें गवाह हूं। जब तक इस मुकदमे में मेरी गवाही नहीं हो जाती, तब तक मेरा यहां से जाना गैर कानूनी होगा।'

"यह सब मैं नहीं जानती। हम लोगों के संबंध की बात पूरे गांव में फैल गयी है। तुम नहीं जानते कि बड़े सरकार कितने खूंखार आदमी हैं। कई खून करवा चुके हैं फिर भी दारोगा और हाकिम हुक्काम उनकी जी-हुजूरी में लगे रहते हैं। यदि मैं किसी दिन पकड़ ली गयी तो मेरी खैरियत नहीं। तीन चार दिन के भीतर यहां से चलने का निश्चय कर लो। मैं तुम्हारे संकेत की प्रतीक्षा में रहूंगी।"

राधा यह कहकर कमरे से बाहर निकल गयी। अभी वह दालान के बरामदे से उतरी भी नहीं थी कि बरामदे के दूसरे सिरे पर अंधेरे में एक आकृति दिखाई पड़ी। क्षण भर के लिए वह काठ बन गयी। अंधेरे में भी उसने पहचान लिया कि वह आकृति किसकी थी। जिस बात से वह डर रही थी, वही हुआ। स्वयं रामेश्वर सिंह वहां खड़ा था। कुछ देर तक न तो वह पीछे लौट सकी और न आगे बढ़ सकी। अचानक न जाने उसमें कहां से फुर्ती आ गयी कि वह लगभग दौड़ती हुई-सी वहां से भागकर हवेली में चली गयी।

११

उस दिन शाम को सुमन पटना से गांव आया हुआ था। वह बी० ए० की परीक्षा दे चुका था, साथ ही एक दैनिक अखबार में काम भी करने लगा

था। दरअसल, जिस दिन उसे मालूम हो गया कि उसके पिता कर्ज मे डूबे हुए हैं, उसी दिन उसने सकल्प ले लिया था कि अब वह उनपर बोझ नहीं बनेगा और यदि कोई विकल्प नही रहा तो पढाई भी छोड देगा। उन दिनो उसकी मनोदशा देखकर उसके पिता ने कहा था

"तुम्हें किसी बात की चिन्ता नही करनी चाहिए। मैं अब तक जिन्दा हू, किसी बात की कमी नही होने दूगा। निश्चिन्त होकर अपनी पढाई पूरी कर लो। उसके बाद सब ठीक हो जाएगा।"

सुमन ने अपने पिता की बातो के पीछे छिपी हुई भावना को समझ लिया था। वह जानता था कि उनके इस कथन मे कितनी पीडा है, कितनी बेचैनी और कितनी वेदना है। वह यह भी जानता था कि जिस पिता के हृदय मे पुत्र को लेकर बडे-बडे सपने खिल रहे हो, वह पिता अपनी उदारता के घातक परिणामो से बेखबर हो जाता है।

सुमन के दृष्टिकोण मे भी परिवर्तन आने लग गया था। पहले उसकी मान्यता थी कि विद्या साध्य है, जिसके लिए कभी-कभी जीवनपर्यन्त साधना करनी पडती है। उसकी यह धारणा अब बदल गयी थी। वह मानने लगा था कि विद्या साधना के अतिरिक्त और कुछ नही है।

इधर कान्ता का वियोग भी उसके लिए असह्य हो उठा था। लुक-छिपकर मिलना या बैठ-बठकर सपनो के महल खडे करना उसे पीडादायक लगने लगा। सुमन को लगा कि अपने आपको ही नहीं, वह कान्ता को भी छल रहा है। यदि वह कान्ता के अभाव मे सुखी नही रह सकता और यदि कान्ता के सहवास मे ही सच्चा आनन्द है, तो फिर वह उससे विवाह क्यो नही कर लेता? इन प्रश्नो मे वह उलझ ही रहा था कि एक दिन कान्ता ने उससे कह दिया

"कब तक इस तरह लुका छिपी की जिन्दगी चलती रहेगी? हम-तुम इतने दिनों से बठकर सपने देखा करते है और भविष्य की तस्वीर बनाकर ही सतोष कर लेते हैं। स्वप्न और तस्वीर जिन्दगी नही होती। हम दोनो को कठोर धरती पर उतरना पडेगा। चाचा जी कई बार मेरी शादी की चर्चा घर मे छेड चुके हैं। उन्होने मेरे लिए तीन चार लडके देख भी लिये हैं। यदि वे किसी निर्णय पर पहुच गये तो फिर मैं क्या करूगी? कहीं ऐसा न

हो कि हमारी-तुम्हारी कहानी दुखान्त बनकर रह जाय।"

सुमन उस दिन काफी देर तक काता की ओर देखता रह गया था। उसकी आखें बार-बार काता के भाल, आखें, होठ, ग्रीवा, वक्ष और कटि प्रदेश पर भटकती रही। जितना ही वह काता को देखता था, उतना ही उसका यह एहसास मजबूत होता जाता था कि काता के बगैर वह जीवित नही रह पायगा। काता ने ही लाज से लाल होते हुए पूछा था

"इस तरह बार-बार क्या देख रहे हो?"

सुमन सामान्य स्थिति म आता हुआ बोला था

"तुम कितनी अच्छी हो, कितनी मधुर! तुम्हारे अग अग से कोमल, निश्छल सौन्दय की आभा फूट पडती है। इच्छाहोती है, इसी प्रकार जीवन भर तुम्हे निहारता रह जाऊ।'

'किन्तु जीवन इतना आसान नही होता। कल्पना की उडान भरते भरते तुम यथाथ जीवन से बहुत दूर चले गये हो। तुम्हें वापस धरती पर आना होगा, जहा जीवन को फूलने फूलने का अवसर मिलता है। गृहस्थी की गाडी कमठ हाथ पाव ही खीच सकते हैं।"

"ठीक है, काता। परीक्षा देते ही मैं तुम्हारे चाचा जी से मिलूगा और यदि उसके पहले अपने पाव पर खडा हो सका तब तो कोई बात ही नही है।"

सुमन को एक गीतकार के रूप म शहर के बहुत से प्रबुद्ध और प्रमुख व्यक्ति जानते पहचानते थे। उसे विश्वास था कि उसे अपने योग्य काम मिलने मे कठिनाई नही होगी। उसके इस विश्वास को धक्का लगा जब वह काम के लिए कई व्यक्तियो से मिला। वे लाग आदरपूवक उस बैठाते, कविता सुनाने का आग्रह करते और बात बात मे तारीफ के पुल बाधते हुए कह देते, 'वाह, तुम्हारे जैसा गीतकार हिन्दी साहित्य के इतिहास म एक दिन मील का पत्थर साबित होगा।' लेकिन, जब सुमन अपना उद्देश्य स्पष्ट करता तब सामने बैठे मुग्ध श्राता का आदरभाव तुरत तिरोहित हो जाता था।

सुमन ने इस बीच कई दरवाजे खटखटाये। हर जगह निराशा ही उसके हाथ लगी। बहुत दौड धूप करने के बाद अत म उसे दैनिक 'विश्व मित्र' मे साठ रुपये प्रति मास पर उप सम्पादक का अस्थायी पद मिल पाया।

यह सब भोग भागने के बाद सुमन का कल्पनालोक चूर चूर होकर बिखर गया। वह कुंठा और निराशा से भर उठा। अब उसे लगने लगा कि वाह-वाही देने वाले तथाकथित प्रशंसकों की भीड के बीच वह नितान्त अकेला है। काता की दूरी भय बनकर उसे डसने लगी। उसन निश्चय कर लिया कि अब उसे परिणय सूत्र मे बध ही जाना चाहिए।

काता के चाचा रघुवीर बाबू अपनी सहमति देने के लिए जैसे तैयार ही बैठे थे। वे अपने समाज और परिवार म अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखन के लिए भतीजे भतीजियो की मदद तो किया करते थे, लेकिन ऐसा करते समय वे मन ही मन जोड लिया करते थे कि इस रुआब और प्रतिष्ठा को बरकरार रखने के लिए कही अधिक कीमत तो नही देनी पड रही है। उनकी पत्नी राजो देवी उनके द्वारा निर्धारित कीमत मे भी काफी कटौती कर देती थी। साथ ही भतीजे-भतीजियो को बीच बीच म सुना भी दिया करती थी, जनमाने वाले निकम्मे रिश्तेदारो ने तो टोकरी भर बच्चे जनमा कर रख दिये, जिन्हें पालते-पोसते और शादी ब्याह करते-करते हमारी और 'उनकी' जान सासत मे आ पडी है।" वास्तविकता यह थी कि राजो देवी जितना खच अपनी एक सतान पर करती थी, उसके आधे खच मे वह पूरे परिवार और रिश्तेदारो का बेडा पार करके गर्वोक्तियो से सबका कलेजा छलनी बना देना चाहती थी।

रघुवीर बाबू को बैठे बिठाये मुफ्त ही अच्छा लडका मिल गया। उन्होने यह जानने का भी प्रयत्न नही किया कि सुमन घर से कैसा है? लडकी को किसी लडके से ब्याह देना चाहिए ताकि कौमार्य का अधम धम मे बदल जाय। प्राचीन काल मे तो अति वृद्ध, जर्जर, रुग्ण ऋषियो को राजे महाराजे तक अपनी कन्या दान मे देते थे। कन्यादान की महत्ता सब प्रकार के दानो मे श्रेष्ठ मानी जाती है। सुमन तो नौजवान था, देखन सुनने मे अच्छा था ही और साठ रुपये माहवार पाता था सो अलग। और क्या चाहिए? रघुवीर बाबू न सुमन का चटपट तिलक भी चढा दिया।

सुमन अपनी शादी के लिए पिता से अनुमति लेन आया था। उसे मालूम नहीं था कि घर मे इतना बडा काण्ड हो गया है। इसलिए दो तीन रोज तक वह मन की बात मन म ही रखे रहा। मौका देखकर पहले उसने अपनी

भाई विवेकानन्द से बात की। विवेकानन्द उम्र में अपने भाई से पौने दो साल ही छोटा था। इसीलिए, अपने भाई से कभी कभी वह हमउम्र के नाते हँसी मजाक भी कर लिया करता था। सुमन की बात सुनते ही विवेकानन्द उछलकर उठ खड़ा हुआ और ताली बजाकर नाचता हुआ बोला

"भइया तो छुपे रुस्तम निकले। मैं तो इधर अब तक घास ही छीलता रह गया और तुमने एक पूरी फुलवारी पर ही कब्जा जमा लिया। लेकिन भइया, उस फुलवारी की खूबसूरती पहले मैं देखूँगा तब तुम्हें उसपर पूरी तरह कब्जा जमाने की अनुमति मिलेगी।"

"अरे धीरे बोल! इस तरह जोर जोर से बोलते और नाचते देखकर बाबूजी क्या कहेंगे?"

"क्या कहेंगे? माँ तो रात दिन पतोहू पतोहू की रट लगाये रहती है और मैं अपने लिए भाभी चाहता ही हूँ। पटना रहती है न? अब तो मैं भी वहाँ रहता हूँ। अच्छा हुआ। अब मैं मामा मामी के साथ नहीं, अपनी भाभी के साथ रहूँगा।"

"लेकिन, ऐसे दुर्दिन में बाबू जी से इस बात की चर्चा चलाना ठीक होगा क्या?"

"क्या नहीं ठीक होगा? अरे भइया, जिन्दगी है तो इस तरह के झगड़े झेलने ही पड़ेंगे। जिस समाज में इतनी खाइयाँ खुदी हुई हों, वहाँ गिरते-पड़ते ही आगे बढ़ना होगा। आप चिन्ता मत कीजिये। चर्चा चलाने की जिम्मेदारी मेरी रही। और यह भी जान लीजिए कि भुवनेश्वर बाबू अब हम लोगों से तकरार बढ़ाना नहीं चाहते। तभी तो उन्होंने मेरे और बाबू जी के विरुद्ध अपने गवाह पेश नहीं किये और हम दोनों बरी कर दिये गये। बेचारा जतना अभी तक जेल में बन्द है।"

"ऐसा? क्या जतना तो जमींदार का खास आदमी है? उन्हीं के आदेश पर उसने डरेर जोत लिया था और बाबू जी पर हमला भी कर दिया?"

"सुमन भाई, तुम यह सब नहीं समझोगे। भुवनेश्वर बाबू जतना को तोड़ मरोड़कर अपनी मुट्ठी में रखना चाहते हैं। आजकल उनका मैनेजर शिवनन्दन स्वयं जतना के परिवार की देखभाल में लगा रहता है।

जतना की बेटी जिरिया की कमर मे आज चिथडे की जगह छीट की अच्छी साडी शोभायमान रहती है । तुम देखते तो चलो।"

सुमन अपने भाई की बुद्धि देखकर दग रह गया।

सुमन की शादी मे कोई बाधा नही पडी। सत्यभामा तो तब से बहू की रट लगा रही थी जब सुमन बारह साल का था। अब तो वह उन्नीस भी पार कर चुका था। पहले बेटे का विवाह था। खूब धूमधाम से होना ही चाहिए। इसके लिए रुपया कहा से आये ? भुवनेश्वर सिंह से झगडा चल रहा था। रघुवीर जी एक छदाम निकालने को तैयार नही हुए। बेशक, उन्होंने अधिक से अधिक पच्चीस आदमियो की बारात के स्वागत-सत्कार का जिम्मा जरूर ले लिया था। हार थककर राघव बाबू को पाच कट्ठा जमीन बेचनी पडी।

बारात मे बाबू भुवनेश्वर सिंह तो शामिल नही हो सके, किन्तु उन्होंने विजय को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज दिया। राघव सिंह जब डरे सहमे से निमत्रण देने के लिए हवेली मे पहुचे थे, तब भुवनेश्वर सिंह ने बडे आदरभाव से उन्हें अपने पास बिठाते हुए कहा

"घर के बर्तन भी एक साथ रहने पर टकराते हैं। इससे क्या सम्बन्ध टूट जाता है ? विजय को लेते जाइए। आप तो जानते ही हैं, मैं कही बाहर जाने से कितना घबराता हू ? यह आपने जमीन क्यो बेची ? रुपये की जरूरत थी तो मुझसे माग लेते। जहा सत्रह हजार दे रखा है, वही बीस हजार जमा हो जाता । खैर, कोई बात नही।"

राघव बाबू को भुवनेश्वर सिंह के व्यवहार पर आश्चर्य नही हुआ। वह उनके स्वभाव से परिचित थे। पेट की बात होठो पर न आने देने म उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर रखी थी। दरअसल वह जतना को तो जेल भेजना चाहते थे किन्तु विवेकानन्द को केवल आगाह कर देना चाहते थे कि उनसे बैर मोल लेने का नतीजा कितना भयकर होता है। यह उद्देश्य उनका पूरा हो चुका था। अब वे अपनी अगली भयकर योजना को कारगर करने मे लगे हुए थे। वे जानते थे कि उस योजना को कार्यरूप देने से पहले राघव बाबू को अपने पक्ष म कर लेना जरूरी है।

शादी के बाद काता को कुछ दिनों के लिए गाव आकर सास के पास रहना पडा। सुमन की नयी-नयी नौकरी लगी थी, वह भी अस्थायी। इसी-लिए उसे मजबूर होकर तुरत पटना वापस आ जाना पडा। उसका समय मुश्किल से गुजरने लगा। काम से छुट्टी पाने पर वह डेरे लौटता तो कोठरी का तीखा एकात उसके अगा मे चुभने लगता। अपनी विरह वेदना को छदबद्ध करने के लिए वह घण्टो माथा पच्ची करता रह जाता था। किन्तु कोई भाव सही रूप म कागज पर उतर नही पाता था । अत म फिर उसे अपने भाई विवेकानन्द की शरण मे जाना पडा।

विवेकानन्द ने सुमन के साथ रहने की धमकी तो दे दी थी, लेकिन उसे मामी छोड नही सकी। मामा भी कातर हो उठे थे। ऐसी स्थिति म विवेकानन्द पटना मे मामा मामी के साथ ही रहने लगा। वह उसी दिन गाव से लौटा था। अपने भाई को देखते ही बोला

'मैं आपकी तरफ ही आ रहा था। मामी ने चिट्ठी दी है।"

यह कहकर विवेकानन्द ने दीवार पर टगी हुई चिटठी निकालकर दे दी। सुमन आकुल व्याकुल होकर चिटठी पढने लगा। शुरू शुरू मे तो उसके चेहरे पर प्यार भरे सपनो की छाया मडराती रही। जब वह पत्र के बीच म पहुचा तो उसकी मुखाकृति बदलने लगी। वह पत्र जल्दी जल्दी पढने लगा। किन्तु उसमे इस तरह की खबरें थी कि उनका विस्तार जानने के लिए चिट्ठी को अधूरा छोडकर उसने विवेकानन्द से पूछा

"क्या हुआ ! तुमने बताया नही कि रामेश्वर सिंह की पत्नी पोखर में डूबकर मर गयी !

डूबकर नही मरी। उसे मारकर डुबा दिया गया है ।" विवेकानन्द का स्वर सहज था, किन्तु उसकी आखो मे और चेहरे पर आक्रोश और नफरत के भाव स्पष्ट थे।

१२

विवेकानन्द उस रात ठीक से सो नहीं पाया था। दूसरे दिन उसे पटना जाना था। सामान ठीक करने और गाव के दोस्तो से मिलने जुलने मे

रात कुछ अधिक बीत गयी। गाव मे सूर्यास्त होने के कुछ ही देर बाद लोग खा पीकर सोने की तैयारी म लग जाते है। उन दिनो गाव मे बिजली पहुची नही थी और न कोई सोचता ही था कि यहा बिजली की रोशनी कभी जल भी पायेगी। अधेरे मे कोई कितनी देर बैठकर बात करे। किरासन तेल के लिए भी तो पैसे खर्च करने के बावजूद लाल तेल ही मिल पाता था। अभी लालटेन जलाइये और एक घण्टे मे उसका पूरा शीशा कालिख से भर जायेगा।

विवेकानन्द के अधिकतर मित्र पश्चिमी टोले मे रहते थे। वहा गपशप चल पडा। सो, घर लौटते-लौटते रात के दस बज गये। विवेकानन्द न खाट निकालकर दालान के बाहर वाले चबूतरे पर बिछा दिया। लेकिन, वह सो नही पाया। रह रहकर उसके दिमाग मे पटना की बडी-बडी इमारतें, सडकें और गलिया एक एक कर उभरने लगी। कुछ रोज पटना रहकर वह दशहरे की छुट्टियो मे गाव आ गया था। चन्द रोज मे ही वह समझ गया कि गाव और शहर मे क्या फर्क है। गाव शाम को ही सो जाता है जबकि शहर मे रात देर गये तक चहल पहल बनी रहती है। बिजली की रोशनी मे कोलतार से बनी चौडी सडकें इठलाती फिसलती हैं। बडी छोटी दुकानो की लम्बी कतारो को देखकर ही भान हो जाता है कि एक की दस दस करने की कला कितनी महत्वपूर्ण है । विवेकानन्द यह सब सोचकर उदास हो उठता। सोचता, यह खुशहाली, यह सम्पदा गाव मे कब आयेगी ? या कभी आएगी ही नही ? यहा न तो सडकें हैं, न बिजली। चार पाच दस मील के इलाके मे, अस्पताल के नाम पर, एक एल० एम० पी० पास या फेल डाक्टर ने रेलवे स्टेशन के पास अपनी दुकान लगा रखी है। उसकी दवा इतनी महगी है कि अधिकाश लोग इलाज की बात सोच भी नही सकते। हैजा-प्लेग से लोग पटापट मर जाते है। शीतला मा का प्रकोप गाव को श्मशान बना देता है । ऐसा कब तक चलता रहेगा ? क्या चलता रहेगा ?

वह पटना जाकर पढने की खुशी मे शुरू-शुरू मे उद्वेलित हो उठता था। तब तक उसने मुजफ्फरपुर का शहर नहीं देखा था। सीधे पटना जा पहुचने की तो कभी कल्पना भी नहीं की थी। वह सुन चुका था कि पटना बहुत बडा शहर है। वहा कोलतार की बनी चौडी सडकों के अगल बगल ऊचे-ऊचे

मकान और दुकानें हैं। उन दुकानों में हर तरह की चीजें बिकती हैं। मोटरों, घोड़ागाड़ियों से वहां की सड़कें भरी रहती हैं। वहां लाट साहब का घर है जिधर कोई जा भी नहीं सकता। तब विवेकानन्द ने सोचा था कि यदि वह लाट साहब के महल में घुस पाये तो मजा आ जाये। वही तो पूरे प्रान्त की हुकूमत चलाता है। यदि उसे जान से मार डाला जाय तो पूरे प्रान्त का तख्ता हिलने लगेगा। और यदि सभी लाट साहबों को मार डाला जाय, तो तख्ता ही पलट जाय। इन विदेशियों ने ही भारत के गांवों को उजाड़ और जर्जर बना दिया है। कभी इस देश के कोने-कोने में उद्योग धंधे खुले हुए थे। यहां के वस्त्र दुनिया के बाजार में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। गांव गांव में देशद्रोहियों को जमींदारी दे देकर उन्हें लूट खसोट मचाने का अधिकार दे दिया गया। विवेकानन्द को याद आया, मोतिहारी में रेलवे का बड़ा अफसर आया था। वह अंग्रेज था। उसका बन्दर जैसा लाल मुंह देखकर उसे बहुत गुस्सा आया था। उसके स्वागत में रेलवे स्टेशन और प्लेटफार्म को धोया गया था और रेलवे के सभी कर्मचारी लकदक पोशाक में सजे हुए थे। उसके मामा ने भी धुला हुआ सफेद पैण्ट और सफेद कोट उस दिन पहन रखा था। मामा की छाती पर लगने वाली नाम पट्टिका को पालिश लगाकर उसीने चमकाया था। स्टेशन के बरामदे पर एक कोने में खड़े होकर जब उसने देखा था कि उस अंग्रेज अफसर के आते ही सभी कर्मचारी झुक झुककर उसे सलाम कर रहे हैं तो तमाम कर्मचारियों के प्रति उसे नफरत हो गयी थी। अपने मामा के प्रति भी वह ग्लानि से भर उठा। उसने सोचा, व्यर्थ ही वह अपने मामा के बैज को घण्टा बैठकर चमकाता रहा।

विवेकानन्द को भोला की अनुपस्थिति अखरने लगी थी। उसे यह भी मालूम नहीं था कि पटना में कोई क्रांतिकारी संगठन है या नहीं। इस तरह के संगठन का ढूंढ निकालना भी खतरे से खाली नहीं था। फिर भी, उसने पटना में भोला सरीखे लोगों की तलाश जारी रखी थी। बेशक, अब तक उसे सफलता नहीं मिली थी, लेकिन उसे विश्वास था कि पटना में निश्चय ही ऐसे लोग मिलेंगे जो इस विदेशी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के काम में जी जान से लगे हुए होंगे। वह समय दूर नहीं है जब अपना देश आजाद हो जाएगा और तब? तब क्या होगा? तब क्या जनता अपने यथार्थ को

पहचान लेगा ? क्या उसके जैसे शोषित, दलित, पीडित लोग समझ जाएगे कि उनकी ताकत का इस्तेमाल खुद उन्हीके विरुद्ध क्यो होता है ? तब क्या जतना कठपुतली बनने से इकार कर देगा ? तब क्या भुवनेश्वर सिंह जैसे लोगो का प्रभुत्व समाप्त हो जाएगा ? और तब लाट साहब के महल का क्या बनेगा ?

विवेकानन्द इसी तरह के प्रश्नो से परेशान होकर बिस्तर पर करवट बदलता रहा। अचानक उसे पोखर की ओर से कुछ आवाज सुनाई पडी। उसके सामने ताड के कई लम्बे लम्बे पेड थे जिनकी ओट से पोखर का एक चौथाई हिस्सा नजर आता था। उसने देखा कि कोई नग धडग आदमी पोखर के जल से बाहर निकल रहा है। वह चौंककर उठ खडा हुआ। जल्दी से उछलकर वह दालान के बरामदे मे, दक्षिणी सिरे पर जा पहुचा, क्योकि वह आदमी पोखर से निकलकर बायी तरफ से आने वाली सामने की सडक से बढा चला आ रहा था। इतनी रात को कोई भला आदमी पोखर नहाने क्या जाएगा ?

दीवार की ओट मे विवेकानन्द खडा हो गया। सामने की सडक लगभग सौ गज दूर थी। इसलिए वह नीचे उतरकर दाहिनी ओर मवेशियो के लिए बने एकपलिया मे जा पहुचा। वह व्यक्ति विवेकानन्द के सामने लगभग पाच छह हाथ की दूरी से बडबडाता हुआ आगे निकल गया। विवेकानन्द ने उस व्यक्ति को पहचान लिया था। वह गाव के जमीदार भुवनेश्वर सिंह का विक्षिप्त भाई रामेश्वर सिंह था।

विवेकानन्द ने सोचा, रामेश्वर सिंह के लिए रात के समय पोखर मे नहाना कोई अचरज की बात नही है। वह तो पागल है। वैसे भी रामेश्वर सिंह को लोगो ने रात रात भर गाव के खेत खलिहान यहा तक कि आम के भुतहा बगीचे तक मे घूमते देखा था। विवेकानन्द आश्वस्त होकर अपनी खाट पर आ लेटा। इसके बाद भी उसे काफी देर तक नींद नही आयी और जब आयी तो इतनी गहरी कि सुबह सुबह असाधारण शोर गुल सुनकर ही उसकी नींद टूट सकी। उसने अचकचाकर चारो ओर देखा।

समूचा गाव पोखर की ओर उमडा जा रहा था, जैसे नर समुदाय की वह बाढ आज पोखर को पाटकर ही दम लेगी। गाव के चारो ओर से

खेत होकर, पगडंडी होकर, सड़क होकर गरज यह कि जिसका जिधर से भी सींग समाया उधर से ही वह पोखर की ओर दौड़ पड़ा। बहुत सी औरतें अपने अपने घरों की दुमुहानी पर इकट्ठी हो गयी थीं। छोटे छोटे शिशु अपनी मां की गोद में सटे भयातुर आंखों से चारों ओर देख रहे थे। ज्यों ज्यों भीड़ बढ़ती जाती थी, भीड़ का मुख्य कारण अफवाहों की अतल गहराई में डूबता जा रहा था।

कई तरह के मुंह और कई तरह की बातें। किसी तरफ से आवाज आती 'छुरे से मारी गयी है" तो तुरत प्रतिवाद होता, "नहीं, गला दबा कर इसकी हत्या की गयी है।" यह कोई नहीं बताता कि किसे छुरे से मारा गया है या किसका गला दबा दिया गया है।

विवेकानन्द बिना हाथ मुंह धोए घटनास्थल पर जा पहुंचा। लोगों की घेराबन्दी तोड़कर वह किसी तरह जब बिल्कुल भीतर पहुंच गया तब सामने जमीन पर चित पड़ी हुई औरत की लाश देखकर उसका कलेजा मुंह को आ गया। अनायास उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। देह पर साड़ी लिपटी हुई थी, फिर भी कपड़े भीगकर देह से चिपक गए थे। चेहरा, बांह, पेट और घुटनों के नीचे के अंग अनावृत थे। विवेकानन्द ने औरत को पहचान लिया। वह राधा थी। कितनी खूबसूरत थी राधा और उस समय कितनी वीभत्स लग रही थी। चेहरा बुरी तरह सूज गया था। होंठ फूलकर विकृत हो गए थे। आंखें उलट गयी थीं। भीगी हुई साड़ी अंगों से चिपकी होने के कारण विवेकानन्द को शर्म आ गयी। तब तक किसीको यह भी नहीं सूझा था कि देह पर एक चादर डाल दे। विवेकानन्द को लगा, जैसे अचानक कोई चीज पेट से आकर कंठ में अटक गयी है। क्षण भर के लिए उसका सिर चक्कर खा गया। उसकी कनपटी और नाक के नीचे पसीने की बूंदें झिलमिला उठीं। जल्दी से उसने अपनी दाहिनी हथेली से चेहरे का पसीना पोंछ लिया। उसने इधर उधर देखा। बगल में जमींदार के मैनेजर शिवबदन के कंधे पर नकली रेशम की चादर पड़ी थी। विवेकानन्द वही चादर खींचकर लाश के ऊपर डालने लगा कि तभी उसकी नजर राधा की गरदन पर पड़ी। गरदन के चारों ओर गहरा-काला निशान पड़ा हुआ था। वह राधा की लाश का

सिर से पाव तक ढककर खडा ही हुआ था कि भीड को चीरते हुए बाबू भुवनेश्वर सिंह वहा आ पहुचे।

जमींदार भुवनेश्वर सिंह को देखकर वहा खडे बहुत से लोगो मे भय समा गया। जिस जिसपर भुवनेश्वर सिंह की पैनी नजर पडी, वही आखें झुकाकर कुछ कदम पीछे हटने की कोशिश मे एक दूसरे से टकरा गया। वहा से उठने वाला शोर गुल थोडी देर के लिए खामोशी मे बदल गया, जैसे दहकते हुए अगारा पर सहसा पानी की फुहार पड गयी हो। उन्हें देखते ही लोग जैसे भूल गए कि इतनी बडी भीड किसी औरत की लाश की छान बीन करने के लिए इकट्ठी हुई है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अपने देश के किसी महान नेता को मच पर देखकर जनता अपना वास्तविक दुख—भूख, बेकारी, बीमारी और असतोष भूल जाती है।

भुवनेश्वर सिंह के चेहरे पर इस तरह आत्मविश्वास झलक रहा था, जैसे यह मामूली-सी घटना हो और इस तरह की आपदाओ से उनका कुछ बनने बिगडने वाला नहीं है। उन्होने सामने खडे अपने मनेजर को हाथ के इशारे से आदेश दिया कि लाश के चेहरे के ऊपर से चादर हटा दी जाए। शिवबदन चादर हटाकर कभी राधा को तो कभी अपने मालिक को देखने लगा। भुवनेश्वर सिंह के मुह से एक अस्फुट "हूह्" की ध्वनि निकली और बस। उन्होने फिर अपने मैनेजर को इशारा किया और लाश को चादर से ढक दिया गया। फिर उन्होने बडे इत्मीनान के साथ पैंट से सुर्ती निकाली, चूने का डिब्बा निकाला और बायी हथेली पर दाहिने अगूठे से रगड रगडकर सुर्ती बनाने लगे। लोग निर्वाक् होकर उनकी ओर छिपी नजरो से देखने लगे।

विवेकानन्द अपनी बेधक आंखो से भुवनेश्वर सिंह को देख रहा था और सोच रहा था कि जिस इज्जत का ढोल यह आदमी सरे आम दिन-रात पीटता रहता है, इसकी वह इज्जत यहां पोखर के भिंडे पर बेनकाब पडी है। फिर भी यह दम्भ और अहकार का मुखौटा लगाए लोगो पर अपना यह रुआब हावी करना चाहता है कि मौत तक मे इसे कोई भय नही है। विवेकानन्द को यह समझने देर नहीं लगी कि सामने पडी हुई लाश जमींदार की घिनौनी भूख का भयानक परिणाम है।

पूरब मे आम की गाछिया के ऊपर सूरज आ चढ़ा था। तीखी रोशनी की गरमी से वहा खड़े लोगो की देह चुनचुनाने लगी थी। जो लोग दौड कर आए थे, उनकी देह से पसीना चू रहा था। भुवनेश्वर सिंह का दम्भ विवेकानन्द से देखा नही गया और उसने अचानक ही कहा

"यह पोखर मे डूबकर नही मरी है, बल्कि इसे फांसी देकर मारने के बाद यहा फेंक दिया गया है।"

भुवनेश्वर सिंह ने आखें तरेरकर विवेकानन्द की ओर देखा, किन्तु विवेकानन्द के होठो की अथपूर्ण मुस्कराहट देखकर उनके मुखौटे पर भी चिन्ता की रेखाए फिर आयीं। उन्होने अपने होठ काट लिए और जब उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तब वे जानबूझकर विवेकानन्द की बात अन सुनी करते हुए बोले

"राघव बाबू नही हैं क्या?"

राघव बाबू वहीं पीछे खड़े थे। वह भीड चीरते हुए सामने आए तो भुवनेश्वर सिंह ने कहा

'शिवबदन, लाश उठवाकर हवेली पर ले आओ। तब तक मैं राघव बाबू से बात विचार करता हू।"

भुवनेश्वर सिंह ने राघव बाबू के कधे पर हाथ रखा और वे दोनो भीड से बाहर निकलकर हवेली की ओर चल पडे। शिवबदन ने एक पुरानी खाट मगवाई और उसपर लाश रखवाकर वह उसे हवेली की ओर ले गया। विवेकानन्द भी विधाता और आदमी की ताकत की तुलना करता हुआ अपने घर लौट आया।

सुबह की गाडी छूट चुकी थी। राघव सिंह ने हवेली से लौटकर कहा

"दूसरी गाडी दो घटे बाद जाएगी। जल्दी तैयार हो जाओ। और देखो, तुम्हे गाव के झमेले में नही पडना चाहिए।"

विवेकानन्द समझ गया कि भुवनेश्वर सिंह और उसके पिता के बीच कोई समझौता हो गया है। गाव के किसी आदमी से यदि भुवनेश्वर सिंह को खतरा था तो वह विवेकानन्द ही था। होशियारी इसी बात में थी कि राघव बाबू की ओर दोस्ती का हाथ बढाकर इस खतरे को जल्द से जल्द

करने से पहले वह राधा की स्थिति और मनोदशा से परिचित हो जाना चाहता था। इसी विचार से वह राधा से मिलने को आकुल व्याकुल हो उठा।

धर्मेंद्र किसी स्थिर चरित्र या विशेष स्वभाव का व्यक्ति नहीं था। स्वभाव तो मनुष्य के चरित्र का आईना होता है। जिसका जैसा चरित्र होगा उसका स्वभाव भी प्राय उसीके अनुरूप ढल जाएगा और चरित्र का सम्बन्ध मनुष्य के परिवेश, परिस्थितियों और प्रशिक्षण से बनता बिगड़ता है। धर्मेंद्र का जन्म जिस परिवार में हुआ और जैसी विसंगतियों से भरे परिवेश में उसका लालन पालन हुआ उससे हटकर उसके चरित्र का निर्माण भला हो कैसे सकता था? सही प्रशिक्षण की गुंजाइश भी तो उसकी जिंदगी में नहीं थी। स्वार्थ, छीना झपटी, अधोगामी वृत्तियों का उदवलन और नैतिक ह्रास से पीड़ित व्यक्तियों के बीच रहकर चरित्र की स्थिरता, दृढ़ता और पवित्रता भला वह पा ही कहां सकता था? क्रोधी क्षमाशील, उद्दण्ड, शीलवान, क्रूर या दयावान होना मनुष्य के अपने वश की बात तभी तक है, जब तक वह अपने इर्द गिर्द की स्थितियों के संदर्भ में, दायित्वपूर्वक अपने आपको पहचानने का विवेक रखता है। कुछ ऐसे आदमी भी हैं जो स्वार्थ के वशीभूत होने के बावजूद अपने विवेक को पूरी तरह मिटा नहीं डालते। ऐसे लोग भूल करने के बाद द्विधाग्रस्त हो सकते हैं। उनमें पश्चात्ताप की भावना भी सुगबुगा सकती है, किन्तु जो अपनी समग्र बुद्धि का उपयोग अपनी वासना की तृप्ति के लिए या ओछेपन और स्वार्थलोलुपता की सम्पुष्टि के लिए ही करता है वह भूल पर भूल और पाप पर पाप करते रहने के बावजूद कभी पश्चात्ताप की आग को अपने पास फटकने नहीं देता। ऐसा व्यक्ति केवल वर्तमान में जीता है और वर्तमान काल का मृतप्राय खंड है। धर्मेंद्र इस दृष्टि से जीवित व्यक्ति नहीं था।

हवेली का रहस्यमय वातावरण देखकर धर्मेंद्र को अबोध निरपराध राधा की चिंता बिल्कुल नहीं हुई। वह तो अपने लिए परेशान हो उठा कि यदि उसके पाप का भण्डा सचमुच ही फूट गया है, तो अब उसका क्या होगा? उसे वहां अधिक दिनों तक रहना खतरे से खाली नहीं लगा, किन्तु वह भाग निकलने से पहले राधा से एक बार मिल लेना चाहता था।

इसी उद्यम मे वह दो-तीन रोज तक लगा रहा। एक चिट्ठी लिखकर उसने जेब मे डाल ली और इस मौके की तलाश मे रहने लगा कि उस चिट्ठी को किसी प्रकार राधा तक पहुचा दिया जाए। इसी चिन्ता मे पड़ा धर्मेन्द्र दालान की कोठरी मे चक्कर काट रहा था। वह जानता था कि राधा हवेली के भीतर किस कोठरी मे रहती है उस कोठरी के सामने से होकर ही वह बरामदा पार करता हुआ प्रतिदिन भोजन करने जाया करता था। दो रोज से पत्र जेब मे रखे-रखे वह भोजन करके लौट आया करता था, क्योंकि खाली कोठरी मे पत्र फेंक देना भी खतरे से खाली नही था। राधा का कही अता पता नही था।

वह इसी विचार म उलझा हुआ था कि हवेली से भोजन करने के लिए बुलावा आया। रात का समय था। बरामदे के शुरू म ही लालटन जल रहा था, जिसकी धुधली रोशनी कुछ दूर जाकर ही खत्म हो जाती थी। उस दिन धर्मेन्द्र जान बूझकर बहुत धीरे धीरेऔर छिपी नजरो से सामने के बरामदे, कोठरियो के दरवाजे और आगन की ओर देखते हुए आगे बढ़ रहा था। उसके दोनो हाथ कुर्ते की जेब मे थे। अचानक उसकी बाछें खिल गईं। राधा आगन पार कर उसके सामने ही अपनी कोठरी मे चली गयी। इससे अच्छा स्वर्ण अवसर भला उसे कब मिलता ? उस कोठरी के पास से गुजरते समय धर्मेन्द्र ने जल्दी से चिट्ठी कोठरी के भीतर फेंक दी और तेज कदमो से आगे बढ गया।

भोजन के बाद अपनी कोठरी मे आकर धर्मेन्द्र व्यग्रता के साथ राधा की प्रतीक्षा करने लगा। कभी वह पलग पर लेट जाता तो कभी वही उठ कर बैठ जाता। जब मन अत्यधिक उद्विग्न हो जाता तब कोठरी मे ही चक्कर काटने लगता था। राधा को अपने साथ ले जाने का उसका कतई इरादा नही था। वह तो सुख भोग को ही जीवन का उद्देश्य मानता आया था। राधा को साथ ले जाकर बेकार की जहमत क्यो उठाता ? शहर म राधा जसी अनेक रूपवती लडकिया मिल सकती थीं। अब उसे यह भी चिन्ता नही थी कि किसी शहर मे जाकर किस प्रकार गुजर-बसर कर सके। राधा जेवरो की जो पोटली उसे सौप गयी थी, उसने उसे खोलकर देख लिया था। उसकी अनुभवी आखो ने जेवरो को देखते ही अनुमान लगा

लिया था कि उनकी कीमत पन्द्रह बीस हजार रुपये से कम नही होगी। वह तो राधा से मिलकर अपने मन की शका और तन की भूख मिटाने के लिए व्यग्र था।

वह रात अजीब खौफनाक लग रही थी। बाहर चारो ओर सन्नाटा था। दूर पर चौकीदार की आवाज कटार की तरह सन्नाटे को बेधती हुई गाव के आर पार निकल जाती थी। कभी कभी धर्मेन्द्र, खिडकी की राह, बाहर के खेतो की ओर देखने लग जाता था और वहा उसे भ्रम हो उठता, जस दूर पर कोई आकार खडा है और उसकी खिडकी की ओर घूर घूरकर देख रहा है। धर्मेन्द्र सहमकर अपनी नजरे दूसरी ओर फिरा लेता और फिर तेज कदमो से चक्कर काटने लग जाता था।

धर्मेन्द्र ने लालटेन के पास रुककर अपनी घडी म समय देखा। रात के साढे बारह बज रहे थे। उसी समय गाव के दूसरे सिरे से एक कुत्ते के रोने की आवाज सुनायी पडी। धर्मेन्द्र के भाल पर पसीने आ गए। 'राधा अभी तक नही आई। कही उसका पत्र किसी दूसरे के हाथ तो नही लग गया। नहीं, ऐसा नही हो सकता। उसने राधा को कोठरी के भीतर जाते देखा था। कहीं पहले से कोठरी मे कोई बैठा हुआ तो नही था।' यह सोचते ही धर्मेन्द्र घबराहट के मारे कापने लगा। वह अपने-आपको सभालने के लिए पलग पर जा बैठा और अपने आपको मन ही मन कोसने लगा कि तभी कोठरी का दरवाजा खुला। सामने रामेश्वर सिंह दरवाजे पर खडा था। उसे देखते ही धर्मेन्द्र घबराहट के मारे खडा हो गया। उसके मुह से टूटते स्वरा म कुछ शब्द निकल पडे— 'अ अ आप?'' रामेश्वर सिंह कुछ देर तक धर्मेन्द्र की ओर देखता रहा और फिर हसने लगा—ही ही ही ही। धर्मेन्द्र के काटो तो खून नही। उसे लगा कि सामने रामेश्वर सिंह नही, बल्कि उसका भूत खडा है। वह कुछ बोल नही पाया। रामेश्वर सिंह ने ही फिर पागलो की तरह हसते हुए कहा, "किसका इन्तजार कर रहे हो? राधा अब तुम्हारे पास कभी नही आएगी। कभी नही। उसे मैं पोखर म सुला आया हू। यह रस्सी देखते हो। इसीसे उसका काम तमाम कर दिया है। लो अब तुम खुद इसे अपनी गदन म लपेट कर फांसी लगा लो।" यह कहकर रामेश्वर सिंह न आगे बढकर वह भीगी

हुई रस्सी धर्मेन्द्र के गले मे डाल दी। धर्मेन्द्र चौंककर दो-तीन कदम पीछे हटा और लडखडाकर फर्श पर गिर पडा। जब वह सभलकर खडा हुआ ता देखता है कि रामेश्वर सिह वहा से जा चुका था। क्षण भर मे ही उसका अपना भविष्य आखो के आगे तैर गया। अब पुलिस आएगी। राधा से उसका गलत सम्बन्ध था। सब लोग जानते हैं और इस पागल ने उस राधा का मार डाला। धर्मेन्द्र ने उसी समय वहा से भाग चलने मे ही अपनी खैरियत देखी।

१४

कान्ता पटना आ गयी थी। कठोर यथार्थ की धरती पर पाव रखते ही सुमन को सन्तुलन बनाए रखने की जरूरत महसूस होने लगी थी। फिर भी वह आनन्दित था। पैसे के अभाव म थोडा कष्ट अवश्य होता, कुछ इच्छाए भी अधूरी रह जाती, लेकिन दोनो के एक दूसरे के प्रति आकर्षण के आनन्द मे इस तरह के कष्ट का एहसास स्थायी नही रह पाता था। कभी कभी सुमन जब अत्यधिक थककर प्रेस से लौटता तब झुझलाहट के चलते वह कान्ता पर बरस पडता था। कान्ता स्नेह भरी नजरो से उसे देखती और तब भी यदि सुमन का 'मूड' सामान्य नही होता तब वह उसकी गोद म लुढक जाती या अपनी बल्लरी सरीखी बाहें उसकी गर्दन मे डालकर झूल जाती थी। सुमन कुछ ही देर म आनन्दविभोर हो उठता था। उसकी सारी थकान और झुझलाहट छू मन्तर हो जाती थी।

इधर कुछ दिनो से सुमन की काव्य-सृष्टि का क्रम लगभग टूट-सा गया था। जब तक उसे यह मालूम नही हुआ कि उसके पिता कर्ज मे डूबे हुए है, तब तक वह जीवन के यथार्थ का स्वाद नही चख सका था। उसकी दृष्टि मे प्राकृतिक सौंदर्य की निस्सीमता के रहस्य का और किसी अदृश्य के प्रति अलौकिक प्रेम का चित्रण ही काव्य का उद्देश्य था। किशोरावस्था से अब तक उसने जितनी भी रचनाए की, उनमे दिवा-स्वप्न की रगीनियो के चित्रण के अतिरिक्त और कुछ नही था। उन रचनाओ म सयोग-

वियोग का रूप विषाद था, सुकोमल शब्दों का चयन था और मधुर संगीत की लयबद्धता थी। कवि को जीवन के यथार्थ से कोई शिकायत नहीं थी, क्योंकि यथार्थ की कड़वाहट का स्वाद उसकी कर्मेन्द्रियों ने अब तक चखा नहीं था। वह तो नीले, असीम गगन की गहरी शून्यता में दृष्टि गड़ाकर देखता, तो लगता जैसे चांदनी में सोई हुई कोई सौंदर्यवती रूपसी उसकी ओर आमन्त्रण भरी मुस्कराहट बिखेरती हुई देख रही है और तब कवि उसके पास तक पहुंच नहीं सकने की असमर्थता में वियोग से बेचैन हो उठता। उसकी कल्पना वहां तक पहुंचकर उस स्वर्गिक छवि के इर्द गिर्द चक्कर काटने लग जाती। कवि की भौतिक भूख उस अलभ्य छवि की पिपासा से पीड़ित हो हाहाकार कर उठती थी और तब कल्पना के सहारे कवि उस छवि का बखान करते अघाता नहीं था। बखान करते-करते कवि को लगता कि उस प्रकृति सुन्दरी की वल्लरी सरीखी देह से चम्पा, जूही और केवड़ा के पराग की सुगन्ध उड़ रही है, मन्द मन्द बहते पवन के मिस उसकी पतली भरी हुई मुलायम उंगलियां कवि के अंगों को स्पर्श पुलक से भर देती हैं और इस तरह की अनुभूति में विचरण करता हुआ कवि मधुमती भूमिका में पहुंच जाता है। सुमन की रचनाओं में यही काल्पनिक आनन्दानुभूति अभिव्यंजित हो उठती और तब कवि सोचने लग जाता था कि जीवन कितना सरल है, कितना संगीतमय और साथ ही कितना रहस्यमय।

कहते हैं कि सपने किसी जड़ या चेतन वस्तु के अभाव में, मानस की गहराई में जनमते हैं और वे सपने अपने पीछे किसी रहस्य का प्रच्छन्न अर्थ छोड़ जाते हैं। मनुष्य सोचने लगता है कि इस मिट्टी से परे भी कुछ है, जिसका आधार कोई स्थूल तत्त्व न होकर शून्य जैसी असीम शक्ति ही हो सकता है। मनुष्य सोचने लगता है कि जीवन का उद्देश्य उसी अदृश्य अप्राप्य की प्राप्ति है। जो उस अज्ञात को जान लेता है वस्तुतः वही ज्ञाता है। अपने यथार्थ की पहचान के अभाव में मनुष्य भूल जाता है कि जो अदृश्य है, दृष्टि से परे है उसका किसी न किसी रूप में इस दृश्य और स्थूल जगत से भी सम्बन्ध बना हुआ है। जानकारी या सामाजिक विकास के ज्ञान के अभाव में मनुष्य अंधेरे में भटकने लगता है। अंधेरे में भटकना और अंध

विश्वासी बन जाना एक ही बात है। युग, समाज, उसकी परम्पराएं और उनके इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य मे जाने बिना न तो वर्तमान को समझा जा सकता है और न भविष्य को सुनिश्चित कर सकने वाली दिशा की ही खोज की जा सकती है।

सुमन अब तक अपनी परिस्थिति और परिवेश से पूरी तरह अपरिचित था। इसी कारण जब उसे अचानक ही कठोर यथार्थ का सामना करना पड़ा तो वह विचलित हो गया। उसका व्यक्तित्व विभक्त होकर रह गया। उसके विचार और आचार म अन्तर आ गया। दरअसल, ऐसी स्थिति के लिए वह तैयार नही था। उसे लगने लगा, जैसे भाग्य उसके विपरीत है। उसकी कल्पना यथार्थ के प्रहार से तिलमिला उठी और वह तिलमिलाहट सुमन की झल्लाहट मे बदल गयी। धीरे धीरे उसके स्वभाव मे परिवर्तन आने लगा। अब वह आए दिन छोटी छोटी बात पर झल्ला उठता था। खैरियत थी कि कान्ता का पालन पोषण कठिनाइयो और मानसिक संघर्ष के बीच हुआ था। उसके लिए यह यथार्थ अनजाना नही था। वह अपने पति की मनोदशा का अनुमान लगा सकती थी। इसलिए वह सहानुभूतिपूर्वक सुमन को समझाती और जीवन के कटु सत्य का सोत्साह सामना करने का आग्रह करती थी। कान्ता की सदाशयता, धैर्य और अपार प्रेम के सामने सुमन झुक जाता था। वह तात्कालिक अभाव को भुलाकर कान्ता के आलिंगन मे अपने अस्तित्व तक को समाहित कर देने के लिए बेचैन हो उठता था। इस बेचैनी मे उसे बड़ी तृप्ति मिलती थी।

उन दिनो, देश के दैनिक अखबारो म उप सम्पादको की स्थिति बड़ी दयनीय थी। सुमन भी उप सम्पादक ही था। ये उप सम्पादक गाव के खेतिहर मजदूरों जैसी जिन्दगी बसर करते थे। फर्क इतना ही था कि खेतिहर मजदूर अनपढ़ और अशिक्षित होने के कारण सन्तोष और समझ के सहारे जीवन का निर्वाह कर लेता था। उप सम्पादक के साथ कठिनाई यह थी कि वह पढा लिखा होता था अपने आपको बुद्धिजीवी समझता था। इसलिए वह अपने कठोर यथार्थ को तर्क की कसौटी पर कसने बैठ जाता था। नतीजा यह होता था कि उसके भीतर असन्तोष और नफरत की ऐसी दबी-दबी आग सुलगती रहती थी, जो उसके पूरे

जीवन को ही धूमिल बनाकर रख देती थी।

सुमन इसी तरह की धुधुवाती हुई जिन्दगी जीने लगा था। कांता की स्निग्ध दृष्टि उसके मन के चारों ओर लिपटे हुए धुएं को साफ कर दिया करती थी। सुमन अपने भाग्य को सराहता कि यदि कांता जैसी संगिनी उसे नहीं मिली होती तो वह क्या करता ?

उस दिन सुमन कुछ देर से डेरे पर पहुंचा। डेरा क्या था, एक बड़े पुराने मकान के शुरू में, गलियारे के पास, दो बहुत ही छोटे छोटे कमरे थे। एक कमरे में कांता भोजन पका लिया करती थी। वहीं गृहस्थी का सारा सामान रखा रहता था और दूसरे कमरे में एक खाट, काठ की दो कुर्सियां और एक छोटी सी साधारण चौकोर मेज पड़ी हुई थी। उस बड़े मकान में इस तरह के कई कमरे थे। सुमन जैसे अनेक लोग एक एक या दो-दो कमरे लेकर इस कबूतरखाने में जिन्दगी के दिन काट रहे थे। अधिकतर लोग पढ़े लिखे थे किन्तु आर्थिक दृष्टि से सुमन की ही तरह अभावग्रस्त।

कांता इन्तजार में बैठी थी। उसे अन्देशा लगा हुआ था कि न जाने क्या बात हो गयी कि वे अभी तक आए नहीं ? 'कहीं कोई एक्सीडेण्ट तो' और वह मन ही मन कांप उठती थी।

सुमन थकान से चूर, परेशान चेहरा लिए कमरे में दाखिल हुआ। वह रास्ते-भर सोचता आया था कि कांता से मिलते ही उसकी थकान दूर हो जाएगी। जब वह मुस्कराकर देखेगी, उठकर बड़े उत्साह और स्नेह से उसका स्वागत करेगी, तब वह कांता को अपनी बांहों में भर लेगा और और वह क्षण भर के लिए ही सही, आनन्दानुभूति से भर उठेगा। आखिर क्षण ही तो जीवन का आधार है। एक क्षण का प्रेम ही सम्पूर्ण संघर्षमय जीवन को आलोकित कर देने के लिए पर्याप्त होता है। कांता के इसी प्रेम समर्पण से उसकी सारी थकान, परेशानी अपने आप दूर हो जाएगी।

कांता आज मानिनी बनकर रूठी हुई बैठी थी। पिछले कई रोज से सुमन इसी तरह देर से आया करता था। आज कांता को उम्मीद थी कि सुमन समय से पहले आ जाएगा क्योंकि आज उसकी शादी की सालगिरह थी। सच्चाई तो यह थी कि सुमन के ध्यान से यह बात बिल्कुल निकल गयी

थी। सुमन के आने पर भी कांता रूठकर बैठी हुई एक किताब पढ़ती रही। सुमन की सारी कल्पना छिन्न भिन्न हो गयी। जो कुछ वह सोचता आ रहा था, पल भर में वह सब कुछ भूल गया। कांता के प्रति आकर्षण की जगह वह विकर्षण से भर उठा। कड़ुआहट ने उसके मुंह का स्वाद विकृत कर दिया। अपने आपसे वह तंग आ गया। ऐसा जीवन जीने से क्या लाभ? चन्द पैसों के लिए उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करना पड़ता है। अपनी अस्मिता खोनी पड़ती है। ऐसा वह क्यों करता है? वह क्यों श्रम करता है? किसके लिए रोज रात सात बजे से लेकर सुबह पांच बजे तक लगातार उसे खटना पड़ता है, क्यों?

सुमन ने अपना कुर्ता खोलकर खाट पर फेंकते हुए आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा, "खाना खिलाओगी या बैठकर किताब ही पढ़ती रहोगी?"

कांता ने किताब पर से नजर उठाकर सुमन की ओर देखा। सुमन का तमतमाया हुआ चेहरा देखते ही वह समझ गयी कि जनाब का 'मूड' ठीक नहीं है। आज वह भी तैयार बैठी थी। उसने छूटते ही कहा

"जहां इतनी देर बैठे रहे, वहां क्या खाना नहीं मिलता?"

"मिलता क्यों नहीं है। लेकिन तब घर का चूल्हा कैसे जलेगा?"

"क्यों, घर के चूल्हे पर पहले दो का खाना पकता था, आगे से एक ही का पका करेगा और यदि तुम्हें वह भी मंजूर नहीं हो, तो चूल्हा नहीं जलेगा। मुझे क्या है, जिसका बर्तन मांज दूंगी, वही दो रोटी दे देगा।"

सुमन ने क्रुद्ध नजरों से कांता को देखा। कांता की आंखें और उसके होंठों को देखकर उसे लगा, जैसे कुछ ही देर में वह फूट-फूटकर रोने लगेगी। सुमन तुरन्त पसीज उठा। वह पास आता हुआ बोला

"तुम्हें होश भी नहीं रहता और क्या से क्या बोल जाती हो। मैं क्या मर गया हूं जो तुम दूसरों के बर्तन मांजती फिरोगी?"

"फिर तुम क्या इस तरह की बातें करते हो? समझते क्यों नहीं कि रात भर मैं तुम्हारे लिए यहां इस कालकोठरी में बैठी रहती हूं। सुबह छह बजे से इंतजार कर रही हूं। अभी साढ़े दस बज रहे हैं। क्या करते रहे इतनी देर प्रेस में?"

सुमन कांता के बिल्कुल पास आ गया था। उसने उसकी ठुड्डी पकड़-

कर अपनी ओर उठाते हुए कहा

"बीच मे तीन घटे तक बिजली गायब रही। इस कारण फाइनल प्रूफ मे काफी देर हो गयी। अभी अखबार निकालकर आ रहा हू। क्या करता, चाकरी जो कर रहा हू।"

काता उठकर खडी हो गयी। सुमन ने उसे अपनी बाहो मे भर लिया। कुछ देर तक काता सुमन के कलेजे से लगी सिमटती सिकुडती रही और फिर बोली

"आज हम लोगो के विवाह की साल गिरह है।"

"ओह, माफ करना, मैं तो यह भूल ही गया था। प्रेस मे इतना झझट उठ खडा हुआ कि सास लेने तक की फुरसत नही हुई। झटपट खाना परास दो। मैं तुरन्त मुह हाथ धोकर आता हू। फिर हम लोग बारह बजे का शो देखने चलेगे। एलफिन्स्टन म बहुत अच्छी तस्वीर लगी है, खजाची'।"

दोनो ने अभी खाना समाप्त भी नहीं किया था कि विवेकानन्द आ पहुचा। उसे देखते ही काता की खुशी का ठिकाना नही रहा। काता उसे बहुत प्यार करती थी। विवेकानन्द उम्र म काता से पाच छह महीने बडा था, किन्तु रिश्ते म छोटा। काता उसे बराबरी का दजा देती थी और कभी यह नही महसूस होने देती थी कि भाभी के नाते वह उससे रिश्त मे बडी है। इसीलिए वह मित्रवत व्यवहार करती थी। अपने दाम्पत्य जीवन के बारे मे भी वह बहुत सी बातें उससे कह देती थी। काता की नजर म विवेकानन्द का व्यक्तित्व असाधारण था। इसलिए उसे देखते ही वह उल्लास से भरकर बोल उठी

'आओ नेता जी इसी थाली मे बैठ जाओ।"

"वाह भाभी, तुमसे कभी यह तो होता नही कि बढिया-बढिया पकवान बनाओ। फिर मुझे न्यौता दो और मैं भरपूर भोजन करने के लिए तैयार होकर आऊ। लेकिन, चलो जब तुममे यह श्रद्धा नही है, तो जूठी थाली म ही सही। अपना हिस्सा क्या छोडू? तुम्हे अकेली तो नही खाने दूगा।"

'अकेली कहा खा रही हू?"

'तुम दोनो क्या अलग अलग हो। दो देह एकप्राण हो। मैं तो तुम

दाना को एक ही मानता हू। गैर तो मै हू। इसीलिए तो मुझे दूर ही रखती हो।"

"तुमसे तो कितनी बार आग्रह किया कि यही आकर रहो। मामी जी तुम्हें छोडें तब न। रोटियां तो तुम्हे उनके ही हाथ की अच्छी लगती ह। कठिनाई यह है कि तुम्हें शिकायत करने का मौका मिल ही जाता है। समाज से शिकायत, हुकूमत से शिकायत, परिवार से शिकायत और अब मुझसे भी शिकायत रहने लगी।"

भाभी की बात सुनकर विवेकानन्द खिल खिलाकर हस पडा। कुछ देर तक हसी मे सुमन ने भी साथ दिया। फिर विवेकानन्द ने ही अपनी हसी रोकते हुए कहा

"तुमने मेरी कमजोरी पकड ली, भाभी! मुझे हर किसीसे शिकायत है। तुमसे यह शिकायत है कि अपना प्रेम बाटने के लिए तुम तैयार नही हो। यह जो मेरे भाई है कवि शिरोमणि, इनके चरणो पर तुम अपना जीवन व्यर्थ ही उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो गयी। यह तो इस दुनिया के निवासी हैं नहीं। इनके काव्यलोक मे न कोई भूखा ह, न कोई बीमार। यह तो तुम्हारा अस्तित्व तक भी स्वीकार नही करते होंगे। जरा मुझे भी प्यार करके देखो तो। मात्र एक वस्तु या व्यक्ति को अर्पित प्यार मनुष्य को लोभ और स्वार्थ के घेरे मे सीमित कर देता है। सीमा मे जडता है, जीवन नही।"

सुमन अब तक चुपचाप खाना खा रहा था। बीच बीच मे हसी मे वरबस शामिल हो जाता था। अब उसे मौका मिला तो बोला

'कान्ता, मेरा यह उदात्त भावनाओ से भरा भाई विदेशी हुकूमत मे लोहा ले रहा है। इसीमे अन्दाजा लगा सकती हो कि इसमे कितनी शक्ति है। मुझे छोडकर इसीकी देखभाल करो। मैं भी निश्चिन्त हो जाऊगा। मेरा भाई जब पूरे समाज और देश का बोझ अपने सिर पर उठा सकता है तो तुम्हारी जिम्मेदारी क्यो नही ले सकता? क्यो विवेकानन्द, मैंने ठीक कहा न?"

"ठीक कहा भइया! भाभी अपनी जिम्मेदारी देवर को देखें। लेकिन मैं जानता हू कि मेरे भाग्य मे फूल नही, काटे लिखे हैं।

तीनों इस बात पर हँस पड़े। भोजन समाप्त हो चुका था। सुमन ने हाथ मुह धोकर विवेकानन्द से कहा, "हम लोग सिनेमा देखने जा रहे हैं। तुम भी चलो। शायद तुम्हें नही मालूम कि आज हम लोगो की शादी की साल गिरह है।"

"जरूर चलूगा। एक खुशखबरी और सुन लो। बाबू भुवनेश्वर सिंह ने पिता जी के ऊपर से मुकदमा उठा लिया है। वे इस बात पर तैयार हो गए है कि साल भर के बाद बाबू जी उनका मूल कर्ज चुकता कर देंगे।"

"अच्छा ? सूद माफ कर दिया ? और मुकदमा उठाने को भी तयार हो गए ? लेकिन अकारण तो जमीदार साहब कोई काम करते नही।" सुमन ने गम्भीर होकर पूछा। विवेकानन्द ने जवाब दिया

"राधा की हत्या का मामला थोड़ा उलझ गया था। दारोगा नया आ गया है। उसपर अभी भुवनेश्वर सिंह का जादू पूरी तरह असर नही कर पाया है। दो ही पक्के गवाह हैं एक मैं और दूसरे बाबू जी। यदि वे बाबू जी को अपने कब्जे म कर लेते ह तो मैं स्वत कब्जे मे आ जाऊगा। यही सोचकर उन्होने मुकदमा वापस ले लिया है।"

कांता दोनो भाइयो की बातचीत चुपचाप सुन रही थी। राधा की हत्या के सम्बन्ध मे पूरी कहानी वह जानती थी। उसे मालूम था कि रामेश्वर सिंह पागल है। मानसिक तौर पर उसकी आयु सात आठ साल से अधिक नही है। फिर भी उसे राधा के गले मे बाध दिया गया। आज के युग मे भी स्त्रियो के प्रति ऐसा क्रूर व्यवहार किया जा सकता है, यह सोचकर ही कांता दुखी हो उठी थी। उसने अचानक ही टिप्पणी की

'हत्या का मुकदमा बेकार चल रहा है। राधा की यह हत्या तीसरी बार की गयी है।" यह कहकर कांता चुप हो गयी। दोनो भाइयो ने अचकचा कर कांता की ओर देखा। उसका चेहरा जुगुप्सा से किंचित विकृत हो उठा था। विवेकानन्द के लिए यह नया अनुभव था। इसके पूर्व उसने भाभी का यह रूप कभी नही देखा था। विवेकानन्द को कांता का यह रूप अच्छा लगा लेकिन, सुमन को नारी यह रूप कतई पसन्द नहीं था। उसने भवें सिकोड़ते हुए पूछा

यह क्या कहती हो ?"

"ठीक कहती हूं। समाज नारी को पाप की गठरी समझता है और तुम कवि लोगों की नजर में वह स्वप्न-प्रपंच से अधिक कुछ भी नहीं है। दोनों ही उसे बेजान मानते हैं। तभी तो राधा की यह दुर्गति हुई। पहली बार उसकी हत्या उस दिन हुई जिस दिन वह कन्या के रूप में निर्धन परिवार में पैदा हुई। दूसरी हत्या तब हुई जब उसका विवाह रामेश्वर सिंह जैसे अनपढ़, गंवार और विक्षिप्त व्यक्ति से कर दिया गया। इससे तो अच्छा होता कि उसके माता पिता जन्म के दिन ही नमक खिलाकर उसे मार डालते। अब मुकदमा क्यों चलाया जा रहा है? वह बेचारी तो मुक्त हो गयी?"

दोनों भाई कुछ देर तक कांता का मुंह ताकते रह गये क्योंकि कांता सचमुच ही अत्यधिक कातर हो उठी थी। विवेकानन्द को मौका मिला। उसने कहा

"भाभी, तभी तो मैं कहता हूं कि सब पापों की जड़ आर्थिक विषमता है। नारी पूरी तरह पुरुष पर निर्भर है। इसीलिए वह बोझ है। जब तक यह विषमता दूर नहीं होगी तब तक समाज में इस तरह के कोढ़ कैंसर बने रहेंगे। इसका कोई इलाज नहीं है।"

"फिर तुम विदेशी हुकूमत के विरुद्ध क्यों जिहाद बोल रहे हो?" सुमन ने व्यंग्य किया। विवेकानन्द ने छूटते ही कहा

"हमारे घर में चोर आ घुसा है। उसे तो पकड़कर निकालना होगा वरना यहां कुछ बच नहीं पाएगा और मैं जानता हूं कि उसे निकालने में हमारा साथ वे लोग भी दे रहे हैं जो उस चोर की जगह ले लेना चाहते हैं। हमें यह सावधानी बरतनी होगी कि जो कुछ हमारा अपना है, वह सही-सलामत बच जाय और फिर उसपर मिल्कियत उसकी कायम हो जो उसका असली हकदार है यानी सर्वहारा।'

"सर्वहारा क्या कभी मालिक बन पाएगा? जिस देश में सर्वहारा के नाम पर हुकूमत कायम की गयी, क्या वहां सचमुच सर्वहारा का राज्य हो पाया है? अरे भाई विवेका, प्रभुता जिनके हाथ में आ जाती है, वे कभी उसे छोड़ नहीं सकते। बेशक, एक की जगह अनेक खान वाले हो जाते हैं। राजा को हटाकर मंत्री परिषद् बना दी जाती है, लेकिन इससे फर्क कुछ नहीं पड़ता। शासित हमेशा शासित ही बना रहता है और शासक हमेशा

शासन की बागडोर अपने हाथों में लिए रहता है। समता जब दो व्यक्तियों की बनावट में नहीं है तो पूरे समाज या देश में कैसे आ सकती है?" सुमन अपनी बात पूरी करके गर्वीले नेत्रों से अपने भाई की ओर देखने लगा। विवेकानन्द ने संयत स्वर में जवाब दिया

"प्रकृति ने छोटे-छोटे पौधे पैदा किए और वृक्ष भी। हमारे देश में छोटे-छोटे टीले और झील हैं, साथ ही पहाड़, नदियां और समुद्र भी। इसी प्रकार मनुष्य की प्रतिभा में भी अंतर है, लेकिन सृष्टि में जितने भी जड़ पदार्थ हैं उनके उपयुक्त पोषक तत्त्व प्रकृति मुहैया कर देती है। किंतु, मनुष्य समाज को समान रूप से जीवित रहने का अधिकार नहीं है। क्योंकि स्वार्थी तत्त्वों ने सभी साधन और सुविधाएं अपनी मुट्ठी में समेट कर रख ली हैं। आज न तो प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति को कोई सुविधा उपलब्ध है और न उसे, जो अपने शारीरिक श्रम की बदौलत पसीने बहा कर धरती तोड़ता है और फसल उगाता है। अन्न कौन पैदा करता है? कारखानों में किसकी मेहनत से सामान तैयार होता है? पटना शहर में ये जो बड़ी बड़ी इमारतें हैं, इनका निर्माण किसने किया है? लेकिन, यह विडम्बना नहीं तो क्या है कि ऐसे मेहनतकश भूखों मरते हैं और उनकी लाशों को कफन तक नसीब नहीं होता। भाई जी, यह पूरी व्यवस्था बदलनी पड़ेगी। तभी कल्याण होगा मनुष्य समाज का। हर एक को समान अवसर देना होगा, भले वह किसान हो या मजदूर, पुरुष हो या नारी। मैं विविधता का विरोधी नहीं हूं। विविधता तो किसी समाज की खूबसूरती हुआ करती है, किंतु जिसने जन्म लिया है, उसे जीने का, काम करने का और उन तमाम सुविधाओं को हासिल करने का अधिकार है जो जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं।"

"आप दोनों बहस ही करते रहेंगे या सिनेमा देखने चलेंगे?" माता ने कहा। दोनों भाई माता को देखकर हंसने लगे। सुमन ने कहा

'हां भाई अभी तो हम तीनों अपने बीच समता स्थापित करें और इसके लिए जरूरी है कि सिनेमा चलकर देख आएं।"

रास्ते में भी राधा की बात चलती रही। इस बातचीत में धर्मेन्द्र का नाम आना स्वाभाविक ही था। विवेकानन्द ने उन दोनों को सूचना देने के

अपने पागल भाई की शादी कराने के लिए उतना उद्यम करेगा, वह हत्यारा तो नही ही हो सकता। राधा के पिता मे इतना दम है नही कि वह अपनी बेटी की हत्या की छानबीन करे । और हा, यदि धर्मेन्द्र बीच का सूत्र नही भी बना होता, तब भी राधा की हत्या का कोई न कोई कारण ढूढ लिया जाता।"

काता की समझ मे बात कुछ कुछ आ रही थी, किन्तु सुमन ने अपने भाई के तर्क को स्वीकार नही किया। वह स्वगत भाषण करता हुआ बोला

"तुम्हारी बात मान लेने का मतलब यह होगा कि समाज में किसी सम्बन्ध का अर्थ नही है। स्वार्थ ही सब कुछ है। हर कोई केवल अपने लिए या अपने बेटे के लिए ही जी रहा है। बल्कि, बेटा भी कुछ नही है। मान मर्यादा या परम्परा भी कोई चीज नही है। यदि ऐसा है तब तो देश रसातल मे पहुच जायेगा।"

"पहली बात तो यह है कि आपका देश और समाज रसातल मे है ही, अब नीचे जगह नही है, जहा उतरा जा सके। सौ मे से पचानवे आदमी मजबूरी की जिन्दगी जी रहे हैं। अधिकाश को दो रोटिया तक नसीब नही होती। जिसके पास जितना है, वह उसमे वृद्धि करने के लिए मानवीयता को तिलाजलि देकर पाशविकता मे डूबा हुआ है, और जिसे आप परपरा कहते हैं वह भी अपनी समग्रता और सम्पूर्णता के साथ स्वीकार करने योग्य नही है। शोषक का हम लुटेरा ही कहेंगे। बडे बडे जमीदार और पूजीपति शोषक की श्रेणी मे ही आते है। इनकी परम्परा का पालन करना क्या किसानो और मजदूरो के लिए लाभदायक रहेगा ? जिस संस्कृति की हम दुहाई देते हैं, उस संस्कृति को क्या हम ज्यो का त्यो स्वीकार कर ले या उसे अपने अनुभव और विवेक के आधार पर तौलें ? जिस संस्कृति का अर्थ रूढियो और अन्धविश्वासो के अन्धकार म अपने आपको डाल देना हो, क्या उस संस्कृति को स्वीकार करना ठीक रहेगा ? भाई जी, समाज को कुछ स्वार्थी लोगो ने संस्कृति, परम्परा और इतिहास के महाजाल मे जकड कर रख दिया है ताकि उनका काम बखूबी चलता रहे।

बात खत्म नही हुई और न खत्म होने वाली थी। किन्तु एलफिन्स्टन तक वे लोग जा पहुचे थे। इसलिए बात खत्म करनी पडी।

भुवनेश्वर सिंह के लिए विजय की शिक्षा एक समस्या बन गयी। धर्मेंद्र के लापता हुए काफी समय गुजर चुका था। जब तक धर्मेंद्र रहा, विजय मजबूरन निश्चित समय पर पढने के लिए बैठ जाया करता था। धर्मेंद्र के जाने के बाद यह क्रम टूट गया। छमाही परीक्षा मे विजय को पास कराने के लिए भुवनेश्वर सिंह को स्वय स्कूल जाना पडा। हेड मास्टर ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि वार्षिक परीक्षा मे विजय का सफल होना असम्भव दीखता है इसलिए जरूरी है कि इसके लिए अलग से कोई शिक्षक रख दिया जाय।

भुवनेश्वर सिंह अब अपने घर पर किसी शिक्षक का रखना नही चाहते थे। इससे कोई विशेष लाभ भी नही था। अब तो वे विजय को शहर भेज कर पढाने के लिए आतुर हो उठे थे। उन्हें यह चिन्ता सताने लगी थी कि यदि विजय की पढ़ाई छूट गयी तो उसके भविष्य का क्या होगा? राघव सिंह जैसा मामूली आदमी अपने दोनो बेटो को शहर मे रखकर पढाये और उनका इकलौता बेटा गाव की धूल फाके, भला यह कैसे हो सकता था! फिर वे अपने मन मे यह इच्छा सजोये हुए थे कि विजय कालिज की पढाई पूरी करे। नौकरी करने की उसे जरूरत नही थी। किन्तु, पढ लिख लेगा तो वह राजनीतिक क्षेत्र मे किसी तरह घुस जायेगा। भुवनेश्वर सिंह जानते थे कि राजनीतिक सगठनो को रुपये पैसे की जरूरत होती ही है और वे चाहते भी हैं कि समृद्ध घर के लोग उनके दल मे रहें। तेजी के साथ देश की बदलती हुई परिस्थिति को भुवनेश्वर सिंह बडे गौर से देख रहे थे। उनका मन कहने लगा था कि अब रायबहादुरो और रायसाहबो के दिन शीघ्र ही लद जायेंगे। काग्रेस सगठन जमीदारी प्रथा के खिलाफ था ही फिर विजय का क्या होगा?

भुवनेश्वर सिंह पिछले कई रोज से इसी ऊहापोह मे पडे हुए थे। माघ की शाम थी। जोरो की ठड पड रही थी। दालान के बरामदे पर दो-तीन मोटी मोटी लकडिया जला दी गयी थीं, जिनके चारो तरफ कई लोग बैठे

आग ताप रहे थे। भुवनेश्वर सिंह अपनी चिन्ताओं में डूबे हुए हवेली की ओर से दालान पर आये और घूरे के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गये। उनके वहां बैठते ही नौकर चाकर उठकर खिसक गये। वहा बच रहा केवल शिवबदन। बाहर घनघोर अंधेरा छाया हुआ था। पिछले दो रोज से लगातार वर्षा होती जा रही थी। इसके चलते जाती हुई ठंड जवान होकर लौट आयी थी। भुवनेश्वर सिंह न बाहर के अंधकार में अपनी आखें जमा दी। वे फिर कई प्रकार की चिंताओं में डूब गये। विजय का भविष्य उन्हें आज के मौसम जैसा ही लग रहा था, अंधकारमय, सन्नाटा से भरा और भीगता हुआ। अचानक उन्होंने शिवबदन से पूछा

"जतना का क्या हाल है?"

"ठीक है सरकार।'

"उसकी बेटी के बारे में क्या सुन रहा हू?'

"उसकी बेटी जिरिया अपने पति को छोड़कर भाग आयी है। साथ में गोद का बच्चा भी लेती आयी है। आज धनुखी ने उसे बुरी तरह मारा।"

"यह तो ठीक ही है। उसपर बोझ अधिक बढ़ गया है। यह अच्छा ही हुआ। उसे कुछ रोज तक कोई काम मत दो। इस बात पर भी नजर रखो कि गाव का कोई गृहस्थ अपने खेत खलिहान में उसे काम पर न लगा सके। मैं चाहता हू कि वह पूरी तरह टूट जाय ताकि वह हमारे काम आ सके।"

"जी सरकार। मुदा उसपर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता।

' भरोसा करने की जरूरत भी नहीं है।'

' काम क्या है, सरकार? क्या जतना उसे कर पायगा?"

"समय आने पर बताऊंगा। जैसा कहता हू वैसा करो और मुझे बताते रहो कि उसके दिमाग का क्या हाल है।"

"जी सरकार! दिमाग तो आप जानते ही हैं, जब दो तीन गोली ताडी उसके पेट में उतर जाती है, तब वह आपे में नहीं रहता। कभी कभी राघव बाबू वाली फौजदारी की याद करके थमक उठता है, हालांकि जब

तक वह जेल म रहा, उसके परिवार की देखभाल आपकी कृपा से होती रही। दोनो शाम भात ही खाते रहे ससुरे सब।"

"इधर जिरिया को तुम तेल फुलेल के लिए कुछ देते तो नही हो ?"

"नही सरकार, भगवान किरिया हिं हिंह आप भी मजाक करते ह मालिक।"

"मजाक नही शिवबदन। कान खोलकर सुन लो। कुछ दिन ऐसा गुजरे कि जतना का परिवार दाने दाने को तरस जाये। भूख से उसका परिवार तडपने लगे। उसकी बेटी जिरिया देह बेचते बेचते परेशान हो जाय। नशा पानी के लिए जतना बेटी से पैसा मागे, चोरी करे, भीख मागे मैं ऐसी हालत मे उसको देखना चाहता हू ज्यादा दिन नही लगेंगे। साले को ताडी का अमल है, कुछ ही रोज मे रेंगता हुआ"

तभी किसीके आने की भनक पडी और भुवनेश्वर सिंह खामोश हो गये। लगातार वर्षा की आवाज के बावजूद भुवनेश्वर सिंह ने सुना कि दो व्यक्ति आपस मे बातें करते हुए दालान की ओर ही चले आ रहे हैं। शिवबदन ने, सामने घूरे से उठती हुई लपटो पर दोनो हथेलियो की ओट देते हुए उचककर बाहर के अधकार मे देखा। भुवनेश्वर सिंह जानते थे कि गाव के कुछ लोग, जिनके घर रात मे सोने की व्यवस्था समुचित रूप से नही है, उनके दालान पर आकर सो जाते है। गाव के लिए यह भी फख्र की बात होती है कि किसके दालान पर कितने आदमी उठते बैठते या रात मे सोते है। भुवनेश्वर सिंह का दालान, इस दृष्टि से, गाव के अन्य दालानो से कही अधिक भाग्यशाली था। सामने से आती हुई आकृतियो की ओर देखकर शिवबदन ने कहा

"अभी तो आठ भी नही बजे और लोग सोने के लिए दालान पर आने लगे।

तब तक दोना आकृतियां बरामदे पर आ चुकी थी भुवनेश्वर सिंह आदरपूवक बोल उठे

"अरे आप, राघव बाबू। इस समय ? आइए आइए, बैठिए। इतनी वर्षा और ठड मे हटो शिवबदन इन्हे बैठने दो।" राघवसिंह को रात के समय, वह भी वर्षा म भीगते हुए, अपने सामने देखकर भुवनेश्वर सिंह को

थोडा आश्चय हुआ।

राघव सिंह के साथ इनर सिंह था। नाम उसका इन्द्रदेव था, लेकिन गाव वाले उसे इनर कहकर पुकारते थे। वह दर्जा आठ तक पढकर यह समझ बैठा कि ज्ञान की गठरी का अधिक बोझ वह सभाल नही पायेगा। रामायण महाभारत की कहानिया उसने पडित मूरत झा से, पीपल स्थान पर, सुन सुनकर कठस्थ कर ली थीं। उसका कठ सुरीला था और इस कारण वह गाव की कीतन मडली का अगुआ बन बैठा था। गाव के अधिकाश लाग जब कभी ज्ञान धम के महाजाल म उलझ जाते तो इनर के पास आकर ही उन्हें मुक्ति मिल पाती थी। इनर का घर भुवनश्वर सिंह के दालान स ढाई तीन सौ गज दूर सडक के पार खेत मे था। भुवनेश्वर सिंह ने राघव सिंह से प्रश्न किया था, उन्हें बैठाने को भी कहा, लेकिन इनर सिंह से कुछ नही पूछा। इस उपेक्षा से बोझिल इनर सिंह ने सिर को और झुका दिया। उसका चेहरा वैराग्य भाव को अभिव्यक्त करने की काशिश में विक्षुब्ध हो उठा। घूरे से उठती हुई लपटो के प्रकाश मे भुवनेश्वर सिंह ने इनर का चेहरा देखा और वे उसके मन का भाव समझ गये। उन्होंने हसत हुए पूछा

"क्यो इनर, आज कही कीतन उतन नही है क्या ?'

"इस बरसात के मौसम मे धरम-करम तो होता नहीं सरकार। इन्द्र देव भगवान के सामने हम मत्यलोक के प्राणी क्या खाकर भजन गायेंगे ? राघव बाबू ने कहा कि चलो जमीदार साहब की हवली पर तो हम चल आये। पडोसी हैं, रात बेरात इन्हे अकेले कैसे छोड देते ? जे न मित्र दुख होहि दुखारी, तिन्हहि बिलोकत पातक भारी। यह तो आपने सुना ही होगा।"

जिस गम्भीरता के साथ इनर न अपनी बात कही, वह बात उतनी गम्भीर थी नही। वहा उपस्थित तीनो व्यक्ति ठहाका मारकर हस पड। इनर ने घूरे की झिलमिलाती रोशनी मे तीनो को घूरकर देखा। उन लोगा के हसने का कारण वह समझ नही पाया था। उस लगा कि ये लोग उसकी गूढ बात का अथ समझ नही पाये और तब उसे क्रोध आ गया। इच्छा हुई कि कहे "रे गधी मति मद तू इतर दिखावत काहि" लकिन, इतनी तीखी

बात भुवनेश्वर के सामने बोल सकने की उसकी हिम्मत न हुई। हाल ही मे उसने अपने घर मे फूस की टाटी के स्थान पर मिट्टी की दीवार खडी की थी। फूस का छप्पर हटाकर तीना कमरा को छना को खपडो से छा दिया था। इस छोटे-से काम मे सवा दो हजार रुपये लग गये थे। भुवनेश्वर सिंह ने उसकी जमीन का सूद भरना पर रखकर चार हजार का हैंड नोट लिखवा लिया और उसे सवा दो हजार रुपये दिये थे। इनर सिंह कुछ बोल तो नही पाया लेकिन एसी दृष्टि से भुवनश्वर सिंह की ओर दखा मानो कह रहा हो कि "लक्ष्मी का वाहन सचमुच उल्लू हुआ करता ह।"

ठीक उसी समय रामेश्वर सिंह पानी मे सराबोर दालान पर चढ आया। भुवनेश्वर सिंह ने क्रोध और नफरत भरी नजरा से उसे देखा ता वह ही-ही, ही ही करके हसने लगा। भुवनेश्वर सिंह को अचानक राघव बाबू और इनर सिंह की उपस्थिति का भान हुआ और वे अत्यधिक प्यार से बिगडकर बोले

"इस बरसाती रात मे इधर उधर भटकता रहता है। थाडा भी अपने स्वास्थ्य का खयाल नही रखता और ऊपर से ही ही, ही ही करता है। पूरी तरह पागल हो गया है। बीमार होना है क्या ?"

रामेश्वर सिंह सचमुच ही पूरी तरह पागल बन गया था। राधा की हत्या के बाद वह ननिहाल भाग गया था या उसे भगा दिया गया था। वहा से जब महीनो बाद वह लौटा तब उसके चेहरे पर हमेशा एक ही भाव रहने लगा था, विचित्र निश्चितता का भाव, जैसे अब उसे कुछ नहीं चाहिए। हमेशा खुली देह गाव म और खेत खलिहानो मे घूमता रहता था। किसीसे भेंट होने पर वह स्वय ही-ही करके हसने लगता और अपने-आप बोल उठता, "सब ठीक ह। आप फिक्र मत कीजिए।" कोई प्रश्न करे या न करे, उसका यह वाक्य सबको सुनना पडता था। रात के समय भी वह इसी प्रकार कभी सडक से तो कभी पगडडी होकर आता-जाता दिखलाई पड जाता था।

भुवनेश्वर सिंह ने जान-बूझकर अपने भाई को डपटते हुए कहा

"रात मे इस तरह नगे पाव क्यो घूमता रहता है ? साप बाप काट लेगा तो मुझे कलक लगेगा। अगर तुम्हारी यही हरकत बनी रही तो तुम्ह

ट्री-वेडी मे ठोक दिया जाएगा । मै बदनामी नही ले सकता । लोग कहेग कि भुवनेश्वर सिंह ने जान-बूझकर अपने पागल भाई को साप स डसवा दिया ।"

"ठीक कहा आपने बाबू साहब । ढाल गवार शूद्र पशु नारी य सब ताडन के अधिकारी । यह तो गवार ही नही उससे भी कई सीढी नीचे उतर चुके हैं ।" इनर ने भुवनेश्वर सिंह के समथन मे रामायण की दुहाई देते हुए कहा । भुवनेश्वर सिंह को इ नर का समथन अच्छा लगा । वे उत्साहित होकर मतलब की बात बोले

"आप लोगो के सामने तो यह ही, ही ही ही करता है। लेकिन, कभी-कभी अचानक ऐसा उग्र बन जाता है कि क्या कहू ? इससे डर लगने लगता है ।"

यह बात बिल्कुल गलत थी, किन्तु भुवनश्वर सिंह ने अपनी योजना को कारगर बनाने के लिए यह बात कही थी । वहा बठे हुए राघव बाब, इनर और शिववदन समझ नही पाए कि भुवनेश्वर सिंह क्या कह रहे है। रामेश्वर को उग्र रूप धारण करते कभी किसीने दखा नही था । उन लोगा को इतना ही मालम था कि वह आजकल केवल ही ही, ही ही करता हुआ दिन रात भटकता रहता है । लोगों को उसपर दया भी आती थी । इतनी बडी जमीदारी का हिस्सेदार और इस तरह मारा मारा फिरे ? कुछ लोग दबी जुबान से कहते भी थे कि यदि इसके पिता जीवित होते तो लगकर इलाज करवाते । शायद यह ठीक भी हो जाता । राघव बाबू इसी तरह की बातें सोचकर असमजस मे पडे हुए थे कि शिवबदन ने अपने मालिक का समथन करते हुए कहा

"जी सरकार, परसा एक बकरी बैगन के खेत म घुस गयी थी। रामेश्वर बाबू वही पडा बास का फट्टा लेकर उसके पीछे इस तरह दौडे जैस उसे ।' शिववदन अपना वाक्य पूरा नही कर सका, क्योकि रामेश्वर सिंह उसकी बात सुनते ही तेज आवाज मे ही ही ही ही करने लगा था । भुवनेश्वर सिंह असामान्य रूप से क्रुद्ध स्वर म चीखते हुए बोले

'जाओ यहा से, पागल कहीं का !'"

रामेश्वर सिंह पर उस डाट का जैसे कोई असर नही पडा । वह उसी

तरह ही ही, ही ही करता दालान के पिछले बरामदे से होता हुआ हवेली में चला गया। घूरे के पास बैठे लोग कुछ देर तक खामोश रहे। अन्त में भुवनेश्वर सिंह ने ही चुप्पी तोड़ते हुए, राघव सिंह से कहा

"छोड़िए इस बात को राघव बाबू। मेरे भाग्य में न जाने क्या क्या लिखा है। मालूम नहीं, मेरा यह पागल भाई कब क्या कर बैठेगा। आप बताइए, कैसे इस दुर्दिन में आना था कष्ट किया?"

"पटना से सुमन का पत्र आया है ।"

"वह तो किसी अखबार में काम करने लगा है न! बड़ा अच्छा हुआ। आपका यह बेटा बड़ा ही सुशील और होनहार है।" भुवनेश्वर सिंह ने राघव बाबू को टोकते हुए कहा। ऐसे मौके पर भला इन्नर कैसे खामोश रह जाता। वह मन ही मन राघव बाबू के दोनों बेटों से कुढ़ता था। जब कभी वह रामायण या महाभारत की चर्चा उनके सामने उठाता तो वे दोनों भाई उसके कथन में तरह-तरह की त्रुटियां निकालने बैठ जाते थे। इन्नर ने ये पुस्तकें सिलसिलेवार ढंग से कभी पढ़ी नहीं थी। वह खामोश हो जाता था। इसलिए, उन दोनों के परोक्ष में इन्नर को जब कभी मौका मिलता वह लोगों को यह जताने का प्रयत्न करता कि ये दोनों भाई शहर में रह-कर भ्रष्ट हो गए। इन्नर ने कहा

"हां, सुमन कविता-कविता भी लिखता है। लेकिन, उसकी कविता में धरम करम की कोई बात नहीं होती। असल में अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग आगम निगम का मर्म तो समझते नहीं।"

"अरे तुम्हारे आगम निगम में क्या रखा है अब? अच्छा हुआ, दोनों भाई शहर चले गए। मेरे विजय को देखो। लिखना-पढ़ना छोड़कर आवारा की तरह दिन भर घूमता रहता है। आजकल उसका अड्डा रेलवे स्टेशन पर जमता है। मैं तो परेशान हो गया हूं। जमींदारी आज है, कल चली जा सकती है। कांग्रेसी नेता लोग जमींदारी प्रथा के खिलाफ हैं। इधर स्वामी सहजानन्द सरस्वती जैसा संन्यासी गांव-गांव सभा करके किसानों को भड़काता फिरता है। अरे जब संन्यासी है, तो हरिद्वार जाकर रहे। गृहस्थों के बीच उसका क्या काम? तुम आगम निगम की बात करते हो। आगम-निगम के मुखिया इस संन्यासी ने आजकल कम्युनिस्टों से गठजोड़ कर

लिया है।"

"कलियुग है न ! सब कुछ पुराण मे लिखा हुआ है। यह भी लिखा है कि कलियुग मे गगा उल्टी बहेंगी, सो वह रही है।" इन्नर ने भुवनेश्वर सिंह को सात्वना देते हुए कहा। राघव सिंह जो कुछ कहने आए थे उसे कह नही पाए कि विजय की बात चल पडी। उन्होंने भुवनेश्वर सिंह की सहानुभूति हासिल करने के विचार से कहा

"आपकी आशका निराधार नही है। बुद्धिवल का युग आ गया है। शिक्षा के अभाव मे बुद्धिवल आ नही सकता। विजय को भी आप पटना क्यो नही भेज देते ? भगवान ने आपको सब कुछ दिया है। आप चाहे तो शहर मे मकान लेकर उसे पढने लिखने की सभी सुविधाए दे सकते हैं। गाव मे रहेगा तो इसी प्रकार कभी स्टेशन पर अड्डा बनाएगा तो कभी आम के बगीचे मे।"

"यह बात मुझे अब तक सूझी क्यो नही थी ? आश्चर्य है। गाव की खराब सगत से भी विजय का पिंड छूट जाएगा। इस नेक काम में मुझे आपकी मदद की जरूरत पडेगी। सुमन को आज ही लिख दीजिए। वहा एक अच्छा-सा डेरा ठीक कर दें। सौ दो सौ किराया देना पडेगा। सो दे दूगा।"

"कल ही इन्नर को पटना भेज रहा हू। एक समस्या आ खडी हुई है। इसीलिए आपकी सेवा मे आया हू। इन्नर के हाथ चिट्ठी भी भेज दूगा और जब दो-तीन रोज बाद इन्नर लौटेगा तो मकान की व्यवस्था के बारे मे भी तुरत सूचना मिल जाएगी।"

"क्या समस्या है ?"

"बहू पटने मे बीमार हो गयी है। सुमन की तनख्वाह कम है। वह ठीक से इलाज भी नहीं करवा पा रहा है। दरअसल सुमन ने इस सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है। किन्तु प्रमोद के पत्र से बहू का समाचार मालूम हुआ है। सुमन अब मुझसे पैसे नही लेता और न चाहता है कि वह मुझपर बोझ बने। लेकिन मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है ?"

"क्यो नही ? आखिर दुलहिन गाव म रहती तो आपको अपना कर्तव्य पूरा करना ही पडता।"

"इसी समस्या का समाधान ढूढने के लिए मैं आपके पास आया हू। इनर के हाथ कुछ रुपये भेजना चाहता हू ताकि बहू का इलाज चल सके। शायद वह मा बनने वाली है और उसे टी० बी० हो गया है।"

"अरे राम, राम ! यह क्या सुनाया आपने ? इतनी कच्ची उमर मे टी० बी० ? कितने रुपये चाहिए? निस्सकोच होकर कहिए।" भुवनेश्वर सिह इतना उदार कभी नजर नही आए थे। राघव सिंह पहले से ही सकोच के मारे मरे जा रहे थे और उनकी उदारता देखकर वह और अधिक सकोच से दब गए

"जी जी आपका आपका उपकार मैं कभी नही भूलूगा। पहले से ही आपके आभार और कर्ज से दबा हुआ हू ।"

"यह सब बेकार की बातें न कीजिए राघव बाबू ! आदान प्रदान को ही सम्बन्ध कहा गया है। यदि जरूरत पडी तो क्या आप विजय की मदद नही करेंगे ? यह तो ऐसी दु खदायी बात है कि खैर, बोलिए, कितने रुपए चाहिए ?"

"पाच सौ रुपये का इन्तजाम हो जाए तो । मैं कागज बना दूगा।"

"एक हजार रुपये भेज दीजिए। कागज बनाने की बात बाद मे देखी जाएगी। पहला दस्तावेज छ महीने बाद नया करवाना ही पडेगा। उसी समय यह रकम भी उसमे जोड दी जाएगी।"

"यह आपकी असीम कृपा है, भुवनेश्वर बाबू। कर्ज अपनी जगह है। लेकिन गाढे समय म जैसी कृपा आप मुझपर कर रहे है, वैसी कृपा तो देवता भी नही करते। मैं अपनी जान देकर भी आपके इस एहसान का बदला नही चुका पाऊगा।" राघव सिंह का कठ अवरुद्ध हो गया। उन्हें उम्मीद नही थी कि भुवनेश्वर सिह इतनी आसानी से कर्ज देने को तयार हो जाएगे। वे तो सुमन की दशा का समाचार जानकर ही अधमरे से हो गए थे। जिस सुमन को उन्होने बचपन से लेकर जवानी तक राजकुमार की तरह पाला पोसा, जिसे उन्होने मालूम भी नहीं होने दिया कि वे किस कीमत पर उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति करते आ रहे हैं, वही सुमन आज अपनी नयी नवेली दुलहन के असाध्य रोग से ग्रसित हो जाने पर भी अपने पिता को पैसा भेजने के लिए नही लिख रहा है। राघव सिंह अपने

बटे मे अपने प्रति यह दिव्य भाव देखकर जितना आनन्दित हुए उससे कही अधिक वे वदना विह्वल हो उठे थे। भुवनेश्वर सिंह मे समय की पहचान थी। ऐसे समय मदद देकर उन्होने राघव सिंह को गुलाम बना लिया।

१६

विजय का मन पटना म खूब रम गया था। मछुवाटोली में उसे तीन कमरो का अच्छा सा मकान लेकर दे दिया गया था। गाव से एक नौकर और एक रसोइया आ गये थे। भुवनेश्वर सिंह के पास रुपये की कमी नही थी। तम्बाकू, मिच और अदरक की खेती से हर साल हजारो रुपयों की आमदनी होती थी। हर दूसरे साल पचास बीघे मे फैला आम का बगीचा अलग से उनका खजाना भर देता था। हजारो मन मक्ई और हजारा मन गेहू की फसल होती थी, सो अलग। बेशक, धान की खेती कम होती थी। उस इलाके म अच्छा चावल होता भी नही था, इसलिए बाबू भुवनेश्वर सिंह को कपडे लत्ते के अतिरिक्त खाने के लिए बासमती चावल बाजार से खरीद कर मगवाना पडता था। पागल भाई रामेश्वर सिंह के हिस्से की आमदनी भी उन्हीके हाथ लगती थी। नतीजा यह हुआ कि भुवनेश्वर सिंह को करेंसी नोट गिनकर नही, अनुमान से तौलकर तिजौरा मे रखना पडता था। बीच बीच मे सोने की इटे खरीदते रहने का भी उन्हे शौक था।

विजय को शहर मे कोई तकलीफ न हो, कोई उसे मामूली आदमी न समझे और वह शहर के बडे से बडे व्यापारिया हाकिमा के बेटो के सामने सिर ऊचा करके चल सके, इसलिए भुवनेश्वर सिंह ने उसके खच पर कोई पाबन्दी नही लगाई। जब विजय कुछ महीने शहर रहकर गाव लौटा और भुवनेश्वर सिंह को मालूम हुआ कि शहर मे मोटरगाडी के बिना आना-जाना सुविधापूवक नही हो पाता तो उन्होंने बेटे को डाटा था

"हजार रुपये महीना खच दे सकता हू तो क्या दो-तीन सौ रुपये तुम्हें और नहीं दे सकता। यहा से जाते ही एक गाडी खरीद लो। एक होशियार ड्राइवर भी रख लो। मैं चाहता हू कि तुम्हारी जान पहचान शहर के बडे

बडे लोगो से हो। अभी कुछ दिनो के लिए जो काग्रेसी मुख्यमत्री हुए थे, उन्हें मैं जानता हू। वे भी मुझे जानते हैं। हमारे एक रिश्तेदार ने उनकी तब बडी सहायता की थी जब उन्हें घर से निकाल दिया गया था। उनका नाम है, श्याम बाबू। उनसे जरूर मिलते जुलते रहना। ये लोग ही भविष्य के राजा हैं।"

विजय कुए से निकलकर सीधे समुद्र के किनारे जा पहुचा था। वह अबाध, अनियत्रित अग्निबोट पर जा बैठा था। उसके सामने न तो कोई उद्देश्य था और न दिशा निर्देश दे सकने योग्य सिद्धान्त। पटना पहुचते ही पडोस के एक नौजवान, नगेन्द्र से उसकी दोस्ती हो गयी। वह नग्गू नाम से विख्यात था। वह भी बहुत बडे जमीदार का बेटा था। उसके पिता तीन साल पहले खान दुर्घटना में गुजर गये थे। जमींदारी के विरुद्ध हो हल्ला सुनकर उन्होंने धनबाद में कोयले की कई खानें खरीद ली थी।

पिता के गुजर जाने के बाद नगेन्द्र अपार सम्पत्ति का स्वामी बन गया। उसके मैनेजरों ने सोचा नग्गू को जमीन जायदाद और खान के कारोबार से बेखबर रखना ही बेहतर है। वे लोग उसे खर्च करने के लिए एक की जगह दो देते रहे। नगेन्द्र आई० ए० के द्वितीय वर्ष में पिछले तीन साल से पडा हुआ था क्योंकि उसे पढ़ने की न तो फुरसत थी और न आवश्यकता। उन दिनो अधिकाश लडके नौकरी के लिए ही पढते थे शिक्षित बनने के लिए नही। उसे नौकरी तो करनी नही थी। इसलिए नगेन्द्र ने शहर का जीवन सिगरेट से शुरू किया और बोतला के सहारे कोठे पर चढकर ही दम लिया।

विजय एक क्रूर और कुटिल पिता का पुत्र होने के बावजूद किंचित सकोची स्वभाव का था। सुख और भोग का मजा वह एक सीमा के भीतर रहकर लेना चाहता था। बचपन से विवेकानन्द के साथ रहने के कारण वह पूरी तरह विवेकहीन नही बन पाया था। विवेक निस्सन्देह प्रकाश का काम करता है। यदि कोई उद्देश्य ही नही हो तो प्रकाश के क्या लाभ ? उद्देश्यहीन होने के कारण वह नगेन्द्र के पास लौट जाने को मजबूर हो जाता था। धीरे-धीरे नगेन्द्र उसपर हावी होता गया। अब विजय को शराब में मजा मिलने लगा। उसकी भेंट विवेकानन्द से भी दूसरे तीसरे दिन हो जाया करती थी।

किन्तु, विवेकानन्द की राह पूरी तरह प्रतिकूल दिशा मे जाती थी। वह भला इतनी बडी सम्पत्ति, सुख सुविधा की सम्पन्नता को छोडकर विवेकानन्द के कठोर कटकाकीर्ण खतरनाक रास्ते पर क्यो चलता ? वह तो जानता था कि विवेका उस व्यवस्था और पद्धति के ही विरुद्ध है, जो व्यवस्था और पद्धति उनके सुख का आधार ह।

विजय मन ही मन नगेन्द्र और विवेकानन्द, दोनो से दबता था। वह जन्म से लेकर अब तक गाव म रहते आने के कारण शहर के रहन सहन स अनभिज्ञ था। ऐश, मौज की राह पर वह नगेन्द्र से बहुत पीछे था और विवेकानन्द की तपोभूमि पर पाव रखते ही उसे लगता, जैसे जलते तव पर ही उसने पाव रख दिये हो।

उस दिन विजय की तबीयत कुछ ढीली थी। वह ड्राइग रूम में बैठा हुआ 'हेल्थ एण्ड इफिसियेंसी' नामक अग्रेजी पत्रिका के पन्ने उलट पलट कर देख रहा था। इस पत्रिका म सुगढ स्त्रियो के लगभग नग्न चित्र छपे थे, जैसे अच्छे स्वास्थ्य के नमूने उन्ही चित्रो मे समाहित हो। शाम का समय था। विजय ने सोचा, आज वह जल्दी खा पीकर सो जायेगा।

विजय के डेरे के सामने छ सात फुट चौडी सडक थी। सडक के बाद उजडा हुआ पाक था और पार्क के उस पार पीले रग का छोटा सा एक खूबसूरत मकान था। विजय को मालूम था कि उस मकान में कोई सरकारी वकील रहता है। वकील का नाम वह चाहकर भी जान नही पाया था। पिछले कुछ महीनो से विजय का ध्यान उस मकान की ओर आकर्षित हो गया था। कारण यह था कि एक खूबसूरत जवान लडकी उस मकान के बरामदे पर कभी कभी चहलकदमी करती हुई नजर आ जाती थी। वह लडकी कभी-कभार सामने के पार्क मे भी घूमने आ जाती थी। लडकी का रग गेहुआ था, कद न तो अधिक लम्बा आर न बहुत छोटा। विशेषता यह थी कि उस लडकी के शान्त, सौम्य मुखमडल मे चुम्बक की तरह आकर्षण था। विजय खिडकी की राह छिपकर उसे निहारने लगता था। आमना सामना होने पर वह अधिक देर तक उस लडकी को देखने की हिम्मत नही कर पाता था। कई बार उसकी आखें पकडी गयी थी और वह घबरा उठा था। उस लडकी का व्यक्तित्व एसी पवित्र प्रभामडल से आवृत रहता था,

जिसकी ओर देखने का साहस विजय जैसा चौराहे पर खड़ा व्यक्ति आसानी से नही कर पाता था।

विजय तस्वीरों को देखते जा रहा था और मन ही मन सामने के मकान मे रहने वाली किशोरी के अग-प्रत्यग की कल्पना मे मुग्ध होता जा रहा था। अचानक नगेन्द्र की आवाज सुनकर वह अपने कल्पनालोक से जमीन पर आ गिरा। नगेन्द्र ने पास आकर कहा

"वाह साहब, बाहर कितना मजेदार मौसम है और आप यहा बैठे-बैठे झख मार रहे हैं।" यह कहकर उसने विजय के हाथ से वह पत्रिका छीन ली, "अच्छा, तो हुजूर तस्वीरें देख रहे थे और वह भी नगी औरतों की। लेकिन यार, तुम भी निरे बुद्धू रह गए। बैठे-बैठे यह बेजान खूबसूरती देखने से क्या फायदा? जिस खूबसूरती मे थिरकन नही, गर्मी नही, और जिसका स्पर्श मदहोश न कर सके उसे देख-देखकर अपना समय क्यो बर्बाद करते हो? चलो, मेरे साथ चलो। आज तुम्हे मैं ऐसी चीज दिखाता हू जिसकी एक झलक पाने के लिए पटना के रईस पागल हो उठे हैं।" नगेन्द्र ने अपनी छोटी छोटी आखो से विजय को घूरते हुए कहा। विजय ने अपने मित्र नग्गू को देखा। उस समय उसकी भगिमा आतरिक विकृति का प्रतीक लग रही थी, नारियल-से चेहरे पर पतली-नुकीली छोटी नाक, पीछे की तरफ सपाट चिपके हुए बड़े बड़े बाल, छोटा ललाट, कटार की तरह छटी हुई मूँछें, दुबली पतली लम्बी देह, सफेद कमीज और नीले काले रग का समर का पैंट। मनुष्य की समस्त ओछी इच्छाओ का चलता फिरता नमूना-सा लग रहा था नग्गू। विजय को अपनी ओर घूरते देखकर नगेन्द्र ने अपनी बात जारी रखी

"मुझे क्या घूर रहे हो? घूरना उसे, जो तुम्हारी रग-रग मे आखो की ही राह तरल आग पहुचा देगी।"

"नही यार, आज तबीयत ठीक नहीं है।"

"अमा, तुम भी कैसी तबीयत लेकर बैठ गए हो। ह्विस्की की दो पेग भीतर पहुचते ही बैताल की तरह छलाग लगाने लगोगे।" नगेन्द्र ने यह कहकर जबरदस्ती उसे उठा दिया। विजय कपड़े बदलकर चलने को तैयार ही हुआ था कि विवेकानन्द आ धमका। उसे देखते ही नगेन्द्र के चेहरे पर

ऊब की रेखाए उभर आयी। किंचित् व्यग्य के स्वर मे उसने कहा

"कहिए नेता जी महाराज ! अच्छे तो ह ?"

"रास्ता आप दिखाते हैं और नेता मैं बन गया ? अरे नग्गू बाबू, क्या गरीब का मजाक उडाते हैं ?" विवेकानन्द ने तपाक से उत्तर देकर मुस्करा दिया। नगेन्द्र भी जैसे तैयार बैठा था। बोला

"आप गरीब है ? विद्या आपके पास, बुद्धि आपकी रग रग मे और प्रतिभा ऐसी कि एक साथ क्लास से लेकर समाज तक मे आप बाजी पर बाजी मारते चले जा रहे हैं। फिर आप गरीब कसे ह ?"

"विद्या, बुद्धि और प्रतिभा आज के युग मे अधेरे कमरे के समान हैं, जहा पूजी की रोशनी जलाए बगैर कोई काम नही बनता।"

बात का रुख अछोर रेगिस्तान की तरफ होते देख विजय ने मुस्करा कर कहा

"विवेका, ठीक समय पर आ पहुचे। चलो बाजार चलते हैं। भटकना ही है तो रेगिस्तान मे क्यो भटकें ?"

विवेकानन्द को फुरसत थी। तीनो बाजार की ओर चल पडे। रास्ते मे विजय ने धीमी आवाज मे नगेन्द्र से कहा

"अब क्या होगा नग्गू ? इसे नही मालूम होना चाहिए कि हम लोग बाई जी के यहा भी जाते ह। यह तो मुझे कच्चा ही चबा जाएगा।"

नगेन्द्र ने विवेकानन्द की ओर देखा, जो ड्राइवर की बगल मे अगली सीट पर बैठा था। गाडी सेकेण्ड हैड मौरिस कार थी और उसमे जरूरत से ज्यादा आवाज थी। बाहर सडक पर आने जाने वाली गाडिया, लोगो और दुकानदारो की मिली जुली आवाज शोरगुल बनकर वातावरण मे छायी हुई थी। नगेन्द्र आश्वस्त हो उठा कि उन दोनो की बातचीत विवेकानन्द तक नही पहुच सकेगी। दरअसल विवेकानन्द को उन लोगो की बातचीत मे कोई रस भी नही मिल रहा था। वह भाभी की चिन्ता मे डूबा था। कान्ता रोगमुक्त तो हो गयी थी, लेकिन, अभी काफी कमजोर थी। गोद मे चन्द महीने की खूबसूरत बच्ची थी जिसकी देखभाल करने के साथ साथ उसे छोटी-सी गृहस्थी का बोझ भी उठाना पडता था। उसने कई बार चाहा कि अपनी भाभी को गाव पहुचा दे, लेकिन कान्ता अपने पति को

छोडकर जाने लिए तैयार नही हुई। विवेकानन्द जानता था कि घर से मदद मिलने के बावजूद उसके भाई सुमन को अपने परिचितो से कज लेना पडा था। दुकानदारो और दूध वाले का बकाया अलग सिर पर चढा था। ऐसी स्थिति मे माता का पहला स्वास्थ्य भला किस प्रकार लौट सकता था। गरीबी का यह अभिशाप विवेकानन्द को सपदश-सा लगा। वह मन ही मन यह सोचकर हसने लगा कि पूरी पृथ्वी को शेषनाग ने सिर पर उठा रखा है। तभी उसके कान मे नगेन्द्र की आवाज सुनाई पडी

"और क्या समाचार है विवेका जी ! जिन्दगी कैसी कट रही है ?"

"बस, आप लोगो के स्नेह की रोशनी मे रास्ता तय कर रहा हू।"

"आप तो शर्मिन्दा करते है। भला मेरे स्नेह मे क्या शक्ति हो सकती है। कृपा और स्नेह तो भगवान का होना चाहिए।"

नगेन्द्र की बात सुनकर विवेकानन्द ने पीछे मुडकर देखा। विजय और नगेन्द्र दोनो मुस्करा रहे थे। भगवान के कृपापात्रो की यह स्थिति विवेक को उस समय अच्छी नहीं लगी। उसने हसते हुए कहा

"यही तो हैरानी की बात है, नगू बाबू। भगवान की अन्धेरगर्दी किसीके लिए कृपा बन जाती है तो किसीके लिए मौत। उस भगवान ने सबको उत्पन्न करके सबको अपनी अपनी आयु पूरी कर लेने की सुविधाए दे रखी हैं। प्रकृति के किसी अग मे आमतौर पर व्यतिक्रम नही देखा जाता। लेकिन, उसीने आदमी भी पैदा किया है जिसके क्रिया-कलापो का अता-पता शायद उसे भी नही है। सुबह से शाम तक खून पसीना एक करने वाला रात पट बाधकर गुजार देता है और जो बठे-बैठे पलग और सोफा-सेट तोडा करते हैं, वे खाते-खाते अपना हाजमा खराब कर लेते हैं। यह सब यदि उसी भगवान की कृपा है तो मैं उसे दूर से ही प्रणाम करता हू।"

विवेकानन्द ने ये बातें हसकर कही थी, लेकिन उसकी हसी मे मन की कडुआहट और छटपटाहट प्रकट हो रही थी। विजय अपने बचपन के साथी के स्वभाव से पूरी तरह परिचित था। इसलिए उसने नगेन्द्र की जाघ को दबाकर चुप रहने का इशारा किया। लेकिन नगेन्द्र ने तब तक पूछ दिया था

"इसका मतलब कि आप भगवान को नही मानते ?"

"जो सामने है, दृश्य है, जीवन्त है, उसे तो देखकर भी अनदेखा किया जा रहा है। जिसके बल पर भगवान के कृपापात्र अजीर्णता के शिकार हो रहे हैं, उसे तो कोई मान्यता देता ही नही। फिर जो अदृश्य है, निर्विकल्प है, उसको मान्यता देने की कल्पना मे अपना माथा क्यो खराब किया जाए और यदि आपकी परिभाषा का भगवान है भी तो उसे आपकी मान्यता की दरकार नही है।"

"तो क्या परम्परा से चली आती मान्यताए, विश्वास आदि झूठे हैं ?"

"सभी परम्पराए यदि सही होतीं तो इतिहास उन्हे नकारता नहीं और जिसे आप विश्वास कहते हैं, वह मेरे जैसे लोगो की दृष्टि मे भ्रम भी हो सकता है। समाज ने व्यर्थ ही बहुत सी परम्पराए और भ्रम पाल रखे हैं। इसके पीछे कारण है—अधिकाश की अज्ञानता और चन्द लोगो का स्वार्थ। जिन लोगो का स्वार्थ सधता है वे चाहते हैं कि ऐसी भ्रामक परम्पराए सदा सर्वदा बनी रहें ताकि वे और उनकी सन्तान गुलछर्रे उडाते रहे।"

"फिर उपाय क्या है ?'

"क्रान्ति।"

'लेकिन, क्या समाज अपनी परम्पराओ को तोडने की आज्ञा देगा ?'

"इसलिए तो मैंने कहा कि क्रान्ति। और क्रान्ति के लिए आज्ञा की नही, अवसर की प्रतीक्षा होती है।"

"फिर तो हमे अवसर की प्रतीक्षा मे बैठे रहना चाहिए।"

"नही, उस अवसर को करीब लाने के लिए उद्यम करना होगा। जन साधारण को समझाना होगा कि कर्तव्य और अधिकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उन्हे बताना होगा कि श्रम के अभाव मे पूजी और जमीन अनुपयोगी हैं। यह बताने के लिए वर्तमान व्यवस्था के प्रति उनमे घृणा और आक्रोश भरना होगा। यह सब विकासोन्मुख सघर्ष के रास्ते पर चलकर ही सम्भव है।"

नगेन्द्र जानता था कि विवेकानन्द देशभक्त नौजवान है। लेकिन, वह विद्रोह और क्रान्ति की सीमा का भी अतिक्रमण कर चुका है, इसका उसे अन्दाजा नहीं था। इधर विजय भी रह रहकर उसकी जांघ मे अपनी उं

लिया चुमो देता था। नगेन्द्र ने विवेकानन्द का अब अधिक छेडना उचित नही समझा और चुपचाप बाहर की ओर देखने लगा। सडकों पर बत्तिया अभी नहीं जली थीं। रोशनी का समय भी अभी नही हुआ था। लेकिन, आकाश मे काले-काले बादल घिर आए थे, जिसके चलते समय से पहले ही धुधलका छा गया था। विजय की मोटर कार पटना के मैदान के पास पहुची ही थी कि तेज वर्षा शुरू हो गयी। गाडी के एक्जीबिशन रोड पहुचते-पहुचते धुआधार वर्षा होने लगी। कार्यक्रम चिरैया टाड जाने का था। विवेकानन्द को साथ लेकर वहा जाना सम्भव नही हो सकता था। नगेन्द्र ने सोचा था कि स्टेशन के पास वाले पिण्टू होटल म बैठकर कुछ चाय नाश्ता कर करा-कर विवेकानन्द को टरका दिया जाए। उसका सोचना मौसम न बरबाद-कर दिया। अचानक जोरो की वर्षा होने लगी। चन्द मिनटो म सडको पर पानी की धारा बहने लगी। नगेन्द्र ने कहा

"विजय, अच्छा हो कि हम लोग डेरे लौट चले। वही बैठकर दो चार जाम चलाएगे। इस जानमाह मौसम म दारू स अच्छा दोस्त दूसरा कोई नही है।"

गाडी लान के दाहिने से चक्कर काटती हुई लोअर रोड की तरफ मुड गयी। चन्द मिनटो म ही वर्षा की रफ्तार धीमी हो गयी थी। लेकिन अब लौटकर चिरैया टाड की तरफ जाना नगेन्द्र न उचित नही समझा, क्योकि वह निचले इलाके मे पडता था और थोडी सी वर्षा होने पर भी वहा घुटने-घुटन पानी जमा हो जाता था।

ट्रेनिंग स्कूल के पास पहुचते ही नगेन्द्र अपने दोनो हाथ जोर-जोर से मलता हुआ इस प्रकार चीख उठा जैसे रेलगाडी का चक्का उसके कलेजे पर चल गया हो

"अरे मार डाला !" नगेन्द्र इतने जोर स चीखा था कि ड्राइवर ने घबराकर गाडी रोक दी थी। विजय और विवेकानन्द न अकचाकर नगेन्द्र की ओर कुतूहल भरी नजरो से देखा। नगेन्द्र ने कहा, "इस जालिम जवानी की देह पर यदि आज मैं साडी बनकर पडा होता तो उफ ! कसी चाल है !"

विवेकानन्द और विजय ने सामने सडक पर उस ओर देखा जिधर

नगन्द्र ने इशारा किया था। लगभग पचास गज आगे एक लडकी बायीं तरफ से सकुचाती शर्माती तेज कदमों से बढी चली जा रही थी। वर्षा की बौछार ने उसकी साडी को सराबोर कर दिया था। भीगी हुई साडी लडकी के अगों से चिपक चिपक जाती थी। अचानक ब्रेक देने से गाडी चीख की आवाज देती हुई रुक गयी थी, जिसे सुनकर वह लडकी भी मुडकर देखने लगी थी। विजय ने देखा कि वह लडकी और कोई नहीं, वही थी जो पार्क के सामने वाले पीले मकान के बरामदे मे चहलकदमी किया करती थी। विजय ने हुलसकर कहा

"यह तो हमारे सामने के मकान म रहती है।"

"तो उसे बैठा क्या नही लेते यार। ड्राइवर, गाडी उस लडकी के पास ले जाकर रोको।"

लडकी न मुडकर देखा। लेकिन, वह रुकी नही और अपनी पूर्ववत रफ्तार मे चलती चली गई। ड्राइवर ने उसके पास ही गाडी रोक दी। विजय न गाडी का शीशा नीचे करके आवाज दी

"आइए, गाडी मे बैठ जाइये। हम लोग आपके घर के पास ही रहते है।"

लडकी क्षण भर के लिए ठिठककर खडी हो गई, किन्तु विजय की पूरी बात खत्म होने से पहले ही वह फिर सिर झुकाकर चल पडी। नगेन्द्र और विजय खडी गाडी मे बेवकूफ बने बैठे उस लडकी को जाते देखते रह गए। वर्षा फिर तेज हो उठी थी। अचानक विजय को होश आया और बोला, "चलो ड्राइवर, सीधे डेरे चलो।"

"नहीं गाडी फिर उस लडकी के पास ले चलकर रोको।" इस बार विवेकानन्द ने कहा। उसके स्वर मे लक्षणा अथवा व्यजना नहीं थी। ड्राइवर ने फिर आदेश का पालन किया। गाडी के रुकते ही विवेकानन्द दरवाजा खोलकर नीचे उतर गया। लडकी तब तक ठीक उसके सामने पहुचकर खडी हो गयी थी। विवेकानन्द ने निस्सकोच भाव से कहा

'आप अगली सीट पर बैठ जाइए। जब हम लोग आपके घर के पास ही चल रहे ह तो इस वर्षा मे भीगते हुए जाने से क्या फायदा? चिन्ता मत कीजिए। आप की ही तरह हम लोग भी आदमी हैं।"

लडकी ने देखा, सामने खडा लम्बा तगडा युवक पूरी तरह अनासक्त है। उसके चेहरे पर या आखो मे इच्छा अथवा अनिच्छा का कोई भाव नही है। आवाज मे मात्र आदेश का स्थापन है। उस लडकी को सामने खडा विवेकानन्द, जो उसके लिए स्वय पानी मे भीग रहा था, विचित्र लगा। मुह से कुछ शब्द निकाले बगैर वह उसकी बगल से निकलकर गाडी की अगली सीट पर बैठ गयी। विवेकानन्द पिछली सीट पर विजय की बगल मे जा बैठा।

विजय के आदेश पर ड्राइवर ने गाडी अपने डरे पर न रोककर पीले मकान के सामने जाकर खडी कर दी। बरामदे पर ही वकील साहब बडी बेचैनी से चक्कर काट रहे थे। गाडी को अपने बरामदे के सामने रुकते देखकर वह कौतूहल से भर गए। सबसे पहले विवेकानन्द ने उतरकर अगला दरवाजा खोला। किशोरी जल्दी से निकलकर बरामदे पर जा पहुची। वकील साहब का कौतूहल और बढ़ गया। उनके मुह से शब्दो और अक्षरो म खडित होकर बडी कठिनाई से ये बोले जसे बसुरे वाक्य फूट पडे

'अरे अ आ प आप लोग और यह छाया ।"

"हम लोग अपने घर आ रहे थे। यह सडक पर भीगती हुई आ रही थी। इन्हें बहुत मुश्किल से हम लोग गाडी म बैठा पाए।" विवेकानन्द ने बरामदे पर पहुचकर कहा। तब तक नगेन्द्र और विजय भी गाडी से निकलकर बरामदे पर आ गए थे। विजय को वकील साहब ने पहचान लिया और बोले

"अरे आप ।"

"जी हां, मेरा नाम है विजय। यह हैं मेरे साथी नगेन्द्र और यह मेरे बचपन के साथी, विवेकानन्द। मैं आपके सामने वाले मकान म ।"

"जी हां! मैं तो आपको देखते ही पहचान गया था। शहर की जिन्दगी भी अजीब होती है। सामने दस हाथ की दूरी पर आप रहते हैं और आज तक जान-पहचान नहीं हुई अरे आप लोग भीतर चलकर बैठिए न! छाया, इन लोगो के लिए चाय बनाकर ले आओ। पहले जाकर कपडे बदल लो। भीगे कपडो मे ज्यादा देर रहोगी तो बीमार हो जाओगी। आइए न, आप लोग भीतर आइए।"

वकील साहब प्रारब्ध मे विश्वास रखते थे। इधर व अचानक ही अपने को भाग्यशाली मानने लग गए थे। पचास साल तक अथक परिश्रम करने के बाद दो साल हुए वह सरकारी वकील बने थे। यह पद भी प्राप्त नही होता यदि काग्रेसी हुकूमत राज्य मे नही आयी होती। वकील साहब का नाम था बाबू सियावर सिंह। सियावर बाबू की विशेषता यह थी कि वे हुकूमत के वफादार थे, भले वह हुकूमत विशुद्ध अग्रेजी हो या काग्रेसी। पटना के अग्रेज हाकिम हुक्काम उन्हे आदर देते थे और काग्रेसी नताओ के यहा होली दीवाली के अवसर पर वे शुभकामनाए अर्पित कर आते थे। गेहुआ रग की स्थूल काया पर गोल मटोल खल्वाट सिर। सियावर बाबू को दूर से देखकर ही लोग पहचान लेते थे। दोनो कान के ऊपर थोडे-थोड बालो की पतली सी पटटी गदन के पिछले हिस्से तक को ढकती हुई बच रही थी। उनके चार बेटे थे और एक बेटी। दो बेटे पहले ही नौकरी म लग चुके थे और दो को, उसी मत्री की कृपा से, जिसने सियावर बाबू को सरकारी वकील बनने मे सहायता की थी, अच्छे फम मे नौकरी मिल गयी थी। छाया ज्यो ही गाव के स्कूल से मट्रिक पास करके शहर मे उनके साथ आकर रहने लगी थी त्योही उनका भाग्योदय शुरू हो गया था। इसलिए उन्हे विश्वास हो गया था कि छाया कोई सामान्य लडकी नही है। वह सीधे विधाता के यहा से धरती पर रानी बनकर रहने के लिए आयी है। सियावर बाबू बहुत दिनो से सामने के मकान की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे थे। इस बात की जानकारी पूरे मोहल्ले को थी कि विजय बहुत बडे जमीदार का बेटा है। सियावर बाबू जब कभी भी विजय को आते जाते देखते थे, तब उनके मन म इच्छाओ का ज्वार उठने लगता कि काश! यह लडका मेरा जमाता हो जाता। उनके मन के किसी कोने मे यह विश्वास जन्म ले चुका था कि छाया के लिए घर बैठे कोई राजकुमार वरमाला लेकर आ धमकेगा।

आज सौभाग्य को अचानक ही अपने घर मे साक्षात पदार्पण करते देखकर सियावर बाबू प्रसन्नता से भर उठे। उन्होने उत्साहपूर्वक तीनो को बैठाया। छाया भीतर जा चुकी थी और वे वहा बैठे-बैठे खुशी के मारे कुछ बोल भी नही पा रहे थे। रह रहकर स्नेहपूर्ण आखो से वे विजय को देखने लग जाते थे।

१७

उस रात विवेकानन्द सो नही पाया। रह-रहकर छाया का सलोना मुखमडल अन्धेरे कमरे के किसी कोने से रोशनी बनकर उभर आता था। विवेकानन्द की बन्द पलको की राह दो निश्छल आखें उसके हृदय म उतर आती थी और तब वह अनुस्मृति की गहराइयो म खो जाता था। उसन क्यो सोचकर अपने अधिकार का प्रदशन करते हुए छाया से गाडी मे बैठ जाने को कहा था? यह अधिकार उसे किसन दिया? क्या यह सहज प्रेरणा जन्म जन्मातर-वाद के सिद्धान्त से उद्भूत नही है? कही न कही, मन के किसी कोने मे, अनजाने ही उसकी इच्छाओ की छवि रूप ग्रहण करती रही होगी जिस कारण वह छाया को देखते ही पहचान गया होगा। जीवन मे ऐसा क्या अनेक बार नही हुआ है कि किसीको देखते ही लगन लगता है कि यह जाना-पहचाना व्यक्ति है। किन्तु, एसा सोचना क्या यथाथ की अवमानना करना नही है? जड चेतन की प्रक्रियाओ के प्रतिबिम्ब को हम जन्म जन्मान्तर के सस्कारो से क्या जोडें? जो कुछ है, वह जैसा है, उसमे परिस्थिति और परिवेश के अनुरूप प्रतिक्रिया हो तो उस प्रतिक्रिया का प्रतिबिम्ब कही न कही पडेगा, भले वह समाज मे हो या किसी मानस मे।

प्रत्येक व्यक्ति के मन मे बचपन से ही विभिन्न इच्छाए जन्म लेकर पलन लगती हैं। ये इच्छाए, सामाजिक परिस्थिति और प्रक्रिया के अनुरूप, मानसिक सघष अथवा समन्वय से जन्म लेती है। यह इच्छा एक आदश हो सकती है, भूख या लालसा भी हो सकती है।

विवकानन्द का सघषशील मानस विश्रान्ति के क्षणो मे जिस सुख और शाति की परिकल्पना करता होगा, कदाचित छाया उसी सुख और शान्ति की जीवित-जाग्रत प्रतिछवि थी। विवकानन्द की आखो मे वही छवि प्रच्छन्न रूप से छिपी होगी जो छवि गाडी मे बैठते समय मुस्करा उठी थी। किस अन्दाज से छाया विवेकानन्द के स्पश तक से बचती हुई गाडी मे बैठी थी, जैसे सामने के भवर जाल से बचने के लिए छोटी-सी नाव टेढी होकर मुड जाती है। उस समय छाया ने पूरी पलकें खोलकर निश्छल आखो स, क्षण-भर के लिए, उसे देखा था और तब कोई तीखी चीज उसके कलेजे के

भीतर बड़ी तेजी से उतर गयी थी।

बेचैनी के मारे वह बिस्तर पर उठ बैठा। उसे क्या हो गया है ? इस तरह के अनाप शनाप सपनों में डूबकर क्या वह अपने आदर्श और उद्देश्य से विमुख नहीं हो जाएगा ? *क्या अनुस्मरण की नींद में डूब जाना यथार्थ से पलायन नहीं है* ? जहां दासता का बन्धन है, शोषण का जुल्म है, वहां प्रेम के पेंग मारना क्या उचित है ? विवेकानन्द कमरे में टहलने लगा। दूर पर, गंगा में चली जाती हुई स्टीमर का भोंपू चीख उठा। विचित्र लगी वह चीख विवेकानन्द को। उसका मन न जाने कैसा हो गया। वह फिर बिस्तर पर आकर लेट गया। कमरे की तनहाई असंख्य शूल बनकर उसके अंगों में चुभने लगी। उसे लगा, अब तक वह अकेला ही जीवन-संग्राम में उलझ रहा था। उसकी असंख्य इच्छाएं—मन के इर्द-गिर्द समस्त इच्छाएं आज चक्रवात बनकर उसके मन को ही समूल उखाड़कर उड़ाए चली जा रही थीं।

विवेकानन्द को याद आने लगा, छाया ने सबसे पहले उसे ही चाय का प्याला दिया था। उसकी उंगलियां चाय देते समय विवेकानन्द की हथेली से छू गयी थीं और छाया ने शर्माकर जल्दी से अपना हाथ खींच लिया था। चाय का प्याला झटका खाकर छलक उठा था जिसके छींटों से विवेकानन्द की धोती पर धब्बे पड़ गए थे। छाया का सुकोमल मुखमंडल तमतमा उठा था और तभी सियावर बाबू ने कहा था

"अरे खड़ी क्या हो ? विजय बाबू को चाय दो। जल्दी करो।"

"जल्दी क्या है ?" विजय ने मुस्कराकर छाया की ओर देखते हुए कहा था। उस समय छाया एक साथ तीन कपों में चाय डाल रही थी। विवेकानन्द की नजरें अकस्मात् नगेन्द्र पर जा टिकी थीं। नगेन्द्र बड़ी बेहयायी के साथ छाया को घूर रहा था। उसकी बुभुक्षित आंखें छाया के अंग प्रत्यंग पर ऐसी बिछलती जा रही थीं, जैसे उसका वश चले तो वह आंखों की राह ही छाया को निगल जाए। सियावर बाबू ने हंसते हुए तपाक से कहा था

"अरे विजय बाबू यह तो हमारा सौभाग्य है कि आप इस कुटिया में आये। मैं जानता हूं कि आप कौन हैं। आप तो छोटी मोटी रियासत के मालिक

है।" यह कहकर सियावर बाबू हसन लग थे। उस हसी मे उनकी कातरता और याचना स्पष्ट हो उठी थी। छाया ने भवें टेढी करके अपने पिता को देखा था। उस समय उसकी मुद्रा से ही स्पष्ट हो गया था कि पिता की बातें उसे अच्छी नही लगी। छाया का यह भाव विवेकानन्द को भा गया था।

छाया उसीके कहन से गाडी मे आ बैठी थी और छाया ने उसे ही सबस पहल चाय का प्याला दिया था। बाद मे भी वह, रह रहकर, छिपी नजरो से उसीकी ओर देख लिया करती थी। इसका क्या अथ हुआ ? विवेकानन्द किसी नतीजे पर पहुच नही पा रहा था। वह इतना ही समझ पाया कि एक नयी आवश्यकता ने उसके मन में करवट ली है और उसका प्रतिबिम्ब उसे परेशान किए हुए है।

उस रात विवेकानन्द देर से अपन डेरे पर लौटा था। मामा जी बरामदे पर चारपाई डाले लेटे हुए थे। मामी अपने भाई की बीमारी की सूचना पाकर मायके चली गयी थी। तभी से मामा जी बरामदे पर ही सोने लग गए थे। जिस समय विवेका वहा पहुचा, उस समय रात के ग्यारह बज रह रह थे। उसने सोचा, मामा जी सो रहे हैं। बिना कोई आवाज किए वह चुपचाप भीतर चला जाना चाहता था कि मामा जी ने टोक दिया था

"इतनी रात तक कहा रहत हो बेटा ! समय ठीक नही है।"

"जी, जरा विजय के यहा चला गया था। कुछ असल असल मे मेरे पास कुछ किताबें नही हैं। सोचा, विजय की किताबो से ही काम क्यो न चला लिया जाय।" उसने झूठ कहकर जान बचान की कोशिश की। वह भीतर जान को उद्यत ही हुआ था कि मामा जी ने कहा

"वे लाग बडे आदमी हैं। उनकी सगत मे रहने से हमारा सस्कार बिगड़ सकता है। हम सीमित साधन वाले लोग हैं। उनके साथ रहते-रहते आदत बिगड जाएगी तो बाद म दुख होगा।"

"वह तो मेरे बचपन का साथी है, मामा जी। उसके साथ रहत न जाने कितन वष बीत गए, फिर भी मेरी आदतें खराब नही हुई। पटना मे और कोई भी तो नही, जिसके साथ मैं शाम का समय बिताऊ। एक सुमन भाई हैं और दूसरा यह विजय है।"

"मिलो-जुलो। मैं मना नही करता। लकिन अपने हित-अहित की

पहचान भी तुम्हे होनी चाहिए। भोला की सगत का परिणाम भुगत चुक हो। तुम्हारा भाग्य अच्छा था कि मित्र के रूप मे दारोगा जी मिल गए और वहा से मेरा तबादला भी हो गया। यदि भाग्य ने साथ नही दिया होता तो तुम भी आज भोला की तरह जेल मे चक्की पीसते होते। तुमन सुना नही, भोला को चौदह साल की सजा मिली है।'

"मुझे मालूम है, भोला अपने देश की बलिवेदी पर अपने अमूल्य समय की कुर्बानी दे रहा है। उसका नाम इतिहास के पन्नो पर अकित होकर अमर हो जाएगा ।" विवेकानन्द ने गव से सिर उठाकर मामा जी को जवाब दिया था। मामा जी हसते हुए ही खाट पर उठ बैठे थे और बोले थे

"यही तुम्हारी भूल है बेटा! इतिहास के पन्ना पर सिपाहियो के नाम नही लिखे जाते हैं। बल्कि, सिपाही तो इतिहास की जिल्द का धागा बन जाता है, जिसकी आवश्यकता तो है, लेकिन जिसे कोई देख नही पाता। भोला जैसे लोगो का भी यही हाल होगा। अभी तुम लिखन पढने म ध्यान दो। देखते नही, स्वाधीनता आन्दोलन के जितने भी अगुआ हैं उनमे से अधिकाश बैरिस्टर है, बडे-बडे जमीदार ह, सम्पादक ह या धनी मानी व्यक्ति हैं। इन्ह न तो रोटी की चिन्ता है और न वस्त्र की। लेकिन तुम्हारी स्थिति दूसरी है।"

'तो क्या मामा जी, मनुष्य को हर काम स्वाथ की पूर्ति के लिए ही करना चाहिए ?"

"जीवित रहन के लिए स्वाथ की पूर्ति तो करनी ही चाहिए और जीवित रहोगे तो देश सेवा भी कर पाओगे। तुम्हारे पिता की दशा तुमसे छिपी हुई नही है । फिर, जिस रास्ते पर तुम चल पडे थे वह रास्ता तो बिल्कुल ही गलत था। बम पिस्तौल से इतनी बडी और शक्तिशाली सरकार का कुछ बिगडने वाला नहीं है। गाधी जी का ही रास्ता ठीक है। साध्य के साथ-साथ साधन भी उत्तम होने चाहिए। हिंसा की राह प्रतिहिंसा के द्वार तक पहुचती है। छिपकर बम पिस्तौल चलाना सत्य को नकारने जैसा है। हमारे देश म सत्य और अहिंसा के माहात्म्य पर बहुत कुछ लिखा गया है। उन पुस्तको का भी पढा करो। उनसे सन्माग पर चलने म सहायता मिलेगी।

विचार और आचार निर्मल बनेंगे।"

विवेकानन्द मामा जी से उपदेश सुनने का अभ्यस्त हो गया था। उसके मामा, चतुर्भुज बाबू बहुत ही ईमानदार, कमठ और धर्मभीरु व्यक्ति थे। प्रेम से उनका हृदय लबालब भरा हुआ था। किन्तु उनमें कुछ दोष भी थे। हर पुरानी परम्परा और आचार विचार को वह ब्रह्म की लकीर मान बैठे थे। ऊँच नीच, छुआछूत और भेद भाव उनकी दृष्टि में ईश्वर द्वारा विनिर्दिष्ट मर्यादाएं थीं। उनकी दृष्टि में राम या कृष्ण मात्र ही ईश्वर के रूप थे और कहा करते थे कि जो इन्हें नहीं मानता, वह विधर्मी है। परम सत्य की दूसरी कोई व्याख्या चतुर्भुज बाबू की कल्पना से परे की बात थी। इसी तरह वह मानते थे कि भगवान ने ही नारी जाति को अत्यधिक सीमित अधिकार देकर इस सृष्टि में भेजा है। पति लुच्चा हो, लफंगा हो, नराधम हो या चरित्रहीन हो, फिर भी पत्नी उसे देवता मानकर पूजे। उसका जीवन पति के लिए पूर्णतया समर्पित भोग्य वस्तु है। इसी समर्पण भाव से एक-निष्ठ जीवन व्यतीत करके वह मोक्ष पा सकती है।

विवेकानन्द लाख कोशिश करके भी जब सो नहीं पाया तो वह कमरे से निकलकर बाहर खुले आकाश के नीचे चक्कर काटने के विचार से बरामदे की ओर बढ़ा। उसने सोचा, तेजी से चालीस पचास चक्कर काट लेगा तो शायद नींद आ जाएगी। ज्यों ही उसने चौखट पर पांव रखा कि सामने का दृश्य देखकर वह काठ बन गया। मामा जी की खाट पर लगी मच्छरदानी के भीतर से कोई औरत बाहर निकल रही थी। उस औरत को पहचानते उसे देर नहीं लगी। वह और कोई नहीं, चौका बरतन करने वाली तीस-बत्तीस साल की नौकरानी थी। मच्छरदानी के भीतर से सिर निकालकर मामा जी ने फुसफुसाहट के स्वर में उस औरत से कुछ कहा। वह औरत पूरी बात सुन नहीं पायी तो मामा जी के चेहरे की ओर झुक गयी। विवेकानन्द का सिर झनझना उठा। वह अधिक देर तक वहां खड़ा नहीं रह सका और उलटे पांव अपने कमरे में आकर बिस्तर पर धम्म से बैठ गया। उस रात वह बिलकुल नहीं सो पाया। सुबह के इंतजार में वह उसी प्रकार करवटें बदलता रह गया, जिस प्रकार ज्वराक्रांत व्यक्ति वैद्य की प्रतीक्षा में बेचैन रहता है।

सुबह होते ही वह मामा जी से मिले बगैर विजय के डेरे की ओर चल पडा। पिछली रात के विभिन्न दृश्य उसके मन को सुख दुख, उदारता, कठोरता और प्रेम घृणा की अनुभूतिया से मथ रहे थे। न जाने क्यो, उसे लग रहा था कि छाया की एक झलक पाकर वह जैसे गगा-स्नान की पवित्रता से पूरित हो उठेगा। वह तेजी के साथ कदम बढाता हुआ मछुवा टोली की तरफ लगभग भागता हुआ सा चला जा रहा था।

अगल-बगल की दुकानें बन्द थी। कुत्ते सडको पर घूमन लगे थे। दूध वाले, सब्जीवाले और अखबार वाले इधर से उधर आ जा रहे थे। इसके अतिरिक्त अभी सडक पर लगभग सन्नाटा ही था। हवा मे उमस थी। तेज चलने के कारण उसे पसीना आने लगा। कमीज भीगी पीठ से चिपकने लगी। वह लगभग दौडन सा लगा, जैसे वह किसी चीज से पीछा छुडाने के लिए भाग रहा हो। जसे-जैसे पसीना बहता गया, उसका मन भी हलका होता गया। शायद उसका मन अब पीछे न जाकर आगे मछुवा टोली पहुच चुका था, जहा बरामदे पर छाया के उपस्थित रहने की सभावना थी। अतीत से भागना प्राय कल्याणकारी होता है।

तेज रफ्तार मे ही विवेकानन्द विजय के डेरे पर पहुचा था और सामने पीले मकान के बरामदे पर छाया को देखकर वह अचानक ही रुक गया। छाया उसीकी तरफ कौतूहल भरी आखो से देख रही थी। आरम्भ में वह समझ नही पाया कि उसे आखे फाड फाडकर क्यो देख रही है। तुरत ही उसन महसूस किया कि उसकी गति देखकर कोई भी जाना पहचाना व्यक्ति प्रश्न कर बैठता, "किसके डर से इतना तेज भागे जा रह हो ?" विवेकानन्द सचमुच ही किसी भयावह स्थिति से डरकर भागा जा रहा था। इसलिए अपनी स्थिति का ज्ञान होते ही वह एक ब-एक रुक गया और इस तरह अचानक रुकने के कारण वह पकडे जाने के भय से झेंप गया। घबडाकर वह बरामदे पर चढन को हुआ कि सीढियो से टकराकर गिरते गिरते बचा। भीतर जाने के पहले उसने सिर घुमाकर सियावर बाबू के मकान की तरफ देखा, छाया वहा खडी खिलखिलाकर हस रही थी।

विजय पलग पर लेटे लेटे चाय पी रहा था। विवेकानन्द को देखते ही वह प्रफुल्लित होकर बोला, 'आओ, आओ, विवका। यहा अकेला-अकेला

महसूस कर रहा था। तुम्हारे लिए भी चाय मगवाता हू।" चाय पीते-पीते विजय ने रात का पूरा किस्सा कह सुनाया कि किस प्रकार नग्गू शराब की चुस्की ले-लेकर छाया की भाव भगिमाओ का उन्मादक बखान करता रहा और किस प्रकार इस सरस चर्चा मे आधी रात बीत गयी। विजय ने कहा

"सचमुच विवेका, छाया मे अजीब आकर्षण है। उसे अनिंद्य सुन्दरी तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु जो घरेलू खूबसूरती उसमे है, वह मैंने अयत्र नही देखी। लेकिन, मुझे इस लडकी से थोडा भय भी लगता है। इतनी सौम्य, शान्त, सरल और निमल लडकी जिस किसीके भी जीवन मे आएगी, उसे अपना गुलाम बना लेगी। क्या, तुम्हारा क्या विचार है ?"

"मेरा विचार है कि छाया की चर्चा नग्गू के साथ मत किया करो।"

"क्यो ?"

"इसलिए कि छाया गगा की निमल धारा है। नग्गू बधे हुए गन्दे जल मे डुबकी लगाने का अभ्यस्त हो चुका है। वह बडा पातकी है। ओस की बूद पत्र-पुष्पो पर ही जीवित रह सकती है, नग्गू सरीखे गिरे हुए लोगो की हथेलियो पर नही।"

विजय क्षण भर अवाक होकर विवेकानन्द की ओर देखता रह गया। उसकी समझ मे नही आया कि क्या जवाब दे, हालाकि उसे विवकानन्द की बात सही प्रतीत हुई। उसे देखते ही विजय ने सोचा था कि वह विस्तार-पूर्वक बताएगा कि किस प्रकार नगेन्द्र ने छाया के अगो का उन्मादक और वीभत्स चित्रण किया था, लेकिन विवकानन्द की बातें सुनकर यह सब कहने की हिम्मत उसमे नही हुई।

१८

उस दिन विवेकानन्द मे मामा जी का सामना करने की हिम्मत नही थी। किस प्रकार वह उन्हें देख सकेगा ? इसीलिए उसने तय किया था कि वह विजय के यहां ही दिन का खाना खाकर सो जाएगा। पिछली रात भर जगा रहने के कारण उसकी आखें जल रही थी। इस विचार से वह नहा-

धोकर तैयार ही हुआ था कि सुमन के प्रेस से एक आदमी ने आकर सूचना दी, "सुमन जी की बच्ची बहुत अस्वस्थ हो गयी है।" विवेकानन्द घबड़ा कर चलने को उद्यत हुआ तो विजय ने कहा

"आध घण्टे में भोजन तैयार हो जाएगा। खाना खाकर हम दोनों ही चलेंगे।"

"नहीं। मुझे वहां तुरंत पहुंचना चाहिए। मालूम नहीं, भाभी का क्या हाल हो रहा होगा।"

"क्यों, सुमन भाई तो वहीं होंगे?"

"सुमन भाई अब बिलकुल बदल गए हैं। दुःख कभी देखा नहीं है। सोचते रहे कि जीवन फूलों की सेज है और जब कांटे अधिक मिलने लगे तो वह घबरा उठे। कभी कभी तो मानसिक संतुलन तक खो देते हैं।"

"अच्छा तो ठीक है। मैं भी साथ चलता हूं। ड्राइवर रहता तो तुम्हें पहुंचा आता। मैं फिर बाद में आता।"

दोनों साथ चल पड़े। राह में विजय ने अपने पारिवारिक चिकित्सक डा० सेन को भी गाड़ी में बैठा लिया था। डा० सेन पटना के विख्यात चिकित्सक थे।

जिस कोठरी में बच्ची बीमार पड़ी थी, वह बहुत ही छोटी-सी और अंधेरी थी। वहां दो-तीन आदमियों से अधिक होने पर ही भीड़ का-सा दृश्य बन जाता था। यही सोचकर डा० सेन को मरीज के पास छोड़कर विवेकानन्द और विजय बाहर के गलियारे में आ गए। कुछ ही देर में डा० सेन ने बाहर आकर विवेकानन्द से कहा

"बच्ची को डबल निमोनिया हो गया है। उसमें थोड़ी भी शक्ति नहीं रह गयी है। खून तो है ही नहीं, और यह कमरा इतना छोटा और गन्दा है कि क्या कहा जाए।"

"बच तो जाएगी डाक्टर साहब?" विजय ने चिन्तातुर स्वर में पूछा। विवेकानन्द की तो बोलती ही बन्द हो गयी थी। डा० सेन ने कहा

"कहना कठिन है। इसका इलाज सही ढंग से नहीं हुआ। मैं कोशिश करके देखता हूं। लेकिन, बेहतर होगा कि इसे उठाकर आप अपने मकान में ले चलिए। इस मकान में तो हट्टा कट्टा तन्दुरुस्त आदमी भी बीमार हो

जाए। आपका मकान मेरे क्लिनिक के पास है। इतनी दूर बार बार आना मेरे लिए कठिन होगा।"

सच्चाई यह थी कि यदि सुमन डा० सेन के क्लिनिक के ठीक सामने रहते होते, तो भी डा० सेन आसानी से उसके यहा नही आते। यह तो विजय बुलाने गया था, इसलिए वे झटपट तैयार होकर आ गए। पटना के बडे-बडे डाक्टर साधारण लोगो की नब्ज तक पर हाथ नही रखते थे। ऐसे सभी बडे डाक्टर मेडिकल कालेज मे नौकरी करते थे, लेकिन इलाज करते थे अपने निजी क्लिनिक मे। आज तक यही परम्परा जारी है। जो जितना बडा डाक्टर है उसकी उतनी ही अधिक आमदनी है। डाक्टरो की लोकप्रियता इसीसे नापी जाती है कि कौन कितने हजार रुपये महीने की प्रैक्टिस करता है। डाक्टर सेन की प्रैक्टिस उन दिनो पाच हजार रुपये महीने की थी। इन डाक्टरो की तुलना श्मशान घाट के डोम से करनी चाहिए।

काता को सही स्थिति की जानकारी नही दी गयी। उसी समय विजय उन लोगों को उठाकर अपने मकान मे ले आया। इलाज चलने लगा। काता को अपने मायके गाव जाना था। उसके घर में शादी थी। इसी बात को लेकर उसका अपने पति से कई बार झगडा भी हो चुका था। आखिर काता वहा नहीं जा पायी।

उन दिनो सुमन का पारिवारिक जीवन नरक के द्वार तक पहुच चुका था। एक क्रूर और कठोर यथार्थ की सच्चाई से अनजान सुमन को जब गृहस्थी का बोझ उठाना पडा तब जाकर उसे मालूम हुआ कि प्यार साध्य नहीं साधन ही बन सकता है। इसके लिए भी विवेक और धीरज की आवश्यकता पडती है। अतिशय भावुक व्यक्ति आत्मकेन्द्रित रहता है। स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित होने मे थोडा ही अतर है। सुमन आत्मकेन्द्रित था। इसलिए, विवेक और धीरज के रज्जु मार्ग पर चलता हुआ वह अपना सतुलन बार-बार खो बैठता था।

काता ने असीम पीडा सहकर एक लडकी को जन्म दिया था। उन्ही दिनो वह तपेदिक का शिकार बन गयी थी। सुमन का सम्पूर्ण धीरज और विवेक काता की तीमारदारी में चुक गया। काता रोगमुक्त तो हो गयी,

किन्तु उसका शरीर ढाचा मात्र बच रहा। चेहरे की आभा ही नही, सारा सौन्दय समाप्त हो गया। असमय ही वह वृद्ध दिखने लगी थी।

शुरू शुरू मे बच्ची देखन मे गुडिया जैसी लगती थी। लेकिन कुछ दिनो बाद वह भी अस्वस्थ रहने लगी। माता के स्तन का दूध असमय ही सूख चुका था। बच्ची को बाहर के दूध पर पोसना पडा। तरह-तरह के सक्रामक रोग से बच्ची पीडित रहने लगी थी। वह बीमार हो जाती तो माता का अधिक समय उसीकी तीमारदारी मे गुजरता, बाकी समय मे वह रसोई पानी का जुगाड करने लग जाती। निदान उसे स्वय आराम करन की कभी फुरसत नही मिलती थी। नतीजा यह हुआ कि बारी-बारी से मा-बेटी बीमार रहने लगी और घर की सुख शान्ति उजड गयी।

सुमन ने अपन छात्र जीवन मे बराबर सपने ही सपने देखे थे। उसके हृदय मे इच्छाओ का ज्वार उठा करता था और वह भविष्य की लोरिया सुनकर बेसुध हो जाया करता था। विवाह के बाद ही उसका जीवन ऐतिहासिक खडहर की तरह बन गया था, जहा उसकी जिन्दगी की रगीनिया ढूहो और मकबरो की नगी, बीभत्स दीवारो म खो गयी। उसकी सजनात्मक शक्ति और कल्पनाशील प्रतिभा जहरीले सर्पो की तरह उसके मन प्राणा के चारा ओर लिपट गयी। वह कुठाग्रस्त होकर जड जीवन व्यतीत करने लगा। उसे माता पर अब रह रहकर क्रोध आने लगा था। झल्लाहट मे आकर वह उसे खरी-खोटी सुना दिया करता था। माता की चुन्धी-चुन्धी आखें और सौन्दय की आभारहित मुखमडल देखकर वह विकृति से भर उठता था। ऐसी स्थिति मे उसकी इच्छा होती कि घर द्वार छोडकर कही चला जाए। जहा सुख नही, शाति नही, जीवन का रस और गन्ध नही, वहा रहने से क्या लाभ ? किन्तु आक्रोश का ज्वार उतर जाने पर उसके भीतर से आवाज आती, "इसके लिए जिम्मेदार कौन है ? पति के रूप म अपनी असमयता के लिए वह किसे दोष दे ? माता तो सौन्दय की जगमगाती देवी बनकर उसके अधेरे घर मे आयी थी। क्यो वह असमय ही वृद्ध दिखने लगी है ? इसके लिए धिक्कार का पात्र कौन है ?" और तब सुमन मायूस होकर घण्टो जहा का तहा बैठा रह जाता था।

आज प्रेस से आते ही सुमन न जेब से चिट्ठी निकालकर माता की ओर

बढाते हुए कहा था, "यह लो। तुम्हारे मायके की चिट्ठी लगती है।" काता की आखों में प्रसन्नता चमक उठी थी और उसके होठो पर बचपन की ताजगी उभर आयी थी। काता अपने उद्वेग पर नियत्रण नही कर पा रही थी। उस समय सुमन को काता बहुत ही सुदर लगी। वह उसे निहारता रहा और मन ही मन सोचता रहा, 'काता अभी भी कितनी खूबसूरत है।' सुमन की कल्पना उसकी आखो की खिडकी से निकलकर काता के बालो, आखो, होठो, गरदन और वक्ष से उलझती रही।

"कहा की चिट्ठी है ?"

"मायके से आयी है। मा ने लिखा है।"

"कोई खास बात है क्या ?"

"हा। मेरी चचेरी बहन की शादी तय हो गयी है। अगले महीने लगन है। मुझे जाने दोगे न ?" काता ने उल्लसित होकर पूछा। सुमन काता के होठो की ओर देखता हुआ ही बोला, "ऐसे मौके पर कौन किसको रोकता है ?"

'मैं चाहती हू कि दो चार रोज बाद चली जाऊ।" काता ने पत्र मोडते हुए कहा। सुमन जो अब तक उसकी ओर अत्यधिक आकर्षित हो उठा था, अचानक ही अपनी कमीज उतारता हुआ बोला "इतना पहले जाकर वहा क्या करना है ?"

"वाह, इतना पहले जाकर वहा क्या करना है। जैसे मेरे लिए कोई काम ही नही ह, वहा। बेचारी मा को ही सब काम करना पड जाएगा। शादी-ब्याह का घर है। मैं वहा रहूगी तो मा को काम धाम मे मदद मिल जाएगी।"

"अच्छा, अच्छा। पहले खाना तो खिलाओ।"

जब सुमन ने खाना शुरू कर दिया, काता ने कहा, "कुछ देर बाद चाचा के डेरे पर जाकर पूछ आऊगी।"

"क्या पूछ आओगी ? '

"यही कि वे लोग कब तक जाएगे ?"

सुमन ने काता की तरफ कुछ चिढकर देखा। उस समय भी काता उत्साह और उल्लास से चमक रही थी। लेकिन सुमन को उसका यह भाव

अच्छा नहीं लगा। उसने मुड़कर कहा

"चाचा ने कभी तुम्हारी खोज खबर ली है जो तुम उनका नाम लेते ही थिरकने लगती हो।"

"उन्हें कहा फुरसत है। इतना व्यस्त रहते हैं। तुम्हें तो खामखाह उनसे ईर्ष्या होती है। अपनी विफलताओं का आक्रोश दूसरों पर क्यो उतारते हो ?"

"मुझे किसीसे शिकायत नही। मैं किसीसे सहायता की अपेक्षा नही रखता, खासकर तुम्हारे चाचा से।"

"चाचा ने तुम्हारा क्या बिगाडा है जो हमेशा उन्हें कोसते रहते हो ? क्या उन्हीके बल पर तुमने मुझसे विवाह करके गृहस्थी बसाई है ?"

"मैंने ऐसा कब कहा ? मैं तो शुरू से ही जानता था कि रघुवीर जी तुम्हारे चाचा हैं, पिता नही और भतीजी के नाते तुम उनपर एक बोझ बनी हुई थी। मुझे देखते ही वह अपना बोझ झटपट उतार फेंकने को तैयार हो गए। यही है आजकल का तथाकथित सयुक्त परिवार।"

सुमन का इतना कहना था कि काता अचानक फफक फफककर रोने लगी। रोते रोते ही उसने कहा

'मैं तो तुम्हारे लिए भी बोझ बन गयी। कैसी अभागिन हू कि तपेदिक होने पर भी मर नही पायी। क्यो नही थोडा सा जहर लाकर दे देते हो ? कवियों को उडने के लिए मुक्ति चाहिए। बधन नही। कौन तुमने मुझे स्वग मे ला बिठाया है कि धौंस बर्दाश्त करू ?"

काता का रोना चीखना सुनकर उसकी बच्ची चौंककर जग पडी और रोने लगी। काता ने उसे गोद मे उठाया तो वह सन्न रह गयी। बच्ची की देह चूल्हे पर चढे तवे की तरह जल रही थी। क्षण भर मे ही वह अपनी पीडा और क्रोध भूल गयी। उसने घबडाकर उस सुमन की ओर देखा जिससे वह कुछ देर पहले जहर माग रही थी और कहा

'अरे, इसे तो बहुत बुखार है। सुनते हो, किसी डाक्टर को बुला लाओ।"

सुमन भी घबरा गया। उसने बच्ची का सिर, गरदन, पेट आदि छूकर देखा और सीधे कमरे के बाहर भागा। सडक के उस पार एक एल० एम०

पी० डाक्टर रहता था। उसने दवा दी। लेकिन बुखार घटने की बजाय बढ़ता ही गया और तब जाकर उसने बगल से प्रेस मे अपने एक सहयोगी को फोन किया कि वहा से किसीको भाभा जी के यहा भेजकर विवेका को खबर कर दें।

रात मे बच्ची के स्वास्थ्य मे थोडा सुधार नजर आया। किंतु सुबह होते होते उसकी तबीयत अचानक बहुत खराब हो गयी। डाक्टर सेन ने आकर जाच-पडताल की। नयी दवा दी गयी। लेकिन उसका कोई सुफल नही निकला। सुबह आठ बजते-बजते बच्ची की पूरी देह ऐंठने लगी। उसका मुह टेढा हो गया। आखें टंगी हो गयी। यह सब देखकर कांता उन्मादिनी की तरह चीखती हुई बाहर भागी। विवेकानन्द अपनी भाभी के पीछे दौड़ा। तब तक वह पार्क के भीतर रोती चिल्लाती हुई जा चुकी थी। सामने अपने मकान के बरामदे पर छाया खडी थी। उसे मालूम हो गया था कि विजय बाबू के घर मे कोई बहुत बीमार है। किंतु, अपनापन न होने के कारण, चाहकर भी वह उस तरफ जा नहीं पा रही थी। विवेकानन्द ने दौड़कर कांता को पकड लिया, तब तक छाया भी सहायता के लिए वहा आ पहुची थी।

दोनो मिलकर बडी कठिनाई से कांता को कमरे तक ला सके। लेकिन तब तक बच्ची दम तोड चुकी थी। कांता पछाड खाकर खाट के पास गिर पडी।

१६

बच्ची की मृत्यु के बाद कांता विजय के डेरे मे रह नही पायी। वहा सभी प्रकार की सुविधाए थी। विजय के हृदय म कांता, सुमन और विवेकानन्द के लिए अपार स्नेह था। जो सुमन अपने घर मे बात-बात पर तुनक जाया करता था, अनाप शनाप बकने लगता था, वही सुमन विजय के डेरे मे प्रसन्नचित्त रहा करता था। फिर भी कांता का जी वहा नही लगा।

सुबह सुबह कांता के सामने नौकर जब दूध भरा गिलास लाकर रख

देता तो कांता मन ही मन, अपनी बेटी के लिए, कैसा न कैसा करने लगती। तरह-तरह के पकवानों से भरी थाली देखकर कांता भीतर ही भीतर रो पड़ती थी। हवादार कोठरी की खिड़कियों से आने वाली ताजी हवा के झोंके उसे घुटन से भर देते थे। उसकी बेटी इन्हीं सुविधाओं के अभाव में चल बसी थी। अब वह भला किस तरह इन सुविधाओं के उपभोग में आनंद मनाती ?

इस डेरे में कांता के लिए एक ही आकर्षण था। वह छाया से जुड़ गयी थी। अपने पिता और चाचा का घर छोड़ने के बाद, पहली बार, उसे छाया के रूप में ऐसी सहज स्नेहमयी हमउम्र लड़की मिली थी, जिसके पास बैठकर वह कुछ देर के लिए अपना दु ख भूल जाती थी।

छाया हर सुबह वहां आकर कांता के बाल गूंथ देती, जबरदस्ती नाश्ता कराकर दवा खिला देती, उसके कमरे में बिखरे वस्त्र आदि सहेज-कर रख देती और जाते-जाते धमकी दे जाती

"दोपहर खाना खाकर दवा लेना न भूलिएगा, वर्ना मैं आपसे बात भी नहीं करूंगी।"

तीसरे दिन ही 'आप' की जगह 'तुम' ने ले लिया। दोनों के बीच बहन का रिश्ता पक्का हो गया। कांता पूरी तरह छाया के सामने खुल गयी। किस प्रकार गंगा घाट पर सुमन से उसकी पहली भेंट हुई थी और किस प्रकार वह धीरे धीरे उससे सम्पृक्त हो गयी, यह सब कुछ उसने छाया से कह दिया था। इतना कुछ कहने की शायद जरूरत नहीं पड़ती यदि उसे सुमन में आ जाने वाले बदलाव का एहसास नहीं हुआ होता। उसने तो सुमन को एक गम्भीर और स्थिरचित्त युवक के रूप में अंगीकार किया था, वही सुमन जीवन के कठोर यथार्थ के आ उपस्थित होते ही किस तरह अस्थिर, चंचल और उद्विग्न हो जाया करता था, यह बात कांता की समझ में नहीं आती थी। सब कुछ सुनकर छाया ने सांत्वना देते हुए कहा था

"जीवन का दूसरा नाम है—विकास और प्रगति। कठिनाई यह है कि सबको विकास और प्रगति का समान अवसर मिल नहीं पाता है। पुरुष वर्ग तो खैर, किसी न किसी प्रकार विकास की ओर बढ़ता ही रहा है, किंतु

नारी को जबरन उनके पीछे घिसटना पडता है। वे अपनी इच्छानुसार विकास पाने का अधिकार नही रखती। यह भी यथार्थ ही है—यदि जिंदा रहना चाहती हो तो 'अनिच्छा' को 'स्वेच्छा' मे बदल दो। किसी राह पर चलना ही है, तो मजबूरी क्यो ?"

"क्या यह सभव है ? तुम्हारे सामने भी यदि ऐसी ही समस्या आ खडी हो तो क्या तुम मजबूरी को स्वेच्छा मे बदल पाओगी ?"

छाया ने कांता की ओर देखा। कुछ देर तक उसके चहरे पर गभीरता बनी रही जो धीरे धीरे इस प्रकार दूर हो गयी जैसे बादल का छोटा टुकडा हवा के हल्के झोंके से दूर हट जाता है। छाया ने मुस्कराकर कहा

"मैं किसी स्थिति को मजबूरी मे स्वीकार नही करूगी। जो बात मेरे मन और विचार के अनुरूप नही होगी, उसे ओढ लेना ईमानदारी की बात नही है।"

इस तरह की बातें दोनो सहेलियो मे प्राय हर रोज हुआ करती थी। इसके बावजूद कांता का मन बोझिल बना रहता था। वह जल्द से जल्द अपने डेरे मे जाना चाहती थी। किंतु विवेकानन्द ने उसे वहा रोक रखा था।

उस दिन विवेकानन्द जब विजय के डेरे पर पहुचा, कांता स्नान घर मे थी। कांता की कोठरी मे छाया कुर्सी पर बठी कोई पत्रिका पढ रही थी। विवेकानन्द ने वहा पहुचते ही पूछा

"कौन-सी पत्रिका है ?"

"हुकार।"

"हा, अच्छी पत्रिका है। इसमे सम्पादकीय की जगह लिखा रहता है—'बधी है लेखनी, लाचार हू मैं।' कुछ न कहकर भी इस एक वाक्य के जरिए सम्पादक बहुत कुछ कह जाता है।"

छाया ने उसकी ओर देखा। दोनो की आखें मिली। छाया की आखें झुक गयीं। उसके होठो से अस्फुट वाक्य निकला, "लाचारी अच्छी चीज नही होती।"

विवेकानन्द छाया की बात सुनकर चौंक उठा। उसने गौर से छाया की ओर देखा। वह निर्विकार भाव से पत्रिका के पन्ने पलटती जा रही

थी। उसे लगा कि सामने बैठी लडकी सामान्य से कुछ हटकर है। फिर भी उसने बात को कुरेदने के विचार से कहा

"लाचारी में भी एक खूबसूरती है, बशर्ते कि इसे अच्छे साध्य के लिए साधन के रूप में अपनाया जाए।"

"मैं ऐसा नही मानती। साध्य ही सब कुछ नही है। यदि साधन अच्छा हो तो वही साध्य बन सकता है।''

"रोग से मुक्ति के लिए कडवी दवा पीनी पडती है, पशुवल से जूझने के लिए पशु बल का भी सहारा लेना पडता है और काटा निकालने के लिए काटा ही उपयोगी होता है।"

"यह स्थिति लाचारी की स्थिति नही है। यहा ता आवश्यकता और उपयोगिता की बात है। मैं जिस रास्ते को ठीक समझती हू, मुझे उसीपर चलना चाहिए। लाचारीवश दूसरी राह पर चल पडना मेरी नजर मे अपने आपको धोखा देना है।

बात को सैद्धांतिक दलदल मे फसते देख विवेकान द ने कहा

"काता भाभी को ही देखिए। वह अपने घर जाने के लिए व्यग्र हो उठी हैं और जब वहा जाकर रहने लगेंगी तो अकेलापन उनसे बर्दाश्त नही होगा।"

"अकेलापन से अधिक पीडादायक है मृत्यु का एहसास। इसी एहसास स भाभी घबरा गयी हैं। उन्हे आप लोग जबरदस्ती यहा मत रोकिए।"

"यह आप कह रही हैं ?" विवेकान द के स्वर मे आश्चय से अधिक बेचैनी का भाव था। वह समझता था कि काता का वहा रहना छाया को अच्छा लगता होगा, क्योकि इस बहाने वे दोनो भी एक दूसरे से मिल लेत थे। छाया की बात से उसे थोडी चोट भी पहुची। छाया ने सहज भाव से कहा

' इसमे आपको आश्चय क्यो हो रहा है ? आखिर भाभी को अपने घर तो जाना ही है। आज जाए या महीने भर बाद जाए, इससे क्या फक पडना है ?"

"फक पडता है। फक यह पडता है कि यहा आप लोग भी हैं।"

"यह तो मात्र सयोग की बात है। ऐसा सयोग कही भी और कभी भी

उपस्थित हो सकता है।"

विवेकानन्द असमजस मे पड गया। जिस छाया को वह सहज, सरल और अबोध समझता आया था, वह छाया उतनी सरल और अबोध नही थी। वह तो मान बैठा था कि छाया उसकी ओर बुरी तरह आकृष्ट हो गयी है। ज्यो ही कांता विजय के डेरे को छोडकर अपने घर जाने का नाम लेगी, छाया उसे समझा-बुझाकर यही रोक लेने का प्रयत्न करेगी। क्योंकि जिस तरह वह छाया से मिलने के लिए आतुर रहता है, उसी तरह छाया भी उससे मिलने को आतुर रहती होगी। अपने सपने को बिखरता देखकर वह अब अपने पर नियत्रण नही रख सका और बोला

"यहा आप आसानी से आ जाती हैं। मुझे भी अच्छा लगता है। सुमन भाई के डेरे पर हर रोज आ पाना आपके लिए सम्भव नही होगा।"

"तब क्या दूसरो के सहारे किसी मिलन को स्थायी बनाया जा सकता है? इस तरह की मजबूरी के मिलन से बेहतर है कि मिला ही न जाए।"

"किससे न मिला जाए?" कांता ने स्नान घर से निकलकर पूछा। उस समय सद्य स्नाता कांता का गौरवर्ण मुखमण्डल आतरिक सौंदर्य से उदभासित हो रहा था। छाया ने उसे देखते हुए कहा

"तुम कितनी सुदर हो भाभी। तुम्हारे चेहरे पर अनोखा सौदर्य है। मैं कल्पना कर सकती हू कि स्वस्थ रहने पर, कुछ वर्ष पहले, तुम कैसी रही होगी। ईश्वर करे, वह स्वस्थ आभा तुममे फिर से लौट आए।"

"धत! पगली कही की। तुम्हारी बुद्धि ही नही, दृष्टि भी पुरुषों वाली है।" कांता ने भीगे बालो को आगे लेकर निचोडते हुए कहा। छाया ने जवाब दिया

"पुरुषो की दुनिया मे जीवित रहने के लिए जरूरी है कि थोडा पुरुषत्व भी रखा जाए। वैसे तो हमारे बुजुर्गों ने इसका वर्जन किया है, क्योकि वे लोग हमे एक जीवित प्राणी की हैसियत से जीने देना नहीं चाहते।"

"सुन लो, प्रमोद बाबू। ऐसी है मेरी सहेली, छाया। सोच-समझकर उसकी तरफ कदम बढ़ाना। यह आसानी से किसी पुरुष का आधिपत्य स्वीकार करने वाली लड़की नहीं है।" अपनी बात पर कांता स्वय भी

खिलखिलाकर हस पडी थी। विवकानद भी काता की कई रोज बाद पहली बार हसते देखकर अपनी हसी रोक नही पाया। छाया कुछ देर तक उन दोनो को मुस्कराकर देखती रही फिर अचानक ही पूछ बैठी

"विजय बाबू को नही देख रही हू। क्या अब तक सो रहे हैं?"

"नही। वह कल शाम अपने गाव चले गए। दो तीन रोज बाद लौटेंगे।"

"अच्छा, तो अब चलती हू।" यह कहकर छाया अचानक ही उठ कर कोठरी से बाहर हो गयी। विवेकानन्द स्वगत भाषण के लहजे मे बोला

"विचित्र लडकी है।"

"इसकी यही विचित्रता मुझे प्यारी लगती है। यह उन लडकिया म नही है जो चुपचाप लीक पर चलने मे विश्वास रखती है। इसलिए, प्रमोद बाबू, होशियार रहना।"

"क्यो? मुझे होशियार रहने की क्या जरूरत पड़ी है?" विवकानन्द ने झेंपते हुए कहा।

काता ने स्नह सिक्त आखो से विवकानन्द को देखते हुए कहा

"तुम्हारे मन का भाव मुझसे छिपा हुआ नहीं है। कठिनाई यह है कि तुम भी, अपने भाई की तरह, अपने ही अस्तित्व को महत्त्व देत हो। छाया से पटरी तभी बैठेगी जब रेल की पटरी की तरह उसका अस्तित्व भी समानातर रूप से बना रहे। छाया पारस्परिकता और आदान प्रदान मे विश्वास करन वाली लडकी है।"

विवेकानन्द सचमुच ही चिता मे पड गया। वह मन ही मन कल्पना करने लग गया था कि एक न एक दिन छाया उसकी जीवन सगिनी बनेगी। यह बात वह एक दिन छाया से कह भी दना चाहता था। अवसर की प्रतीक्षा थी।

२०

सन्नाटे की रात प्रलय के पदचाप की तरह पूरे गाव पर छायी हुई थी। आकाश के तारो की झिलमिलाहट मे अधेरा कुछ अधिक भयानक हो उठा था। गाव मे पहरा देने वाला चौकीदार बाबू राघव सिंह के दालान के बरामदे मे आकर नगी फर्श पर ही लुढककर सो गया था। दालान के दक्षिण एकपलिया मे बधे बैल, गाय और भैंसें बैठी-बैठी ही सो रही थी। कही से कोई आवाज तक सुनाई नही पड रही थी। बेशक कभी कभी दालान के पीछे, पीपल के पुराने पेड के कोटरा मे बसी चिडिया अचानक ही बोल उठती और तब रात का सन्नाटा अत्यधिक भयकर हो उठता था।

विवेकानन्द एक दिन पहले शहर से आया था और दूसरी सुबह उसे वापस चला जाना था। वह चबूतरे पर गाढी निद्रा मे सो रहा था। राघव बाबू बरामदे मे रखी चौकी पर करवटें बदल रहे थे। पिछले कई रोज से उनकी तबीयत ठीक नही थी। सुबह विवेकानन्द ने स्टेशन से लाकर कुछ दवा दी थी, जिसे खाने के बाद शाम के आठ बजे से अब तक उन्हें बार-बार दिशा मदान जाने की इच्छा से कुछ फुरसत मिल गयी थी। लेकिन, पेट मे हलका हलका दद अभी फिर उभर आया था। काफी देर तक राघव सिंह अपने दद को दबाए चौकी पर लेटे रहे। अचानक उन्हे जोर की ठड लगी। उन्होने अपनी देह को चारो ओर से कम्बल मे लपट लिया। सावन मे इतने जोरो की ठड लगने का अथ यही था कि वह अत्यधिक दुबल हो गए है। थोडी देर तक कम्बल लपेटे रहने के बाद देह की गर्मी लौट आयी, लेकिन पेट का दद ज्यो का त्यों बना रहा। उनके स्वास्थ्य का यह हाल पिछले बैसाख से हुआ, जब वे गाव की एक बारात मे गए हुए थे। बटहल का सडा हुआ अचार बार-बार खाना पडा था।

राघव सिंह हिम्मत बटोरकर उठ बैठे और नीचे आगन मे आकर आकाश की ओर देखने लगे। वे तारा को देखकर समय का अदाजा लगाना चाहते थे। उत्तर-पूरब दिशा मे आकाश बादलो की सघनता के कारण काला और भयावना लग रहा था। राघव सिंह ने बरामदे की तरफ बढकर चौकीदार को हाथ के सहारे जगाया। वे नही चाहते थे कि विवेकानन्द की

नींद म बाधा पडे। चौकीदार तुरत उठकर खडा हो गया। राघव बाबू न बरामद की खिडकी पर रखा हुआ लोटा उठा लिया और चौकीदार से चलने का इशारा किया।

पश्चिम उत्तर की तरफ आम का बहुत बडा बगीचा था। उनके घर, दालान और बगीचे के बीच दूर दूर तक खेत फैले हुए थे। राघव सिंह चौकीदार को साथ लेकर बगीचे की तरफ बढ चले। चौकीदार ने रात के सन्नाटे को तोडने के ख्याल से पूछा

"क्यों मालिक, आज असमय ही दिशा मदान फरागत होने के लिए चल पडे। अभी तो साढे तीन चार घटा रात बाकी है।"

"कई दिन से आव आ रहा है। प्रमोद ने दवा लाकर दी तो पाच छ घटे आराम रहा। फिर पट मे मरोड शुरू हो गयी है।'

"मालिक मालिक मालिक वह देखिए सामने।" राघव सिंह अपनी बात पूरी भी नही कर पाए थे कि चौकीदार ने घबराहट के स्वर म कहा। राघव सिंह सामने का दृश्य देखकर चौक उठे। काफी दूर से दो आदमी भागते हुए इसी तरफ चले आ रहे थे। लग रहा था, जैसे अगला आदमी डरकर भाग रहा हो और पिछला आदमी उस पकडना चाह रहा हो। राघव सिंह बहुत निर्भीक आदमी थे। पक्के गहस्थ थे। कुदाली और कुल्हाडी पकडे पकडे उनकी जवानी बीत गयी थी। इस कारण, बुढाप म भी दधीचि की हड्डियो जितनी ताकत उनकी हड्डियो म थी।

सामने से आने वाले व्यक्ति उन्हीकी तरफ भागे आ रहे थे, इसलिए राघव सिंह तनकर खडे हो गए। चौकीदार की आखें अधेरे मे देख सकने म अभ्यस्त थी। उसने फुसफुसाहट के स्वर मे कहा

"मालिक, हत्ते मे जल्दी से उतर जाइए।"

राघव सिंह समझ नही पाए। खेत के किनारे किनारे दो हाथ चौडी और तीन हाथ गहरी खाई खुदी हुई थी। चौकीदार कहकर ही सतोष नही कर सका। वह जानता था कि राघव बाबू के हाथ म जल से भरा हुआ लोटा है, इसलिए उसे उनकी देह छूनी नही चाहिए किंतु सामने का दृश्य देखकर वह अपने आपपर नियत्रण नही रख पाया और राघव सिंह का हाथ पकडकर हत्ते मे कूद पडा। उसने फिर फुसफुसाहट के स्वर म कहा

"हसी की आवाज पहचान नही रहे हैं ?"

'अरे हा, यह तो रामेश्वर की हसी है। यह क्या हो रहा है ?"

"ही ही ही" की ध्वनि के साथ-साथ अब रामेश्वर सिंह के शब्द भी सुनाई पडने लगे, "अरे यह क्या कर रहा है ? ही ही ही, अरे जतना अरे, ही ही ओह आह ।" चौकीदार ने अपना मुह राघव सिंह के कान के पास ले जाकर कहा

"हुजूर, कुछ दाल में काला है। जतना किसी चीज से रामेश्वर बाबू पर हमला करता आ रहा है। हम लोग हत्ता होकर ही नीचे नीचे ही उस तरफ तेजी से बढ़ चलें तो शायद "

राघव सिंह तुरत समझ गए कि क्या करना है। खाई से ऊपर निकल आने पर जतना उन लोगा को देखकर शायद भाग खडा होता। इसलिए राघव सिंह हत्ता होकर ही उस तरफ तेजी से बढने लगे। उधर रामेश्वर सिंह की हसी गायब हो चुकी थी और वह चीख-पुकार मचा रहा था। अभी वे लोग केवल पद्रह बीस कदम दूर रहे होंगे कि रामेश्वर सिंह के मुह से भयकर चीख निकल पडी। राघव सिंह एक ही छलाग मे खाई के ऊपर जा पहुचे। उन्होने देखा कि रामेश्वर सिंह जमीन पर गिर पडा है और जतना बार बार अपने गडासे का प्रहार उस पर करता जा रहा है। तब तक जतना न भी सामने से आती दोनो आकृतियो को देख लिया था। वह अपना काम लगभग पूरा कर चुका था। इतमीनान के लिए उसने अपने गडासे का भरपूर प्रहार धराशायी रामेश्वर सिंह पर किया और उसके बाद ही उल्टे पाव भाग खडा हुआ।

राघव सिंह ने खेत मे बैठकर रामेश्वर सिंह को गौर से देखा। उसका शरीर निस्पन्द और निष्प्राण जमीन पर पडा हुआ था। राघव सिंह ने दो तीन बार आवाज दी, "अरे ओ, रामेश्वर सिंह, ओ रामेश्वर, रामेश्वर !" रामेश्वर सिंह के होठो को कापते हुए राघव सिंह ने अधेरे म भी देख लिया। वह समझ गए कि रामेश्वर सिंह या तो मर चुका है या मरने ही वाला है। वह उठ खडे हुए। उनके मुह से निकला

"आखिर, रामेश्वर सिंह का हिस्सा हडप लेने मे भुवनेश्वर सिंह कामयाब हो गए। हाय रे स्वार्थ ! खून खून मे भी इतनी भयानक खाई

खोद देता है।"

चौकीदार की कोई आवाज न सुनकर राघव सिंह ने बाइं तरफ मुडकर देखा। उसका कहीं अता-पता नही था। अचानक ही उनकी नजर दाहिनी तरफ के खेत में चली गयी। कुछ ही दूर पर चौकीदार न जतना को पकड रखा था और जतना अपने-आपको छुडाने की कोशिश मे लगा हुआ था। चौकीदार चीख चीखकर गाव वाला को पुकारता जा रहा था।

थोडी ही देर मे काफी लोग वहा आ इकट्ठे हुए। राघव सिंह को यह देखकर आश्चय हुआ कि वहा पहुचने वालो में सबसे पहले बाबू भुवनेश्वर सिंह थे। उनके साथ छाया की तरह लगा हुआ था, उनका मैनेजर शिव वदन।

जतना अपने-आपको छुडाने की कोशिश करता हुआ बोला

"हमने कुछ नही किया है। छोड दो हमको। देखिए सरकार, यह चौकीदार हमका फसाना चाहता है।" अतिम वाक्य जतना ने भुवनेश्वर सिंह की ओर देखते हुए कहा। भुवनेश्वर सिंह ने उसकी बातो को अनसुनी करके चौकीदार से आदेश के स्वर मे कहा

"जतना को पकडकर हवेली में ले चलो। देखो, यह भागने नही पाए। शिववदन दो तीन आदमियो को लेकर तुम भी चौकीदार के साथ हवेली पर चलो। दारोगा जी को तुरत बुलाना होगा। इस गाव में ऐसा अधेरे होते मैंन कभी नहीं देखा।"

राघव सिंह को काटो तो खून नही। उनको विश्वास था कि जतना न भुवनेश्वर सिंह के आदेश पर ही यह कुकम किया होगा। किंतु लोभ और मोह मनुष्य को कितना बबर बना देता है, इसका अनुमान राघव सिंह इस घटना के पहले नही लगा पाए थे। आज उनके समक्ष यह सत्य उजागर हो उठा कि राधा की हत्या मे रामेश्वर सिंह निष्कलक था। राधा की हत्या इसीलिए करवाई गयी थी ताकि इस आरोप से बचने के लिए रामेश्वर भागता फिरे और वाद मे अपने भाई का दासानुदास बनकर रह। जब उस षड्यत्र मे पूरी सफलता नही मिली तब भुवनेश्वर सिंह ने राह के काटे को सीधे ही निकाल फेंका।

शोर-गुल सुनकर विवेकानन्द भी वहा आ पहुचा था। तब तक आकाश

साफ हो चुका था। रामेश्वर सिंह की पीठ, बाहू और गरदन पर गडासे के कई गहरे घाव लगे हुए थे। घाव से काफी खून निकलकर खेत की मिट्टी मे जज्ब हो चुका था। वह भयानक और वीभत्स दृश्य देखकर गांव के लोग सन्न थे। भुवनेश्वर सिंह ने अपनी जानी-पहचानी मुद्रा मे राघव सिंह से कहा

"आइए, बाबू राघव सिंह, मुझपर तो मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा है। समझ मे नहीं आता कि क्या करू? मुझसे अब बर्दाश्त नही होता। फूल जैसी बहू के चले जाने का घाव अभी भरा भी नही था कि अब मेरे सगे भाई की हत्या कर दी गयी। हे राम! न जाने मेरे भाग्य मे क्या कुछ देखना-सुनना अभी बदा है! आइए, हवेली चलते हैं।"

"बाबू जी हवेली नही जाएगे। इनकी तबीयत ठीक नही है।" विवेकानन्द ने लगभग चीखते हुए कहा। गाव वालो की नजर विवेकानन्द की ओर मुड गयी। भुवनेश्वर सिंह ने भी विवेकानन्द को घूरकर देखा। किंतु वह उन आखों से डरने वाला नहीं था। उसने कहा, "आपकी कातर मुद्रा, चढी हुई भृकुटी का मुझपर कोई असर होने का नहीं है, जमींदार साहब। अपने पापकर्म मे अब मेरे पिता को घसीटने की कोशिश मत कीजिए।"

भुवनेश्वर सिंह ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से राघव सिंह की ओर देखा। उस दृष्टि में अचानक ही एक परिवर्तन आया। राघव सिंह को स्पष्ट लगा कि उस दृष्टि मे कातरता है, अनुनय विनय है। यद्यपि इस दुर्घटना के चलते वह अपने पेट की मरोड भूल चुके थे, फिर भी वह अपने बेटे का मन रखने के लिए बोले

"आप चलिए बाबू साहब, मैं अभी मैदान होकर आता हू।"

राघव सिंह वहा रुक नही पाए। अपना लोटा उठाकर पोखर की तरफ चले गए। वहा की भीड धीरे धीरे बढ़ती ही गयी।

दारोगा ने वहा पहुचकर कई लोगो के बयान लिए। लाश को पोस्ट-मार्टम के लिए मुजफ्फरपुर भेज दिया गया। जतना ने साफ इकार कर दिया कि रामेश्वर सिंह की हत्या म उसका कोई हाथ है। उसने बयान दिया

"हम तो रात भर टुनीलाल के ताड़ीखाने म बैठकर ताडी पीते रहे। मालूम भी नही हुआ कि रात है या सवेरा हो गया। टुनीलाल के यहा से लौट रहे थे तो हमको चौकीदार ने पकड़ लिया।"

टुनीलाल ने जतना के बयान का समर्थन कर दिया। चौकीदार ने भी कह दिया

"हमने जतना को खेत मे पकडा जरूर, मुदा यह नहीं देखा कि उसीने बाबू रामेश्वर सिंह पर हमला किया।"

एकमात्र चश्मदीद गवाह बच रहे बाबू राघव सिंह। वह अपने दालान मे लौटकर काम धधे मे लग गए। उन्होंने सोचा, हवेली से कोई बुलाने आएगा तो चले जाएगे। आश्चर्य की बात कि जमींदार साहब की ओर से तो कोई बुलाने आया ही नही, दारोगा ने भी उन्हें बुलाने की आवश्यकता नही समझी।

२१

कांता को अपने चाचा के यहा से आए लगभग ढाई महीने बीत चुके थे। वह जब से आयी थी, उसका अधिकतर समय बिस्तर पर लेटे-लेटे ही बीतता था। सुबह शाम दो व्यक्तियो का सक्षिप्त भोजन बना लेने के बाद उसमे कुछ करने की शक्ति नहीं रह जाती थी। बिस्तर पर लेटे-लेटे, कोई पुस्तक पढने या बीती बातो की स्मृति में बडी कठिनाई से समय गुजर पाता था।

अपनी बच्ची को गवाने के बाद कांता पति के घर में आ तो गयी थी, लेकिन वहा की दीवारें भी उसे काट खाने को दौडती थी। उठते-बैठते, सोते-जागते, नन्ही मुन्नी की सूरत कभी किलकारियां भरती हुई तो कभी रोती हुई उसकी आखो के आगे तैरने लग जाती थी। कांता चाहकर भी वह सूरत अपने मन मस्तिष्क से निकाल नही पाती थी। वह जितना ही प्रयत्न करती, उसकी मरी हुई बच्ची, विभिन्न रूप धर कर उसकी आखो के सामने आ उपस्थित होती थी। कांता को लगता, जैसे उसकी बच्ची

बिस्तर पर पडी, अपने छोटे छोटे हाथ पाव पटक पटककर रो रही हो। कभी लगता कि वह करवट लेकर बिस्तर से गिरने ही जा रही है। काता चौंककर उस तरफ गौर से देखती और तब बिस्तर का सूनापन उसके कलेजे को चीरता हुआ नीचे तक उतर आता।

इस मनोदशा से मुक्ति पाने के लिए काता ने जब अपने चाचा के यहा जाकर कुछ दिन वहीं रहने की इच्छा प्रकट की थी तो सुमन ने कहा था

"रिश्ते-नाते उपयोग पर निभर करते है। तुम बहुत बीमार हो। फिलहाल तुम्हारी कोई उपयोगिता वहा नही होगी। अच्छा तो यह होगा कि तुम गाव चली जाओ। मैं मा से कह दूगा। वे तुम्हारी देखभाल करेंगी।"

"क्या बात करते हो? अब तक किसने मेरा पालन पोपण किया? चाचा ने हम लोगो को कभी गैर नही समझा। आज मैं अस्वस्थ हू तो वह अपने घर मे रहने भी नही देंगे? एसा साचकर तुम उनके प्रति अ याय करते हो।"

"फिर बच्ची की बीमारी मे वह स्वय या उनके यहा से कोई भी देखने क्यो नही आया?"

"उ हें समय पर सूचना ही कहा दी गयी? फिर, चाचा जी कितने व्यस्त आदमी हैं। कितनी जिम्मेदारी है उनपर।"

सुमन जानता था कि चाचा जी के यहा काता का स्वागत नहीं होगा। सयुक्त परिवार मे असमय सदस्य के बाल-बच्चे अपने नाते रिश्तेदारो को अवाछनीय अतिथि से अधिक महत्त्व नही देते। फिर भी, सुमन ने चुप रहना ही बेहतर समझा। और जब कई रोज तक काता का आग्रह होता रहा तब उसने रिक्शा बुलाकर उसे बिदा कर दिया।

काता अपने चाचा के यहा पहुचने के चद रोज बाद ही ज्वर-ग्रस्त रहने लगी। उसे खासी भी आने लगी। आरम्भ मे पडौस के एक होमियोपैथ डाक्टर का हफ्ते भर इलाज चला। जब कोई स्वास्थ्य मे सुधार नहीं हुआ तो रघुवीर बाबू ने एक एल० एम० पी० डाक्टर के यहा काता को भेजकर उसके इलाज की व्यवस्था की। वह डाक्टर अपने को एल० एम० पी० कहता था, लेकिन चर्चा थी कि वह एल० एम० पी० पास नही है। बहरहाल, तीन हफ्ते तक उसका इलाज चलने के बाद भी काता के रोग मे कोई कमी नहीं

आयी। इस बीच, राजकुमारी देवी हर रोज अपने पति रघुवीर बाबू से बकझक करती रही।

राजकुमारी देवी को यह बात पसद नही थी कि उनके पति की गाढी कमाई का दो-चार पैसा भी भाई भतीजो पर खर्च हो। वह यह भी जानती थी कि काता को तपेदिक हो चुका है और तपेदिक छूत की बीमारी है। इसलिए राजकुमारी देवी दिन मे दो चार बार पति को उलाहना दे दिया करती, "पिछले साल गाव मे सात हजार का आम बिका। वे रुपये भी वहीं स्वाहा हो गए। चालीस मन गेहू मे से केवल पद्रह मन गेहू हम लोगो के हाथ लगा। उसके एवज मे होली के अवसर पर यहा से सबके लिए कपडे लत्ते भेजे गए।" व्याजातर से बार बार राजकुमारी देवी अपने पति को समझाने का प्रयत्न करती कि उनके भाई, भतीजे, भतीजी बडे बेईमान है।

यह सिलसिला चल ही रहा था कि उस एल० एम० पी० डाक्टर ने काता के रोग का निदान बताकर सबको चौंका दिया। उसने राय दी कि काता की आत मे कैंसर हो गया है। इसलिए इन्हे पटना मेडिकल कालेज के अस्पताल मे दाखिल करा देना चाहिए। राजकुमारी देवी को अच्छा मौका मिल गया। उसने अपने पति की कोठरी मे घुसकर युद्ध करने की भगिमा मे कहा

'यहा से अपनी भतीजी को अस्पताल मे दाखिल करवाइएगा तो रोज वहा बैठकर उसकी तीमारदारी कौन करेगा ? क्या मेरे बाल-बच्चे अपना काम धाम छोडकर रोज यहा से अस्पताल तक दौड भाग किया करेंगे ? आपको बहुत प्यार है अपने भाई से, तो यह काम आप खुद करिए। पूरे तीस दिन तक मैं और मेरे बच्चे आपकी भतीजी की सेवा सुश्रूषा मे एक पाव पर खडे रहे। अब हम लोगों से यह काम नही होगा। समझे ?"

उसी दिन सुमन को रघुवीर बाबू की एक चिट्ठी मिली थी जिसका आशय था, "काता को कैंसर बताया गया है। इसे अस्पताल मे दाखिल करवाना पडेगा। बार बार खून, पाखाना पेशाब की जाच होगी। जाच के लिए पेट खोलना भी पड सकता है। इसके लिए काफी भाग-दौड करनी पडेगी। आपको ही यह जिम्मेदारी लेनी चाहिए। इस जिम्मेदारी से भागना आपको शोभा नही देता है। मेरे यहा यह अतिरिक्त बोझ उठाने वाला कोई है नही।"

पत्र पढकर सुमन के होठो पर अजीब तरह की मुस्कराहट कापने लगी। उस मुस्कराहट मे व्यग्य के साथ साथ करुणा थी। वह उसी दिन काता को अपने यहा लिया ले आया। उसकी इच्छा हुई कि वह उसके चाचा का पत्र दिखा दे। लेकिन, काता का गिरा हुआ स्वास्थ्य देखकर वह मन मसोसकर रह गया।

दूसरे ही दिन, सुमन बडे अस्पताल के प्रसिद्ध चिकित्सक डा० दास के यहा काता को ले गया। डा० दास को वह अपने सपादक के माध्यम से जानता था। डा० दास ने जाच-पडताल करके बताया कि काता को कैंसर नही है। अब तक इसका गलत इलाज होता रहा है। इसका पिछला रोग तपेदिक पूरी तरह दूर नहीं हुआ था। वही थोडा उभर आया है।

काता का इलाज चल रहा था। उसके स्वास्थ्य मे काफी सुधार भी परिलक्षित हो रहा था। कठिनाई यह थी कि सुमन आवश्यकतानुसार पथ्य और विश्राम दे सकने की स्थिति मे नही था। ऐसी कोई महिला भी नहीं थी जो डेरे मे रहकर काता की देखभाल कर सके। सुमन की मा, सत्यभामा, गाव में अकेली थी। वह गृहस्थी का बोझ किसपर छोडकर पटना आती? नौकर-नौकरानी रखने की सामर्थ्य सुमन मे थी नही। इन्ही कारणो से काता के रोगमुक्त होने मे देर लग रही थी।

विवेकानन्द के आग्रह पर छाया आरम्भ मे हर रोज तीसरे पहर वहा आने लगी थी। दो हफ्ते तक यह क्रम चलता रहा कि तीसरे हफ्ते लगातार चार रोज तक छाया अन्तर्धान हो गयी। विवेकानन्द आशकित हो उठा। कही छाया अस्वस्थ तो नही हो गयी, यह विचार आते ही वह उसके घर जा पहुचा। सयोग से छाया बरामदे पर ही मिल गयी। वह एक कुर्सी पर बैठी गाधी जी की आत्मकथा पढ रही थी। विवेकानन्द को आते वह देख नही पायी थी। वह दबे पाव बरामदे पर चढता हुआ बोला

"गाधी जी अग्रेजी चिकित्सा के विरुद्ध थे। क्या इसीलिए तुमने भाभी के यहा जाना छोड दिया है?"

छाया चौंककर उठ खडी हुई। विवेकानन्द को देखकर जहा उसे हार्दिक प्रसन्नता हुई, वही वह सकोच के मारे सिमट सी गयी। अपनी मिश्रित

प्रतिक्रिया छिपाने के लिए उसने जल्दी से कुर्सी आगे खिसकाकर बैठने का इशारा करते हुए कहा, "मैं दूसरी कुर्सी ले आती हू।"

छाया तेजी के साथ घर के भीतर चली गयी। उसका यह व्यवहार विवेकानन्द को विचित्र लगा। इसके पहले जब कभी वह यहा आया था, उसे भीतर की बैठक मे आदरपूर्वक ले जाकर बिठाया गया था। पिछले चद दिनो मे छाया उसके बहुत करीब आ गयी थी। वह महसूस करने लगा था, जैसे दोनो की सृष्टि एक-दूसरे के पूरक रूप मे हुई हो। विचार वैषम्य अवश्य था, किंतु छाया मे समझने की क्षमता थी। छाया जब सुमन के यहा आने जाने लगी, विवेकानन्द को कई बार उससे एकात मे बातें करने का अवसर मिला। प्राय हर रोज शाम के समय वह छाया को पहुचाने के लिए उसके घर तक आ जाया करता था। पिछले हफ्ते की बातचीत की गम्भीरता उस समय विवेकानन्द की समझ मे नही आयी थी। अभी बरामदे पर बैठते ही उन सारी बातो का अर्थ उसके मस्तिष्क को कुरेदने लगा। छाया ने कहा था

"मालूम नहीं क्यो, पिताजी मुझसे इन दिनो तरह-तरह के सवाल पूछने लगे हैं।"

"क्या पूछते हैं ?"

'विजय बाबू के सबध मे। उनसे इधर भेंट होती है या नही ? कब से भेंट नहीं हुई है आदि आदि। जब मैंने कांता भाभी के रोग के बारे में बतलाया तो कुछ देर तक मुझे देखते रहे और बाद मे उठकर खडे होते हुए बोले, 'तुम्हे अपनी पढाई लिखाई पर ध्यान देना चाहिए। रोज रोज किसीके घर जाना, वह भी शाम के समय सामाजिक दृष्टि से उचित बात नहीं है। लोग उगलिया उठाने लगेंगे' और उन्होने मुझे यह भी समझाना चाहा कि ।"

छाया को सकोच करते देख विवेकानन्द ने बड़े प्यार से उसके कधे का स्पर्श करते हुए कहा था

"सकोच मत करो। मेरे तुम्हारे बीच दुराव छिपाव नहीं होनी चाहिए।'

'तुम्हारे विचार और गतिविधिया से पिता जी आशकित हो उठे हैं।

उनके अनुसार विजय बाबू सभ्य, समृद्ध और शालीन व्यक्ति ह । उन्ह सामाजिक ही नही, आर्थिक प्रतिष्ठा भी मिली हुई है । उनका भविष्य सुनिश्चित है, जबकि तुम्हारा भविष्य अनिश्चय के अधकार मे घिरा हुआ है ।"

"बात तो सही है । मेरी राह पर निश्चयात्मकता जैसी कोई स्थिति नही है । मैं स्वय नही जानता कि मेरा पडाव कहा कहा पडेगा । तुम क्या सोचती हो ?"

'अनिश्चय का दूसरा नाम भविष्य है । वतमान भी निश्चित नही है । इसलिए मैं कुछ सोचती ही नही ।"

"किंतु रोज रोज, वह भी शाम के समय, भाभी को देखने के लिए जाने वाली बात ।"

"मुझे इसकी चिन्ता नही है । दरअसल, चिंता है तो इस बात की कि पिता जी को विजय बाबू के प्रति इतनी जिज्ञासा क्यो है ? किसीका भविष्य पढ पाना असम्भव है । फिर भी, पिता जी विजय बाबू के सुनिश्चित भविष्य की ओर अत्यधिक आकर्षित क्यो हैं ?"

विवेकानन्द उस दिन ठठाकर हस पडा था वह तब तक छाया के बरामदे तक पहुच चुका था, इसलिए बात वही खत्म हो गयी थी । उस दिन विवेकानन्द न इन बातो को कोई महत्त्व नहीं दिया था । वह तो मान बैठा था कि छाया कधे से कधा मिलाकर जीवन सग्राम के पथ पर चलने मे उस का साथ देगी । बातचीत के सिलसिले मे छाया ने एक बार कहा भी

"पुरुष और नारी, प्रेम की स्थिति मे, एक-दूसरे पर समर्पित हो जाने के बावजूद समानातर चलते हैं । उनम तिरोहित होन का भाव प्रमुख नही होता । बल्कि, पूरक बने रहने की अपेक्षा ही जीवन को गतिशील रखती है । मेरा-तुम्हारा यह मिलन 'वाक्य और अथ के सम्पृक्त होने जैसा भले ही न लगे, किंतु गाडी के दो पहियो जैसा अवश्य है । एक दूसरे मे तिरोहित हो जाने का दशन वास्तव मे सामती दासता का सूचक है । प्रेम करन वाला अपने अस्तित्व की समग्रता के साथ ही सच्चे अर्थों मे प्रेम कर सकता है ।"

विवेकानन्द अधिक देर कुर्सी पर बैठा नही रह सका । वह उठकर वही चक्कर काटने लगा । छाया लगभग आठ-दस मिनट तक लौटकर नही आयी । विवेकानन्द कुछ कुछ समझने लग गया था कि वह पिछले कई रोज से भाभी

को देखने क्या नहीं आयी थी। वह जो कुछ समझ पाया था, यदि यही उसके न आने का कारण है तो अब उसका वहां प्रतीक्षा करना व्यर्थ था। वह असमंजस में पड़ा ही था कि छाया चाय का प्याला लिए आ पहुंची

"चक्कर क्या काट रहे हो ? बैठकर चाय पियो। मैं अभी आयी।"

छाया फिर भीतर चली गयी। उसने विवेकानन्द को इतना भी मौका नहीं दिया कि वह छाया के लिए 'धन्यवाद' कह सके। इस बार वह तुरंत ही दूसरी कुर्सी लेकर लौटी और उसके पास बैठती हुई बोली

"हां, अब कहो, भाभी जी कैसी हैं ?"

"सुधार हो रहा है। किंतु गति बहुत धीमी है। घर का काम काज भी तो करना पड़ता है। बच्ची की मृत्यु का दुख है सो अलग। लगता है, उनकी इच्छाशक्ति शिथिल पड़ गयी है । लेकिन तुमने आना क्यों बंद कर दिया ?"

'ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि दे दी है। यह बुद्धि उसे कभी-कभी अस्थिर बना देती है। मशीन या कोई जड़ पदार्थ अपने स्वभाव के अनुरूप काम करता चला जाता है। लेकिन, मनुष्य कभी कभी इस बुद्धि के चलते ऊहापोह में पड़ जाता है। सामर्थ्य और शक्ति हो तो वह विवेक के सहारे सही मार्ग पर चल पड़ता है, अन्यथा असहाय मनुष्य, विवशता में पड़कर, क्रोध का शिकार बन जाता है। फिलहाल मैं इसी स्थिति में पड़ी हूं।"

"पहेलियां मत बुझाओ। क्या पिता जी ने तुम्हें फिर कुछ कहा है ?"

"हां, कहने को उन्होंने बहुत कुछ कहा है कि विजय बाबू के घर बार बार आने जाने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि वे हमारे पड़ोसी हैं। तुम लोग यहां से बहुत दूर रहते हो, जहां रोज आने जाने का अर्थ है, बदनामी मोल लेना। सारांश यह कि विजय बाबू से मिलने जुलने में पिता जी कोई खतरा महसूस नहीं करते हैं। हालांकि जमींदार साहब के घर में शराब का दौर तो चलता ही है, रग्गू सरीखे शोहदे भी वहां आया जाया करते हैं।"

'इस ऊहापोह से निकलने का शुभ मुहूर्त कब है ?"

'कल कल चार बजे मैं वहां आऊंगी।"

विवेकानन्द को लगा, जैसे सिर पर लदा हुआ पहाड़ अचानक लुढ़क कर दूर जा गिरा हो। उसने चैन की सांस ली और जीवन में पहली बार,

मन ही मन वह अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त हो उठा। छाया का विद्रोही व्यक्तित्व विवेकानन्द को बहुत ही आकर्षक लगा। उसने महसूस किया कि वह छाया को किसी बात के लिए मजबूर नहीं कर सकता, उसके पिता भी नहीं। शायद वह स्वयं छाया को उसकी इच्छा के विपरीत कभी मोड नहीं पाएगा, विवेकानन्द ने सोचा और वह किंचित चिन्तित हो उठा।

पुरुष किसी नारी को क्या उसकी सहजता, समग्रता और सम्पूर्णता के साथ आज तक स्वीकार कर पाया है? यदि नहीं, तो क्यों? तिरोहित कर देने का दर्शन यदि सुन्दर है तो यह दोनों पक्षों पर लागू क्यों नहीं होता? एकांगी समर्पण को प्रेम की परिणति मानना कहां तक उचित है? और जो उचित नहीं है, उसकी दुहाई देते चलना क्या पुरुष-पक्ष के अहंकार का द्योतक नहीं है ? और जब अहंकार है, तब प्रेम कहां? विवेकानन्द इस तरह की बातें सोचता हुआ भाभी के घर लौट चला। भाभी का ध्यान आते ही उसे छाया का व्यक्तित्व सार्थक लगने लगा।

कांता से सुमन भाई को बहुत सारी अपेक्षाएं हैं। वह एक बच्ची को जन्म देकर लालन पालन नहीं कर सकी। उसे जीवित भी नहीं रख सकी। बीमार होकर वह घर का काम काज तो नहीं ही कर पाती है, अपने पति के लिए भी वह सर्वथा अनुपयोगी और अयोग्य सिद्ध हो चुकी है। वह एक बोझ बन गयी है, अपने पति के लिए देवर के लिए सभी बंधु बांधवों के लिए भी। ऐसा क्यों हुआ? कांता तो पढ़ी लिखी भी है। फिर सुमन जैसे संवेदनशील व्यक्ति तक को अपनी पत्नी से ही अपेक्षाएं क्यों हैं? और यदि अपेक्षा ही व्यक्तिगत संबंधों का आधार हो तो सुमन भाई यह क्यों नहीं सोच पाते कि कांता भी उनसे अपेक्षा करती होगी—ऐसे सुख और साधनों की अपेक्षा, जिन्हें जुटाने में प्रयत्नशील होते हुए भी सुमन असफल रहे । विवेकानन्द ज्यों ज्यों इस प्रश्न पर विचार करता, उसके सामने नये नये प्रश्न उभर आते थे ।

शक्ति रूप में पूजित होने के बावजूद नारी इतनी असहाय क्यों है? क्या उसका सौंदर्य और उसका आकर्षण ही उसकी शक्ति है, जिनके चलते उसे एकाधिकार की वस्तु बनाकर रख दिया गया है? जो एकाधिकार की वस्तु है, वही तो भोग की वस्तु बन जाती है। तभी इसके दान की परि-

पाटी चल पडी है। नारी के इद गिद मर्यादा के वृत्त मृत्यु की तरह बनत चले गए। यह मृतवत् नारी पर तुष्टि और पर-भोग की वस्तु बनकर पाथिया मे दज हुई ।

विवेकान द ने सुमन के डेरे पर पहुचकर देखा, काता बिस्तर पर अकेली पडी रो रही है। उसकी समझ मे नही आया कि बात क्या हुई ? उसने चौकी पर बैठते हुए पूछा

"क्या हो गया ? रो क्यो रही हो ? सुमन भाई प्रेस से लौटे नही क्या ?"

काता ने अश्रुपूरित आखो से विवेकान द की ओर देखा और अचानक ही वह झटपट उठकर उससे कुछ दूर हटकर बैठती हुई बोली

' तुम्हें मेरे पास नही बैठना चाहिए। मुझे छूत का रोग है।"

"पागल हो गयी हो, पहली बार के इलाज मे ही यह खतरा दूर हो चुका है। पास बैठने से तो क्या तुम्हारे साथ एक थाली म खाने से अब रोग लगने का भय नही है । भाई जी कहा हैं ?"

"यही कहीं होगे। मेरे पास क्यो बैठने लगे ? मैंने उनकी काव्य-सृष्टि और कल्पना-कामिनी ध्वस्त करके रख दिया है। उनके जीवन मे प्रवेश करते ही मैं अभिशाप बन गयी। उनके लिए मैं विपत्ति का पहाड हू ।" यह कहकर काता फिर फफककर रोने लगी। विवेकान द उठकर काता के पास पहुचा और उसने अपने हाथो से उसकी आखो के आसू पोछ दिए। काता की हिचकी बध गयी थी। विवेकान द ने सात्वना देने के विचार से कहा

"सुमन भाई घर मे पहली सतान होने के कारण सबकी आखो का तारा बन गए। उन्हें कभी किसी बात का अभाव नही होने दिया गया। पिता जी कज लेकर और जमीन बेचकर उन्हें लिखाते पढाते रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्हें कठोर यथाथ का अनुभव नही मिल सका। लेकिन तुम्हारा परिवेश तो इससे भिन्न रहा है। तुममे सघष करने की शक्ति होनी चाहिए। यह तय कर लो कि तुम्हें जीवित रहना है। तुम पढी लिखी हो। थोडी मेहनत करो तो अपने पाव पर आप खडी हो सकती हो। इसके लिए तुम्हें सबसे पहले रोग से मुक्त होना पडेगा।"

"यह रोग से मुक्त नही होगी, बल्कि मुझे मारकर खुद मर जाएगी ।"
सुमन ने उस कमरे मे प्रवेश करते हुए क्रुद्ध स्वर मे कहा। विवेकानन्द को अपने भाई की कठोर बात सुनकर आश्चर्य नही हुआ। उसने हसते हुए कहा

"कवि होकर आप ऐसी रुखडी भाषा का प्रयोग करते हैं? कवियो-साहित्यकारो का यह विभक्त व्यक्तित्व मेरी समझ मे नही आता।"

"तुम्हें अभी भोगना नही पडा है। जब जिम्मेदारी उठाओगे तब देखूगा।"

"क्या जिम्मेवारी उठा ली है, आपने? छोटी-सी गृहस्थी चलाना तो आपसे पार नही लगता?"

"गृहस्थी हो तो उसे चलाऊ। पहाड जैसा बोझ सिर पर उठाकर क्या कोई दो कदम भी चल सकता है।"

जानता हू कि काव्य में अतिशयोक्ति अनिवार्य है। किंतु जीवन मे केवल यथार्थ होता है जिसका सामना करने के लिए कल्पना और अतिशयोक्ति की नही, साहस और सकल्प की आवश्यकता होती है। आज से आप पहाड जैसे बोझ को फूल समझिए और प्रेस मे काम कीजिए या कविता लिखिए। भाभी के इलाज मे जो भी खर्च लगेगा, उसे पूरा करने की जिम्मेदारी मेरी है।"

सुमन हक्का बक्का होकर अपने भाई को देखता रह गया। कांता भी हतप्रभ-सी बैठी रही और विवेकानन्द दोनो को उसी स्थिति मे छोडकर कमरे से बाहर चला गया। अनजाने ही उसने सान्त्वना और सहारा देने के बहाने पति पत्नी के बीच नासमझी और भ्रम की दीवार खडी कर दी।

२२

सुमन और विवेकानन्द एक ही पिता की सतान होते हुए भी एक-दूसरे से भिन्न थे। विवेकानन्द ने जेठ की दुपहरी आम की गाछी मे गुजारी थी और सावन भादो की झडी खेत की मेडो या मचानो पर। वह भैंस की चरवाही से लेकर गाव के छोकरो को नेतृत्व देने तक का काम कर चुका

था। बिना मागे उसे माता पिता से भी कुछ नही मिलता था। इच्छित वस्तु न मिलने पर उसे उपलब्ध कर लेने की विद्या म भी वह स्वत ही निष्णात हो गया था।

परिवेश ने विवेकानन्द को इस तरह प्रशिक्षित कर दिया था कि वह स्वभाव से दृढ, विचार से उदार, और आचरण से व्यवहार कुशल बन गया था। बेशक, स्वभाव और विचार के चलते कभी कभी वह चन्द लोगो की आखो मे शूल बनकर चुभने लगता था। उसमे एक खूबी यह भी थी कि वह जिस काम को अपने हाथ मे लेता था, उसे सम्पन्न किये बगैर चैन नही लेता था। *स्वभावत वह साध्य की गरिमा का कायल बन गया था।* उसकी दृष्टि मे साधना एक महत्त्वहीन माध्यम-भर था।

बात ही बात मे विवेकानन्द ने कांता के इलाज की जिम्मेदारी अपन ऊपर ले ली थी, किन्तु उसे पूरी कैसे करे ? वह कमाता तो था नही। अपन भाई की तरह माता पिता पर निभर भी नही था। उसके मामा कालेज क शुल्क के अतिरिक्त उसे जेबखच के लिए दस रुपये माहवार देते थे। उसे कोई बुरी लत पडी नही थी। आधी से अधिक रकम हर महीने बच रहती थी। उमीमे से उसने कई बार क्रातिकारी सगठन को चन्दा दिया था। उसन घर जाकर देखा तो अब लगभग सवा सौ रुपये बच रहे थे। दवा की ही नहीं, कांता को अच्छे भोजन और फल की आवश्यकता थी। इसके लिए काफी रुपये की जरूरत थी। विवेकानन्द चिन्ता मे पड गया। अचानक उसके मस्तिष्क मे एक विचार आया और वह दूसरे दिन सुबह होते ही विजय के यहा जा पहुचा।

विजय उस समय सुबह की चाय पीने ही जा रहा था। उसके हाथ मे शराब की पूरी बोतल थी और सामने चाय की प्याली जो आधी से अधिक चाय से भरी हुई थी। विजय को सामने देखते ही वह सकपकाता हुआ बोला

"रात बहुत ज्यादा पी ली। अभी सिर और अग प्रत्यग मे इतना दर्द हो रहा है कि बडी मुश्किल स बिस्तर से उठकर कुर्सी पर बैठ पाया हू। नग्गू ने इलाज बताया है कि खुमारी दूर करने के लिए सुबह की चाय मे थोडी ह्विस्की डाल दो। कैसा मजेदार स्वाद हो जाता है चाय का। पियोगे ?"

"तुम पियो। मुझे तो चाय की भी आदत नहीं है।"

"फिर तो व्यर्थ ही बीसवीं सदी मे पैदा हुए। जिसे चाय की आदत नहीं, शराब का शौक नहीं और कोठे पर जाकर मुजरा सुनने की तमन्ना नहीं, वह स्वर्ग में रहकर भी नरक के सपने देखने वाला पागल है।"

विवेकानन्द ने मुस्कराकर विजय की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। उस वेधक दृष्टि को विजय झेल नहीं पाया। उसने आँखें झुका लीं। मन ही मन वह विवेकानन्द से डरता भी था। उसे देखते ही विजय के भीतर हीन भाव कुलबुलाने लगता था। खेल-कूद, पढने-लिखने और विचार व्यवहार मे वह विवेकानन्द के समक्ष टिक नहीं पाता था। इसलिए कहने को तो वह शराब और मुजरे की बात कह गया, लेकिन विवेकानन्द की प्रतिक्रिया की कल्पना करके वह आशंकित भी हो उठा। उसकी आशंका निर्मूल नहीं थी। विवेकानन्द ने खामोशी तोडते हुए कहा

"तुमने गाव मे देखा है कि किस तरह तपती दोपहरी मे सूखी और सख्त धरती को तोडने के लिए तुम्हारी रैयत खून को पसीना बना देती है। वही रैयत बीज डालने से लेकर फसल के पकने तक उस खेत मे रक्त और मास की आहुति देती है और उसके एवज मे उसे तुम क्या देते हो? चार आने रोज। उस चार आने मे वह तुम्हारे स्वर्ग का आनन्द ले या ।"

"अरे यार, तुम तो फिर अपने क्रातिकारी रूप मे आ खडे हुए। कभी कभी मन की शाति के लिए क्रातिकारी का यह नकाब उतार दिया करो।"

"नकाब मैंने पहन रखा है या तुमने? जो तुम हो, वैसा तुम नजर आना नहीं चाहते और जो नहीं हो, वैसा ही दीखने के लिए तरह-तरह के मुखौटो की तलाश मे परेशान रहते हो। जो सम्पत्ति किसी और की है, उसे अपना बताकर तुम अपने-आपको ही धोखा दे रहे हो। यह विश्वासघात तुम्हारे भीतर छिपे हुए आदमी को कचोटता है तो शराब और मुजरे की तरफ भागते हो। जतना जैसे तुम्हारे सैकडो रयत के लोग हैं जिनके बच्चो की देह पर धागा तक नहीं है। पेट भरने के लिए वे करमी का साग खाते हैं या तुम लोगो के खेत से पटसन की पत्तिया या मकई की बालें चुरा लाते हैं। वे लोग किस स्वर्ग म है? तुमने बीसवीं सदी का नाम ठीक ही

लिया। यह सदी तुम लागो के लिए नरक का द्वार खोलने वाली है। जा रैयत आज तुम्हारे पैरो तले दम तोड रही है, कल उसका जादू तुम्हारे ।"

"अमा यार, तुम तो अपना ही राग अलापते जा रहे हो। मैंने तो मजाक मे कहा था। बाबू जी इतना पैसा देत हैं, उसका क्या किया जाए? जब तक नरक का द्वार नही खुलता, तब तक स्वग का मजा ले लेने दो।"

"अच्छा विजय, यदि मैं शराब पीना शुरु कर दू ता क्या तुम रोज पिलाओगे?"

"हा। जितनी पियोगे, उतनी पिलाऊगा।"

"यदि मैं राज दो बोतल पी जाऊ?"

"हा, हा। तुम पी के तो दिखाओ।"

"एक शत पर। अभी से लेकर रात दस बजे तक मैं आज शराब पिऊगा और जितनी पी जाऊगा, उसे तीस मे गुणा करो। उसके जितने पसे बनेंगे उतने पैसे मैं आज ही रात मे तुमसे ले लूगा। बालो तैयार हो?"

विजय मन ही मन प्रसन्न हो उठा। आज तक विवेकानन्द अपने तेजस्वी चरित्र के चलते उसपर हावी रहा करता था। विजय ने सोचा, इसे जब शराब की लत लग जाएगी तब यह उसकी गिरफ्त में आ जायेगा। इसलिए उसने उत्साह मे आकर शराब की दो बोतलें मेज पर रख दी। विवेकानन्द ने उगलियो के इशारे से रुपया निकालकर रख देने को कहा। विजय ने आलमारी से सौ-सौ के छह नोट निकालकर मेज पर रख दिये और कहा

"यदि एक बूद भी शराब बच गयी तो छदाम नही दूगा और रोज तुम्हें मेरे साथ बैठकर शराब पीनी पडेगी, सो अलग।"

विवेकानन्द बाहर से ही नही भीतर से भी स्वस्थ और समथ व्यक्ति था। उसकी पाचनशक्ति अद्भुत थी। भरपेट खा लेन के बाद भी चालीस पतालीस चपातियां हसते हसते दबा लेना उसके बायें हाथ का खेल था। उसमे आत्मविश्वास की भी कमी नही थी। पूरी इच्छा शक्ति बटोरकर उसने शराब पीनी शुरू कर दी। विजय को मजा आन लगा। वह भी झट पट तैयार हो गया और अलग से एक बोतल लेकर बैठ गया। भुनी हुई कलेजी सीक कबाब और भुनी हुई मुर्गी प्लेटा मे सजाकर रख दी गयी।

घटे भर बाद विजय को पूरा नशा चढ गया। वह जोश मे आकर बोलने

लगा

"तुम तुम मेरे भाई धत्तेरे की, मैं भी कैसा बेवकूफ हू। मेरा तो अपना कोई भाई है ही नही। बात यह है कि तुम तुम्हे मैं दिली दोस्त मानता हू। तुम्हारे लिए कुछ सब कुछ कर सकता हू। तुम तुम तुम दो बोतल दो बोतल से ज्यादा जितना पेग पियोगे उतना सौ रुपया और दूगा। कुछ नही पियो तब भी दूगा।"

विवेकानन्द ने कभी शराब छुई भी नही थी। अपनी भाभी के लिए सीधे रुपया मागना उसे अच्छा नही लगा। आज तक उसने विजय के सामने कभी हाथ फैलाया भी नही था। कई बार विजय ने उसे शराब पिलाने की कोशिश की थी, प्रलोभन भी दिये थे, लेकिन विवेकानन्द मानता था कि शराब पीना अय्याशी है। वह विजय की कमजोरी जानता था और उसका लक्ष्य भी। इसीलिए उसने रुपया हस्तगत करने के लिए यह आसान रास्ता चुना था।

एक घण्टे के भीतर विवेकानन्द ने आधी बोतल साफ कर दी थी। शुरू मे शराब का स्वाद बहुत ही खराब लगा। कठ से लेकर नाभि-स्थल तक जलन महसूस हुई। पूरी देह सिहर गयी। आधी बोतल होते होते विवेकानन्द को लगा कि उसकी आखो के आगे झिलमिल चादर उडने लगी है। वह सभलकर बठ गया और पाच छ बार जोर से अपनी आखें बन्द की और मन को स्थिर करके आहिस्ता आहिस्ता फिर पीना शुरू कर दिया।

दूसरा घटा बीतते-बीतते विजय नशे म पूरी तरह धुत हो गया। वह लडखडाते पाव से आलमारी तक गया और मुट्ठिया मे नोट समेटकर फिर गिरते-पडते मेज के पास पहुचा। उसने जबरदस्ती अपनी मुट्ठिया के नोट विवेकानन्द के कुरते की जेब मे डाल दिये।

सूर्यास्त के कुछ पहले ही दोनो बोतल विवेका के पेट मे खाली हो चुकी थी। इस बीच उसने बाथरूम मे जाकर तीन बार स्नान किया और एक बार उलटी की। भीतर से वह पूरी तरह प्रबुद्ध शुद्ध बना रहा। उल्टी के बाद बेशक आध घटे तक उसके अग प्रत्यग शिथिल बने रहे। किंतु अपने उद्देश्य का ध्यान आते ही वह सभलकर बैठ गया था।

दोनो बोतल खाली हो जाने के बाद विवेकानन्द ने विजय की बोतल

से भी शराब लेकर पीना शुरू कर दिया था। रात उतर आयी। रसोइये ने उसी कमरे मे खाना लगा दिया। विवेकानन्द को इतना ही होश रहा कि वह रसोइये की आवाज सुन सके, लेकिन, रसोइये की बातो का कोई अर्थ वह समझ नही पाया। उसने प्रयत्नपूर्वक जानना चाहा कि उस कमरे मे कौन आता है। उसे लगता कि कोई जाना पहचाना चेहरा उसपर झुका हुआ है। कभी लगता, कि कोई उसे सहारा देकर कही लिये जा रहा है। अचानक उसका सिर अत्यधिक वेग के साथ चक्कर काटने लग जाता था। तभी वह लडखडाकर गिरने लगता कि कोई उसे थाम लेता था। अन्त में उसने महसूस किया कि उसके पेट के भीतर से कठ तक कोई चीज खौलती-उमडती हुई चली आ रही है। किसीने उसे सहारा दिया और कुछ देर बाद उसकी आत मुह और आखो की राह बाहर निकलती जान पडी। फिर उसे होश नही रहा।

होश आने पर विवेकानन्द ने देखा, खिडकी से धूप की तीखी रोशनी कमरे म पड रही है। उसने सिर घुमाया तो घबराकर उठ बैठा। पास की कुर्सी पर छाया बैठी उसे निहार रही थी। उसकी आखो मे वेदना और आक्रोश की मिली जुली छाया थी। विवेकानन्द को इधर कई वर्षो से कभी घबराहट का एहसास नही हुआ था। उसे लगा, जैसे वह चोरी करते पकडा गया हो। वह कुछ कहने ही जा रहा था कि छाया खडी हो गयी और बोली

"मुझे उम्मीद नही थी कि तुम्हें भी रईसो का यह शौक कभी निगल पायेगा। छि , इसी चरित्र के बूते पर स्वाधीनता-सग्राम का सिपाही बनने चले थे।"

विवेकानन्द कुछ बोले बोले तब तक छाया तेज कदमो से कमरे से बाहर जा चुकी थी। विवेका निष्प्रभ होकर कुर्सी पर बैठा रह गया। भयकर झझावात के गुजर जाने पर जो हालत हल्के छप्पर वाली झोपडी मे बैठे गरीब की होती है, वैसी ही हालत मे विवेका ने अपने-आपको महसूस किया। उसने सिर घुमाकर पीछे देखा तो उसकी जान मे जान आयी। विजय अपने बायें हाथ के सहारे पलग से ओठगा हुआ उसे देख-देखकर मुस्करा रहा था। विवेकानन्द से आखें मिलने पर विजय ने कहा

"तुम जीते, मैं हारा। एक दिन मे ढाई बोतल। अरे बाप रे! महीने-भर का खर्चा तुम्हारी शराब मे ही चला जाएगा। ना बाबा, ना। जितना तुम्हें दे चुका हू, वह सब ले जाओ। मैंने कान पकड लिया।"

"सो तो ठीक है। छाया को कैसे समझाया जाए।"

"अरे छोडो, छाया का चक्कर। तुम्हें मैं रोशनी से या असली स्वरूप से मिला दूगा। बुजुर्गों ने छाया के पीछे भागने से मना किया है।"

विवेकानन्द एक बाजी जीतकर दूसरी बाजी हारने की स्थिति मे जा पहुचा था। लेकिन, अभी वह जीती हुई बाजी के परिणाम की कल्पना मे ही आनन्द मग्न था। रसोइये से पूछताछ करने पर उसे मालूम हो गया कि छाया रात १२ बजे से उन लोगो के पास थी। उसीने उसे बाथ रूम ले जाकर दुबारा उल्टी करवाई थी और मुह हाथ धो दिया था। बेहोशी मे वह बार-बार छाया का नाम सुनकर शरमा जाता था। रात में छाया ने रसोइये को, सोने के लिए, कमरे से बाहर भेज दिया था। यह सब सुन-कर विवेका को बडी ग्लानि हुई। इसमे उसने अपनी दुबलता का एहसास किया।

काता कोठरी के दरवाजे का सहारा लिए खडी थी। उसकी आखें सूजी हुई थी। वह दरवाजे के बाहर गलियारे की ओर टकटकी बाधे देख रही थी। विवेकानन्द को आते देखकर वह कोठरी के भीतर चली गयी। उसके वहा पहुचते ही कांता चौकी पर बैठ गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। विवेकानन्द ने सोचा कि कही इन्हें भी तो शराब वाली बात मालूम नही हो गयी? उसने पूछा, "भाई जी कहा हैं? क्यो रोये जा रही हो? एक तरफ इलाज चल रहा है और दूसरी तरफ रो रोकर जान देने पर तुली हो। यह क्या ठीक है?"

"मुझे इलाज नही करवाना है। ऐसे जीवन से तो मर जाना बेहतर है।"

"जिस मृत्यु का तुम्हें अनुभव नही है, उसके बारे मे कैसे कह सकती हो कि वह बेहतर है या बदतर है?"

"जीवन का अनुभव तो हो रहा है।" काता ने रानी आखा से विवेका-नन्द को देखते हुए कहा। वह उन आखों को देखकर पसीज उठा। उसकी

इच्छा हुई कि वह कांता को प्यार से बगल में बिठा ले और कहे, "जीवन फूलों की माला की तरह सुंदर, सुगंधमय और मोहक है। जानती हो, ऐसा क्या है? क्योंकि फूलों को सुई से छेदकर धागे में पिरोया गया है। बिना दुख के सुख की कोई महत्ता नहीं।" लेकिन उसने कुछ कहने की बजाय कांता के आंसू पोंछ देना ही काफी समझा और कहा

"उस अनुभव में दुख ही दुख नहीं है। अपने-आपसे पूछोगी तो यही जवाब मिलेगा। जब अतीत में सुख था तब भविष्य में भी सुख का सूरज उगेगा। वर्तमान का क्या? यह तो पल पल परिवर्तनशील है। अब बताओ कि भाई जी कहां गए?"

"मालूम नहीं। नाराज होकर कहीं चले गए हैं।"

"प्रेस तो नहीं चले गए?"

"नहीं, आज साप्ताहिक अवकाश है।"

विवेकानन्द को अपने भाई पर क्रोध हो आया। ऐसी सुंदर पत्नी का, जो तन मन से उनपर समर्पित है, कवि हृदय होकर भी नहीं समझ पाते हैं। कभी कांता के प्रेम में दीवाने बने हुए थे। मां से जाकर कहा था कि शादी करूंगा तो इस लड़की से, अन्यथा कुंवारा रह जाऊंगा। इसके अभाव में जीवन बेकार हो जाएगा। और अब शायद ही कोई दिन ऐसा गुजरता हो जिस दिन वह अपनी पत्नी का जीवन नारकीय न बना देते हों। फूल की पखुरी जैसी कांता की देहयष्टि थी। आज कंकाल-मात्र रह गयी है। सामर्थ्य नहीं थी तो शादी क्यों की?

विवेकानन्द को अचानक छाया की याद हो आयी। क्या वह छाया के साथ ऐसा क्रूर व्यवहार कर पाएगा? आज छाया की मुख मुद्रा कैसी बनी हुई थी? शराब बुरी चीज है। वह जानता था कि कोई पत्नी अपने पति को शराबी के रूप में बर्दाश्त नहीं कर सकती। नशा मनुष्य को एकांगी बना देता है। वह नशे के पीछे होश हवास ही नहीं, स्वाभिमान और धर्म ईमान तक गंवा बैठता है। नशे भी किसी वस्तु के प्रति अतिशय प्रेम की ही एक गति है। भला कोई पत्नी कैसे स्वीकार करेगी कि उसका पति किसी अन्य के अतिशय प्रेम में पड़े। किंतु छाया यह तो पूछ सकती थी कि उसने किन परिस्थितियों में शराब पी और क्यों पी? वह अविश्वास में पड़ गयी।

जहा अविश्वास हो, शका हो, वहा शाति कहा ? क्या सुमन भाई भी विश्वास खो चुके हैं ? या काता में ही शका घर कर गयी है ? यह सब सोचते-सोचते विवेकानन्द भूल गया कि वह तटस्थ दर्शक है। भाई के प्रति क्रोधावेष्टित वह था ही, छाया की याद ने उसे वर्तमान स्थिति का भागीदार बना दिया। वह आवेश मे बोल उठा

"ऐसा क्यो होता है ? जब-तब देखता हू कि तुम दोनो एक दूसरे के प्रति महाभारत की मुद्रा म खडे रहते हो। सदभाव और समझदारी के अभाव मे ही ऐसा होता है। और तुम लोग भूल जाते हो कि मनुष्य के पास केवल भावना ही नही, तर्क भी है, विचार भी है, कारण और क्रिया का सबध भी है। जो कुछ घटित होते देखती हो, उसे भावना की तराजू पर तौलने बैठ जाती हो।"

काता ने आश्चर्यचकित होकर विवेकानन्द की ओर देखा। उसे क्षण-भर के लिए विश्वास नही हुआ कि सामने बैठा हुआ व्यक्ति उसका देवर ही है। वह अपने देवर के आवेश का कारण समझ नही पायी और अविश्वास के स्वर मे बोली

"तुम भी मुझे ही दोष देते हो ? मुझे तपदिक ने ग्रस लिया, इसमे मेरा क्या दोष ? मैं फूल जैसी नन्ही मुन्नी बच्ची को क्या जान बूझकर गवा बैठी ? बी० ए० पास करके नौकरी नही की और तुम्हारे भाई के प्रति समर्पित हो गयी, यह क्या मैंने गलत काम किया ? इस हालत मे भी मैं उनके लिए खाना बनाकर रखती हू, चौका-बर्तन कर लेती हू। फिर भी तुम्हारे भाई को सतोष नही। मालूम नही, वे क्या चाहते है। मैं तो समझ नही पाती। इसीलिए चाहती हू कि यह निरर्थक शरीर छूट जाए ताकि तुम्हारे भाई को मुक्ति मिल जाए। लेकिन तुम तो मुझपर विश्वास करो। मैंने जान बूझकर ऐसा कुछ नही किया है, जिससे उनका जी दुखे और न मैं किसी गलतफहमी की शिकार हू।"

'मुझे माफ कर देना भाभी। मैं आपे मे नही था। तुम्हारी स्थिति मे मैं अपनी परछाइ देख गया था। इन दिनो मेरा मन भी चचल हो उठा है। इसीलिए आवेश मे आ गया। लेकिन मेरे आवेश का कारण तुम नहीं हो।"

यह कहकर विवेकानन्द ने पिछली सुबह से लेकर आज सुबह तक पूरी घटना

कांता को सुना दी और नोटों का पुलिंदा देते हुए कहा, "यह लो, तेरह सौ रुपये हैं। इससे तुम्हारा इलाज हो जाएगा।"

"मेरी खातिर तुम्हें जान की बाजी लगाकर शराब पीनी पड़ी। ऐसा खराब काम करना पड़ा! धिक्कार है मुझे! छी, कहां से यहां आ पहुंची मैं भी!"

"कोई काम अपने आपमें न अच्छा है, न खराब। देखना चाहिए कि काम करने वाले की भावना क्या है? मैं तो अच्छी भावना या अच्छे उद्देश्य के लिए हत्या तक कर सकता हूं। अच्छा, मैं चलकर देखता हूं कि भाई जी गए कहां? उन्हें यह मत बतलाना कि मैंने कहां से और कितने रुपये तुम्हें दिए।"

विवेकानन्द के चले जाने के बाद कांता चिंता में पड़ गयी। पिछली रात विवेकानन्द को लेकर ही पति-पत्नी में वाक् युद्ध शुरू हुआ, जिसकी परिणति सुमन के रूठकर चले जाने में हुई। सुमन ने खाना खाते-खाते व्यंग्य कर दिया था

"चलो, एक चिंता से मुक्ति मिल गयी। तुम्हारे इलाज का जिम्मा मेरे क्रांतिकारी भाई ने ले लिया। अब तो तुम भी मेरी चिंता नहीं करोगी।"

"तुम हीनभाव से ग्रस्त हो गए हो। मेरा इलाज कोई करवा दे, लेकिन पत्नी तो तुम्हारी रहूंगी।' कांता ने कहा था। सुमन ने छूटते ही जवाब दिया, 'जिस रिश्ते के पीछे दायित्वबोध न हो, वह रिश्ता सतही हुआ करता है।'

"तुम कवि हो न! तुम्हारी आंखें किसी वस्तु को नहीं देखतीं, बल्कि उसके पार शून्य में पहुंच जाती हैं, जहां तक तरह-तरह की काल्पनिक तस्वीरें बनने लगती हैं।"

बातों-बातों में ही कांता के चाचा चाची का जिक्र आ गया था। सुमन के मन में शुरू से ही उनके प्रति मैल था। कांता के चाचा ने उसे जीवन में सुव्यवस्थित करने के लिए थोड़ा भी योग नहीं दिया। कांता संवेदनशील, भावुक और स्वाभिमानिनी थी। वह अपने पति से तो बहुत सारी अपेक्षाएं रखती थी, लेकिन अपने माता पिता या चाचा चाची के सामने अभाव का

आभास तक नही होने देना चाहती थी। वह इतने से ही चाची चाचा के प्रति अनुगृहीत थी कि उन्होंने इतने वर्षों अपने साथ रखकर उसे बी० ए० तक पढा दिया था। उनका यह एहसान अटूट श्रद्धा बनकर काता के दिल-दिमाग मे पैदा हुआ था। इसीलिए उन लोगो की चर्चा होते ही वह चोट खायी सर्पिणी की तरह फुत्कार कर उठी थी। काता के व्यक्तित्व की यह विचित्रता ही उसके चरित्र की खूबसूरती थी। सुमन सचमुच हीनभाव से ग्रस्त होने के कारण काता के उज्ज्वल चरित्र को समझ नही पाता था।

सुमन इधर अपने छोटे भाई की तेजस्विता, अक्खडपन और ओजस्वी व्यक्तित्व के प्रति भी हीनभाव से ग्रस्त रहने लगा था। वह जानता था कि विवेकानन्द खामखाह रुआब जमाने के लिए जिम्मेदारी ले बैठा है, लेकिन उसका निर्वाह नही कर पाएगा। ये सब बातें ही कुछ व्यग्य, कुछ अविश्वास का रूप लेते लेते आरोप प्रत्यारोप मे बदल गयी थी। विवेकानन्द इन बाता से अनजान सुमन को ढढ़ने के लिए निकल पडा।

२३

कभी कभी अच्छी नीयत से किया गया काम भी घातक स्थिति पैदा कर देता है। विवेकानन्द न भाई और भाभी के प्रेम के वशीभूत होकर काता के इलाज के लिए रुपये की व्यवस्था कर दी। काता ने विवेका का केवल मन रखने के लिए रुपया स्वीकार कर लिया था। किंतु उसने मन का देवता कई रोज तक रोता रह गया था। उसने कल्पना भी नही की थी कि उसके पढे लिखे पति के साथ भाग्य ऐसा खिलवाड करेगा। वह सोचकर भी दुखी थी, कि इस घटना से सुमन अपने आपको और अधिक छोटा समझने लगेगा। वह बेचारी आखिर करती तो क्या करती ? उसने रुपये चुपचाप छिपाकर रख दिए। सुमन पूववत दवा खरीदकर लाता रहा।

काता के व्यवहार मे इधर अभूतपूव परिवतन आ गया था। सुमन जब खीझकर व्यग्य भी कर बैठता तो वह खामोशी के साथ बर्दाश्त कर जाती। यदि वह नाराजगी मे कुछ कह बैठता तो हसकर टाल जाती। यदि किसी

कारणवश वह देर से घर आता तो भी काता बडे प्यार से उसका स्वागत करती थी। स्वय उठकर उसका कुरता टाग देती थी और खाने के बाद अपना दु ख दद दिल मे ही दबाकर कभी कहती, "कितने दुबले हो गए हो। मुझे तो कुछ नही होगा। लेकिन अगर तुम्हें कुछ हो गया तो मैं क्या करूगी ?" कभी कहती, 'कब तक प्रेस से घर और घर से प्रेस करते रहोगे ? कभी जाकर सिनेमा देख आओ। इधर तुम कवि गोष्ठियो मे भी नही जाते। तुम्हारे जीवन मे मैं क्या आयी, तुम्हारे भविष्य को ग्रहण लग गया।"

सुमन पर काता के इस आकस्मिक परिवतन का विचित्र प्रभाव पडा। उसके व्यग्य का उत्तर काता दे देती थी, या उससे झगड पडती थी तो सुमन भी लड झगडकर शात हो जाया करता था। उसके मन के धुए को बाहर निकलने का माग मिल जाया करता था। लडते झगडते समय, सुमन के अह को तुष्टि मिलती थी। अब लगाई झगडा बद हो गया तो सुमन की हीनभावना कातरता मे बदल गयी। वह अपने आपको अपराधी मानने लगा। वे सारी बातें उसे कचोटने लगी, जो बातें शादी से पहले उसन काता से कही थी। कैसा स्वप्न लोक वह उस भोली भाली लडकी को दिखाया करता था। उसने अपने आपको एक महान बुद्धिजीवी और बडे और समृद्ध काश्तकार के बेटे के रूप म काता के सामन पश किया। उसकी वह पुरानी छवि मटियामेट हाकर उसके वतमान चेहरे पर कालिख की तरह पुत गयी।

सुमन का खाने पीने से अरुचि हा गयी। उसकी आखो मे उदासी की निरतरता सघन और शाश्वत बन गयी। वह अपने आपको असहाय, अस मथ और सवथा अयोग्य समझने लगा।

काता के आकस्मिक परिवतन ने जहा उसे समर्पित भाव से भर दिया, वही सुमन के जीवन मे आए परिवतन ने काता को नितात एकाकीपन के गहन अधकार मे ढकेल दिया। सुमन दिन-ब दिन दुबल होता गया। एक दिन उसने अचानक ही खाट पकड ली।

सुमन तपेदिक का शिकार हो गया। काता पर विपत्ति का पहाड टूट पडा। वह समझ गयी कि अब ससार मे उसके लिए चारो तरफ अधेरा ही

अधेरा है। सुमन इधर आकर काता से अत्यधिक सम्पृक्त हो गया था। यह भी अनहोनी बात हुई। सम्पृक्तता के नाम पर जगमाता पार्वती से लेकर आधुनिक युग की रेखा और उषा तक नारियाँ ही, नर से सम्पृक्त होती रही हैं और नर का व्यक्तित्व असम्पृक्त-अक्षुण्ण बना रहता आया है। सुमन को अब एहसास होने लगा कि प्यार का दूसरा नाम समर्पण है। समर्पण स्वयं का क्षय है, अहंकार की इति है, इसलिए मुक्ति भी इसीमें है।

विवेकानन्द के जिस रुपये को काता ने रख दिया था, उसीमें से निकाल-निकालकर वह दवा लाने के लिए विवेका को देती रही। सुमन ने काता और विवेका दोनों को शपथ दिला दी थी कि उसकी बीमारी की बात माँ और बाबू जी को न बतायी जाए। उसके चलते, घर पर पहले ही कर्ज हो चुका था और जमीन भी बिक चुकी थी। यह ग्लानि उसके पेट में अल्सर बनकर बहुत पहले से पनपती आ रही थी।

सुमन के अस्वस्थ होते ही, न जाने कैसे काता के शरीर में दैवी शक्ति आ गयी। विवेकानन्द अपनी भाभी के नये रूप को देखकर चकित रह गया। वह प्रतिदिन तीन-चार घण्टे के लिए वहाँ आता था और दवा दारू, भोजन पथ्य आदि की व्यवस्था करके चला जाता था। कभी कभी वह रात में वहीं ठहर जाया करता था। नये युग के क्रांतिपुत्रों की संगति में रहते रहते वह तार्किक और काफी हद तक नास्तिक बन चुका था। किंतु काता के स्वास्थ्य और सौंदर्य में अलौकिक वृद्धि देखकर उसके विचारों को धक्का लगा। जिस कोमलांगिनी पर तपेदिक ने दो बार आक्रमण किया हो और चन्द रोज पहले तक जो बिस्तर पकड़े रही हो, वह किस रहस्यमय शक्ति से प्रेरित होकर इतनी स्फूर्तिमयी बन गयी! विवेकानन्द कभी कभी अचानक ही काता की ओर ध्यानपूर्वक देखने लगता कि कहीं उसके मुखमण्डल पर थकान या रोग से प्रताड़ित कष्ट की रेखाएँ तो नहीं हैं! और उसे बार बार निराश होना पड़ता था।

कुछ दिनों तक सुमन को यह भी पूछने का होश नहीं रहा कि काता और विवेकानन्द दवा के लिए पैसे कहाँ से लाते हैं? चौथे हफ्ते से उसके स्वास्थ्य में काफी सुधार आ गया। ज्वर का आना बंद हो गया। वह खाट

के पास रखी कुर्सी पर बैठा हुआ था। कांता बिस्तर ठीक कर रही थी। डाक्टर ने कहा था कि बिस्तर आदि की नियमित रूप से सफाई होनी चाहिए। कांता हर रोज स्वयं चादरें और तकिये के गिलाफ धोती थी और उसपर स्त्री करती थी। सुमन प्यार भरी नजरों से कांता को देख देखकर आनंदातिरेक से अभिभूत हो रहा था। उसी भाव के वशीभूत होकर उसने कहा

"मेरी दवा और डाक्टर की फीस में काफी कर्ज चढ़ गया होगा। स्वस्थ होने पर अब मैं कोई दूसरी नौकरी ढूंढने का प्रयत्न करूंगा। मैं उसके पीछे पड़ जाऊंगा तो अवश्य सफलता मिलेगी। क्यों, कितना कर्ज चढ़ गया होगा?"

'एक पैसा भी नहीं।" इतना कहकर कांता ने अपनी जीभ को दांतों तले दबा लिया। वह बिस्तर बिछाने में व्यस्त थी। कर्ज की चिंता से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, यह सोचकर कांता ने वैसा जवाब दे दिया। लेकिन जवाब देने के बाद उसे अपनी भूल मालूम हुई। वह सुमन के स्वभाव से सुपरिचित थी। सुमन ने चौंककर पूछा

"कर्ज नहीं हुआ। फिर पैसे आए कहां से? क्या गांव से मंगवाए हैं?"

"नहीं तुमने मना जो कर दिया था।"

"तब?"

"तुम बिस्तर पर आकर चुपचाप सो जाओ। अच्छे हो जाओगे तो बतला दूंगी।"

सुमन आज्ञाकारी बालक की तरह बिस्तर पर आकर सो गया। कांता घर के काम-काज करती रही। लेकिन, उसका ध्यान सुमन की ओर ही था। कांता ने गौर कर लिया था कि पैसे की बात सुनते ही सुमन का चेहरा अत्यधिक कातर हो गया था। कुछ ही देर बाद वह सुमन की आंखों से अश्रुधार बहते देखकर घबरायी हुई उसके पास जा बैठी।

"यह क्या? तुम रो रहे हो?"

'तुमने मुझसे छिपाया। मेरे चलते तुम्हें कर्ज लेना पड़ा। यह अधम जीवन जीकर मैं क्या करूं? विवेका ठीक कहता है। गुलामी से बड़ा पाप नहीं है। वही ठीक रास्ते पर है, मैं गलत रास्ते पर था।"

"लेकिन, मैंने कर्ज नहीं लिया है। ये प्रमोद बाबू ने मुझे, मेरी बीमारी के इलाज के लिए दूसरे ही दिन लाकर दे दिए थे, जिस दिन उन्होंने मेरे इलाज की जिम्मेदारी लेने की बात कही थी। मैंने तुम्हारे जीवन काल में दूसरे का पैसा छूना उचित नहीं समझा, इसलिए उसे छिपाकर रख दिया था ताकि प्रमोद बाबू को बुरा न लगे।"

"विवेका कहां से पैसे लाया ? वह तो कमाता नहीं है ?"

"मैंने विजय से बाजी जीती थी। पूरा किस्सा बाद में कहूंगा। अभी आपको इन पचड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं है।" विवेकानन्द ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा। सुमन के होठों पर विचित्र प्रकार की मुस्कराहट रह रहकर कांपने लगी। वह खामोश था, लेकिन उसकी कांपती हुई मुस्कराहट चीख चीखकर कह रही थी कि उसे अपार कष्ट हो रहा है, कि उसकी पीड़ा का अन्त नहीं है, कि उसकी वेदना महासागर जितनी व्यापक और गहरी है, कि वह निस्सीम आकाश के झंझावात में कटी पतंग की तरह धक्के खाता फिर रहा है।

उस मूक मुस्कराहट की चीख माता सुन पायी थी। लेकिन उस हद तक वह उसका अर्थ नहीं समझ पायी जिस हद तक पहुंचकर कोई भी अर्थ अनर्थ बन जाता है।

सुमन को सोया हुआ समझकर विवेकानन्द चला गया। माता वहीं दूसरी खाट पर लेट गयी। थकी हुई थी, इसलिए बिस्तर पर जाते ही उसे नींद आ गयी। सुमन ने जान-बूझकर सोने का अभिनय करने के लिए आंखें बंद कर ली थीं। किंतु उसकी आंखों में नींद कहां थी। उसका मन चक्रवात में पड़ा तिनके की तरह छटपटा रहा था। भावनाओं के तूफान में अपने-आपको वह डाल से गिरे पत्ते की तरह महसूस कर रहा था। वह कवि था, पढ़ा लिखा, बुद्धिजीवी था, लेकिन कितना बड़ा मूर्ख था। सामाजिक व्यवस्था के कठोर यथार्थ को समझना तो दूर, उसने समझने की कोशिश तक नहीं की थी। नरक की नींव पर खड़े होकर उसने स्वर्ग की सृष्टि करनी चाही। मानव इतिहास के रक्त रंजित, बुभुक्षित पृष्ठों को नजरअंदाज कर उसने वर्तमान और भविष्य की रंगीनियां चित्रित करने की कल्पना की। उसने कभी महसूस नहीं किया कि भूख, विषमता और ऊंच नीच के भेद भाव के

जहर में पगी मिट्टी से सुखद, सुंदर और कल्याणकारी मूर्ति का निर्माण नहीं किया जा सकता। उसकी बेटी सही चिकित्सा और पथ्य के अभाव में मर गयी। उसकी जीवनसंगिनी तपेदिक के प्रहार से गिर गिरकर उठ खड़ी होती रही। उसकी अपनी बीमारी ने फूल जैसी कांता को पत्थर जैसा सख्त बना दिया है—आज वह परवश है—अपनी पत्नी और बेरोजगार छोटे भाई पर निर्भर है।

सुमन ने बेचैनी की तीव्रता में आकर करवट बदली। कमरे में रोशनी जल रही थी। सीधी रोशनी कांता के चेहरे पर पड़ रही थी, जिससे बेखबर वह नींद में डूबी हुई थी। सुमन अचानक उठ बैठा। उसने कांता को गौर से देखा। न जाने वह कौन सा स्वप्न देख रही थी कि कांता के होंठों पर स्मित हास आ जा रहा था। वह कोई सुखद स्वप्न देख रही थी। सुखद स्वप्न अब उसके जीवन में सुख कहां? राहु की तरह वह स्वयं कांता के जीवन को ग्रसित किये बैठा है। शादी से लेकर अब तक कौन सा सुख दिया है? कितनी सुन्दर है कांता, कितनी आकर्षक। तपेदिक जैसा घातक रोग भी कांता की कांति को मलिन नहीं कर पाया।

सुमन दबे पांव उठकर बाहर निकल गया। पूर्व दिशा में चांद उग रहा था—लाल सा, आग के दहकते वर्तुलाकार अंगारे सा। समूचा मुहल्ला नींद के सन्नाटे में डूबा हुआ था। उस निस्तब्ध, नीरव, एकांत वातावरण में सुमन ने महसूस किया, जैसे नीले आकाश में कोई विकराल दानव हो जो अपनी बांहें फैलाये धीरे धीरे उसकी ओर बढ़ा आ रहा है—निगल जाने को। 'अच्छा ही है। मेरे जीवन का अर्थ ही क्या है? मेरे जैसा निरर्थक, निरुद्देश्य व्यक्ति इस धरा धाम पर बोझ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मेरी दुनिया मेरी ही आंखों के सामने मिटती चली जा रही है और मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा हूं। मैं कर ही क्या सकता हूं? चोरी करना पाप है, झूठ बोलना पाप है, हत्या करना पाप है और बेईमानी भी पाप है। यह सब किए बगैर आज की व्यवस्था में कोई व्यक्ति कैसे रह सकता है? कठिनाई तो यह है कि आत्महत्या करना भी पाप है। आत्महत्या? उफ कितना भयंकर यह शब्द है कितनी क्रूर इसकी ध्वनि है?' सुमन मन ही मन सवाल-जवाब करता रहा।

आत्महत्या का विचार आते ही, सुमन के हृदय की तमाम पीडाए, उसके मन का सम्पूर्ण भय, रास्ते की सभी रुकावटें और जिंदगी की सारी समस्याए जैसे एकाकार होकर धुए की शक्ल मे, उसके मन के भीतर-बाहर फल गयी हो। उसका दम घुटने लगा। आखो के आगे अधेरा छाने लगा। विवेक, बुद्धि और साहस कपूर की तरह उड गया। वह कुछ भी देख पाने, समझ पाने और सोच पाने म असमथ हो गया। सुमन को एक ही शब्द चमकता हुआ नजर आने लगा—आत्महत्या ! उसे लगा जैसे यह चमकती हुई वस्तु अधेरे म उसे आमन्त्रित कर रही है। आत्महत्या करना निश्चय ही कायरता नही है। जीवन की कठिनाइयो स डरकर भाग जाना भी नही है। जा मृत्यु से नही डरे, वह कायर नही हो सकता। कितनी शाति है मृत्यु मे। आत्मा ता मरती ही नही, फिर उसकी हत्या कैसे होती है ? यह गलत श द है। सही है इस रहस्यमय वस्तु की आकर्षक चमक।

सुमन के पाव मे न जाने कहा से बला की ताकत आ गयी। वह चिरैया टाड गुमटी की तरफ अनायास ही बढा चला जा रहा था। उसके मस्तिष्क की वही दशा थी, जो पूर्णिमा की रात मे तूफान आने पर भयावह समुद्र की होती है। एकसाथ उठने वाले भयकर कोलाहल से उसका मस्तिष्क फटा जा रहा था। कभी लगता, जसे उसकी बच्ची सरीखी लाखो बच्चिया एक साथ चीख रही हो। कभी लगता, जैस उसकी आखो के सामन माता असख्य रूपो मे बटकर छाती पीट पीटकर चिल्ला रही हो। इन तमाम शोरगुल, चीख चिल्लाहट और गजन तजन से बचने के लिए सुमन ने अपनी हथेलियो से दोनो कान ब द कर लिए। वह भयकर आवाज फिर भी आती रही, बल्कि तेज होती गयी। मन मे बैठा हुआ वह चमकीला शब्द—आत्महत्या —अचानक निकलकर बाहर आखो के सामने आ खडा हुआ। इस विक्षिप्तावस्था मे उस मालूम भी नही हो सका कि वह रेल की पटरिया के बीच से चला जा रहा है। वह चलता रहा चलता रहा —उसके मस्तिष्क का शोरगुल बढता गया और चमकीली वस्तु अब तेज गति स उसके पास आती गयी —बिल्कुल पास आती गयी। अचानक उस चमकीली वस्तु के भीतर से बडी कर्कश और तेज चीख निकली और—और सुमन के मस्तिष्क की आवाज खामोश हो गयी।

उसका सिर कटकर पटरी से दूर जा गिरा था और उसके शरीर के तीन टुकडे खून म लथपथ होकर इजन के चक्को मे चिपक गए थे। सुबह होन पर पुलिस विभाग इस अजनबी, अनजान और लावारिस लाश की पहचान कराने के लिए परेशान हो उठा।

२४

गाव से लगभग डेढ मील दूर पक्की सडक थी। रलवे स्टेशन पहुचन के लिए इस पक्की सडक पर आना पडता था। खेत, गाछी और पगडडी होकर भी स्टेशन पहुचा जा सकता था, किंतु, इस रास्त कपडे खराब हो जाने का खतरा रहता था। सामान लेकर अपने आदमी के साथ राघव बाबू खेत की पगडडी होकर स्टेशन चल पडे थे। विवेकानन्द को मा से विदाई लेने मे थोडा समय लग गया। उसके दालान पर पहुचने से पहले ही उसके पिता स्टेशन के लिए जा चुके थे। खेता मे मकई के घने पौधे लगे हुए थे, इसलिए, दूर दूर तक नजर डालने पर भी वे विवेकानन्द को दिखाई नही पडे।

विवेकान द गाव की धूल भरी कच्ची सडक से चल पडा। उसके मस्तिष्क में विचारा के झझावात उठ रहा था। देखते देखते जमीदार भुवनेश्वर सिंह के यहा दो हत्याए हो गयीं। पुलिस और कानून टुकुर टुकुर ताक्ते रह गए और राधा का हत्यारा बदाग बच निकला। धर्मेंद्र मास्टर को उस मामले म व्यथ ही फसाने का प्रयत्न किया गया। बेशक धर्मेंद्र का राधा के साथ अवैध सबध था वह भी अनैतिक क्रूर समाज की नजर मे जो रामेश्वर के साथ राधा के विवाह का नैतिक और वैध मानता है। राधा की हत्या रामश्वर न भी नही की होगी। हत्यारा कोई और है जो कानून की गोद मे बैठा खुश हो रहा होगा। अच्छा हुआ, धर्मेंद्र भाग गया। बाद मे उसपर जेवर चुराने का आरोप लगाया गया। आज धर्मेंद्र का कही अता पता नही था। अब जतना के हाथा रामेश्वर सिंह को निदयतापूवक मरवा दिया गया। क्या? यदि रामश्वर सिंह गवार

नही होता, विक्षिप्त नही होता, तो क्या होता ? भुवनश्वर सिंह षड्यंत्र रचने मे चतुर हैं, हाकिम हुक्काम को उन्होने अपनी अक्ल से मुट्ठियो मे कर रखा है। युद्धकोष मे स्वय सवा लाख रुपये दिये और जिला जवार के समृद्ध लोगो से पौने चार लाख रुपये बटोरकर कमिश्नर साहब का खुश कर दिया। उन्हें सरकार ने राय साहब का खिताब देकर निर्भीक बना दिया। ऐसी स्थिति में भला पुलिस और कानून उनपर हत्या का आरोप क्या खाकर लगाते ?

सुबह के दस बजे रहे होंगे। मकई के हरे भरे लहलहाते पौधो पर ओस की बूदें सूरज की किरणो मे चमकमक कर रही थी। खेतिहर मजदूर और छोटे छोटे काश्तकार खेतो म या खेत की मेडो पर घूम घूमकर खुरपी द रहे थे या फसल का निरीक्षण कर रहे थे। हवा मे उमस थी। विवेकानन्द कभी-कभी सडक के दोनो ओर खेतो पर विहगम दृष्टि डाल लेता और फिर अपने मन मे उठने वाले झझावात से जूझने लग जाता। 'इसी खेत के लिए आदमी पशु से भी बदतर बन जाता है, क्योकि सम्पत्ति से ही सत्ता आती है। हाथ आयी सत्ता को कोई छोडना नही चाहता। भुवनेश्वर सिंह के अधिकार मे हजारो बीघा जमीन है, जिसमे आधे का हिस्सेदार एक पागल था। तब रामेश्वर सिंह से जमीदारी को कोई खतरा नहीं था। वह पागल क्या कर लेता ! किंतु, राधा की कोख मे शिशु के आते ही भुवनेश्वर सिंह का पशु जी उठा। रामेश्वर सिंह का बेटा अक्ल मन्द हो सकता था। इसलिए, राधा का काम तमाम कर दिया गया, ताकि न रहे बास न बजे बासुरी। अब उस निरीह पागल को भी रास्ते से हटा दिया गया ? क्यो ? क्या यह क्रूरता मोह से नही उपजती है ? भुवनेश्वर सिंह अपने इकलौते बेटे विजय के मोह मे क्या राक्षस नही बन गया है ? राक्षस भी क्या इसान बन सकता है क्या वह किसीसे प्यार कर सकता है ?

अचानक विवेकानन्द की तद्रा टूट गयी। दूर से असख्य कठो से समवेत स्वर निकलकर आकाश मे गूज रहा था। वह चौंककर खडा हो गया। दूर पर, बायी तरफ आम के बगाचे के उस पार से, समवेत स्वर उभर रहा था। विवेका ने गौर से उस तरफ देखा। उसे समझते देर नही लगी

कि यह आवाज पक्की सडक से गुजरने वाले जलूस की है। लेकिन, कैसा जलूस ? कहा से आ रहा है ?

विवेकानन्द तेज कदमों से पक्की सडक की तरफ चल पडा। उसके मस्तिष्क का झझावात समवेत स्वर के तूफान म उडकर बिखर चुका था। किसी जुलूस या नारो की आवाज सुनते ही वह पागल बन जाता था। उसे विश्वास था कि समाज की सभी बुराइयो, कुरीतियो और विपत्तियो की जड गुलामी है। गुलामी की जजीर के टूटते ही अन्याय, अत्याचार, ईर्ष्या, द्वेष और विषमता के रोग से समाज स्वत मुक्त हो जाएगा।

पक्की सडक पर पहुचते ही वहा का ओजपूर्ण दृश्य देखकर विवेकानन्द को रोमाच हो आया। लगभग सौ गज दूर से विशाल जुलूस चला आ रहा था। कई लोगो के हाथो म तिरगा झडा लहरा रहा था और उसने पजे के बल पर उचककर देखा दूर दूर तक नरमुड ही नरमुड नजर आ रहे थे और उनके ऊपर से असख्य झडे हवा मे फहरा रहे थे। आगे चलनेवाला नौजवान नाच नाचकर बधी मुट्ठी हवा म हिलाता चल रहा था और साथ साथ नारे भी लगाता जा रहा था

"अग्रेजो भारत छोडो !"

"इन्कलाब जिन्दाबाद !"

"महात्मा गाधी की जय !"

"भारत माता की जय !"

जहा तक इस नौजवान की आवाज पहुचती वहा तक के लोगो का समवेत स्वर आकाश मे गूज उठता। जुलूस के बीच बीच मे ऐसे कई नौजवान थे जो नारे लगाते जा रहे थे और जुलूस मे शामिल लोगो का समवेत स्वर गूजता जा रहा था। विवेकानन्द अनायास समझ नही पाया कि इस आकस्मिक जन आदोलन का कारण क्या हो सकता है। वह तो उत्साह और जोश से रोमाचित और आनन्दित हो रहा था। उसने देखा कि उसका चेहरा तमतमाया हुआ है। सबकी आखो से सात्त्विक क्रोध की चिगारिया चटक रही हैं और नारे लगाते सबके मुख से आग निकल रहा है।

उस इलाके के अधिकाश लोग विवेकानन्द को पहचानते थे। वह अपनी

देशभक्ति, क्रांतिकारी विचार वाले और एक कमठ क्रांतिकारी के रूप मे विख्यात हो गया था। जुलूस म जो नेतत्व कर रहे थे व सभी विवेकानन्द को अपने से श्रेष्ठ वक्ता और नेता मानत थे। वे लोग जुलूस निकालकर चल तो पडे थे लेकिन, अभी तक उनकी समझ मे नही आया था कि वे करेंगे क्या। विवेकानन्द को देखते ही आगे आगे चलने वाले कई नौजवान खुशी से उछल पडे और देखते ही देखते विवेकानन्द उन लोगो से घिर गया। कुछ लोगो ने मिलकर विवेकानन्द को कधो पर उठा लिया। वह तब भी कुछ समझ नही पाया कि यह सब क्या हो रहा है।

जब आकस्मिक प्रसन्नता की जगह जिज्ञासा और विचार ने ले ली तब उसन पूछा

"क्या बात है, अचानक यह जुलूस क्या ?"

"अरे, तुम्हे नहीं मालूम। कल बबई मे महात्मा गाधी अपन साथियो के साथ गिरफ्तार कर लिए गए। कोई भी नेता जेल से बाहर नही है। महात्मा जी ने आदेश दिया है कि 'करो या मरो।' साथ ही उन्होने अग्रेजो से कहा है कि वे भारत छोड दें। अब जनता स्वय नेता है, वह जो चाहे करे। अच्छा हुआ कि तुम मिल गए। अब बताओ कि क्या करना चाहिए।' एक नौजवान नेता ने कहा।

बढता हुआ जुलूस रुक गया। जुलूस म छात्रो की सख्या अधिक थी। थोडी ही देर मे जुलूस ने पक्की सडक पर ही सभा का रूप ले लिया। विवेकानन्द ने सोचा, इतनी बडी घटना घट गयी। वह आज भले ही पटना न जाए लेकिन उसका कार्यक्षेत्र अन्ततोगत्वा पटना ही हो सकता है। इसलिए उसन वही के नौजवानो की एक समिति बना ली। तीन डिक्टेटर चुन लिए गए, जो क्रम से आदोलन का नतृत्व करेंगे। यदि एक को गोली लग गयी तो उसका कार्यभार दूसरा सभालेगा, यदि वह भी गिरफ्तार कर लिया जाए तो तीसरा डिक्टेटर उसका स्थान ले लेगा। उसी सभा मे सब सम्मति से यह फैसला किया गया कि रेल-तार उखाड दिए जाए या काट दिए जाए। सडकें काट दी जाए, पुल तोड दिए जाए और सरकारी कार्यालयो या कारखानो को या तो अपने अधीन कर लिया जाय या उन्हे तोड फोडकर बर्बाद कर दिया जाए।

विवेकानन्द को मालूम था कि उसके पिता राघव सिंह सामान लेकर स्टेशन पर उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उसका पटना जाना भी आवश्यक था। किंतु, इस बदली हुई परिस्थिति मे उसका अपना स्वार्थ कोई महत्त्व नही रखता था। उसने तय किया कि चंद रोज यही रहकर आदोलन को तेज कर दे और एक दिशा देने के बाद ही यहा से वह पटना जाए।

पास ही मे सरकारी फार्म का फ्लक्स गोदाम था। उसमे आग लगाकर जुलूस रेलवे स्टेशन की तरफ बढा। रास्ते में पडने वाले गावो के नौजवान जुलूस म शामिल होते गए। कुछ आगे बढने पर विवेकानन्द ने देखा कि सडक के किनारे अनवर खडा है। अनवर उस इलाके की काग्रेस का सक्रिय सदस्य था। लोग उसे नेता जी कहकर पुकारते थे। बचपन से ही उसके साथ विवेकानन्द की दोस्ती थी। उसने जबरदस्ती अनवर को अपने साथ कर लिया। उस समय अनवर का चेहरा फक पड गया था। वह हाव भाव से नही नही करता रहा, लेकिन उसके मुख से कोई शब्द निकल नही सका और भरे मन से वह जुलूस के साथ चलने लगा। अनवर ने आज तक इतना बडा जुलूस और वैसा जोश-खरोश कभी नही देखा था। वह घबरा रहा था कि यह तूफान कही उसे उडा न दे।

रेलवे स्टेशन पहुचकर किसीको कुछ बताने की आवश्यकता नहीं पडी। कोई तार के खभे पर चढकर टेलीग्राफ और टेलीफोन के तार काटने लगा तो कोई लाइन क्लीयर की घटी को ही दनादन पीटने लगा। विवेकानन्द अभी पीछे ही था कि बहुत से लोग स्टेशन कार्यालय के भीतर घुस गए। उन लोगो ने टिकट, माल सामान और नक्दी लूटना शुरू कर दिया। भीड का उग्र रूप देखकर स्टेशन के कर्मचारी दुबके सहमे खडे रहे। २० २५ मिनट के भीतर लूट काड पूरा हो गया और तब उग्र भीड ने कार्यालय के कागजात और रजिस्टर की होली जला दी। विवेकानन्द इस काड को तटस्थ भाव से घटित होते देखता रहा और सोचता रहा कि क्या गाधी जी के बताए हुए मार्ग पर चलकर हमे यही पहुचना था?

कुछ देर बाद भीड स्वत छट गयी। वहा विवेकानन्द के अतिरिक्त बच रहे—*कृष्ण जी रामनन्दन यदुवश और अनवर। पास ही होम* सिगनल के बाद आम का बहुत बडा बगीचा था। विवेकानन्द अपने

साथियों का लेकर उसी बगीचे मे जा पहुचा। स्टेशन से चलते समय उसन चारा तरफ अपने पिता की तलाश करन की काशिश की। स्टेशन के पीछे जाकर उसन परिचित दुकानदारो से भी पूछताछ की। वही उसे मालूम हो गया कि उसके पिता जी देर तक प्रतीक्षा करन के बाद सामान के साथ घर लौट गए।

बगीचे मे पाचो मित्र बैठकर देर तक विचार विमश करते रहे। किसी के सामने कोई स्पष्ट कायक्रम नही था। सभी अधेरे मे भटक रहे थे। अनवर बहुत घबराया हुआ था। उसन डरते डरते कहा

'देख लिया न, सब बुकिंग आफिस से नकदी लूटने के चक्कर मे थे। दिल से कोई भी देशभक्त नहीं है। लूटकाड खत्म होते ही सबके सब रफूचक्कर हो गए, क्योकि वे जानते थे कि अब पुलिस आएगी। ऐसी हालत मे इस तरह का अनुशासनहीन और उद्देश्यहीन आदोलन किस प्रकार सफल हो सकता है!"

विवेकानन्द कुछ देर तक खामोश बैठा रहा। उसके दूसरे साथी भी एक दूसरे का मुह ताकते हुए चुपचाप बैठे रहे। अब तक विवेकानन्द अनवर की मन स्थिति से भली भाति परिचित हो चुका था, किंतु वह सयत स्वर मे बोला

"यह आदोलन नही, विप्लव है। हुकूमत ने देश के सभी नेताओ को जेलो म बद कर दिया। उन नेताओ ने देश को स्वाधीनता दिलाने के लिए बार बार सत्याग्रह के प्रयाग किए। वे प्रयोग सफल नही हो सके, क्योकि सत्य और अहिंसा की राह पर अत तक चल सकने के लिए अपार शक्ति और साधना की आवश्यकता हाती है। व्यक्तिगत स्तर पर यह प्रयोग सफल हो सकता है किंतु सामूहिक और व्यापक स्तर पर इस प्रयोग के सफल होने की गुजाइश नही दीखती। यही कारण है कि उन्होने देश की जनता को बधनो से मुक्त कर दिया और कहा कि हर कोई अपना नेता है। यह सही है कि वर्षों की गुलामी ने हमारे आत्मविश्वास और त्याग की भावना को मृतप्राय-सा कर दिया है। थोडा प्रलोभन पाकर ही हम अनय करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। आज रेलवे स्टेशन पर यही हुआ। हमे इस अनुभव का लाभ उठाकर कोई न कोई माग अख्तियार करना पडेगा।

देश मे जब शक्ति का ऐसा समुद्र लहरा रहा हो तब चुपचाप जाकर घर बैठना भी ठीक नही है, इसलिए बेहतर यह होगा कि हम अपने जैसे नौजवानो को एकत्र करें। उनके सामने एक कार्यक्रम रखें। सुनियोजित ढंग से, कार्यक्रम के अनुसार, स्वाधीनता आदोलन को जीवित और जागृत रखने की जिम्मेदारी हम नौजवानो पर है।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि हम महात्मा जी की राह से हटकर काम करें।" अनवर ने शकालु होकर पूछा। विवेकानन्द ने हँसकर जवाब दिया

'भाई अनवर, गाधी जी और जवाहरलाल तो जेल मे है, और जब उनका आदेश हो गया है कि हम अपनी इच्छानुसार देश की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन चलाए तो रास्ता भी हमे खुद बनाना होगा। बेशक, वह रास्ता गाधी जी का नही होगा। मैं स्वय गाधीजी के सिद्धातो का कायल नही हू, किंतु तुम्ही बताओ कि आज की स्थिति मे करणीय क्या है?'

अनवर कुछ जवाब नही दे पाया। दरअसल वह इस आदोलन म सक्रिय रूप से सम्मिलित होने के लिए तैयार था ही नही। इस बार रामनन्दन ने गभीर स्वर मे सुझाव दिया

"हम लोग दो दो, तीन तीन गाव का जिम्मा ले लें। उन गावो मे जाकर अपने सरीखे नौजवानो को तैयार करें। उन सबको ठोक पीटकर देख लेना होगा कि घर बार छोडकर हमारे साथ बाहर निकल सकने की स्थिति मे व है या नही।"

रामनन्दन की बात सुनकर विवेकानन्द के चेहरे पर चमक आ गयी। उसे लगा, जैसे क्रांति की घडी सचमुच आ खडी हुई है। उसने उत्साहपूर्वक कहा

"तुमने ठीक सुझाव दिया। 'करो या मरो' स्वातत्र्य-सग्राम की अतिम पुकार है कूच का वक्त है। साज-सज्जा और सुख सुविधा जुटाने का समय कहा है? इस पुकार को सार्थक करना मात्र उद्देश्य है। अब सोचने का समय नही है कि क्या सही है और क्या गलत? फिर भी, अपने अपने स्तर पर योजना बनाकर आदोलन चलाना होगा। यह आदोलन अब प्रदर्शनो और जुलूसो की शक्ल में नही होगा। आज जिस तरह की

घटना यहा घटी है, निश्चय ही वैसी घटना देश के कई भागा मे घटी होगी। हुकूमत इस तरह के तोड-फोड को बर्दाश्त नही करेगी। चन्द रोज के भीतर ही सरकार का दमनचक्र चल पडेगा। पुलिस की जगह फौज ले लेगी। गोलिया चलेंगी। घर जलाय जाएगे और तब बडे से बडा सत्याग्रही जुलूस निकालने या प्रदशन करन की स्थिति मे नही रहगा। इसलिए, हम लोगो को ऐसा कायक्रम बनाना होगा जिससे कि हम हुकूमत की जडें हिलाने मे सफल हो सकें, साथ ही हमारा अधिक नुकसान भी न हो। जनता ने रास्ता दिखा दिया है। तोड फोड के रास्ते पर ही चलना होगा लेकिन, गुप्त रूप से। हुकूमत को तभी पगु बनाया जा सकता है।"

दूसरे दिन शाम को फिर मिल बैठने का निश्चय किया गया। यह भी तय कर लिया गया कि कल शाम को नये कायक्रम का श्रीगणेश कर दिया जाएगा। यह भी तय हुआ कि यह काम चुपचाप छिपे तौर पर किया जाए। जाहिर है, कल शाम को जो लोग बैठक मे आएगे, उन्हे बैठक और कायक्रम की सूचना उसी समय दी जाएगी।

२५

चौबीस घण्टे बीत जाने पर भी हुकूमत की ओर से आदोलन को दबाने के लिए कोई कदम नही उठाया गया। पूरे देश मे चार-पाच रोज तक अराजकता की सी स्थिति बनी रही। कई जगहा पर पुलिस चौकी लूट ली गयी। कुछ पुलिस थाने को जला दिया गया। इन घटनाओ म पुलिस के कई सिपाही जख्मी हो गए और कुछ मारे भी गए। नतीजा यह हुआ कि पुलिस के सिपाही थाना छोडकर भाग खडे हुए। जन आक्रोश इतना प्रबल था कि किसी थाने के चद सिपाही और दारोगा तीन चार बदूको और लाठियो के सहारे उमडती उफनती भीड का सामना करने का साहस जुटा नही पाए।

विवेकानन्द ने कार्यक्रम बनाकर, रात के समय, जगह जगह से रेलवे लाइन और पटरी उखाडकर फेंक देने का काम शुरू कर दिया। उसने कई जगहा पर सचार व्यवस्था को छिन भिन करने के लिए टेलीग्राफ और

टेलीफोन के तार काट डाले। ये लोग रात भर छिपकर काम करते थे और दिन मे अलग थलग होकर आराम करते थे। उन दिनो चारों तरफ खेतो मे मकई की फसल लगी हुई थी। इसलिए छिपकर रहने की काफी गुजाइश थी।

राजनीतिक दल के जाने माने लगभग सभी नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे। प्रदेश और क्षेत्र के जो बडे नेता बम्बई सम्मेलन मे भाग लेन के लिए गए, उनमे से अधिकाश वही गिरफ्तार कर लिए गए थे। कुछ ऐसे तथाकथित नेता भी थे जो चुपचाप अतर्धान हो गए। ऐसा उन्होने अपनी जान बचाने के लिए किया। स्वभावत आदोलन का नेतत्व किशोरो और नौजवानो के हाथ मे आ गया। इन्हें स्पष्ट उद्देश्य या कार्यक्रम का निर्देश देने वाला कोई रह नही गया था। इन नौजवानो को यह भी पता नही था कि किस तरह से एक सुदढ शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति से लोहा लिया जाता है। पुलिस चौकिया पर कब्जा जमा लेने से ही शासन की बागडोर हाथ मे नहीं आ जाती। अभी भी शासन का तत्र और उसकी बागडोर बडी बडी कचहरियो में, प्रदेशो की राजधानियो के सचिवालयो मे और सैनिको की छावनियो मे सुरक्षित थी। इन अपरिपक्व उत्साही नौजवानो का ध्यान उस तरफ जा नही सका था। इनके पास साधन का भी अभाव था।

सही तो यह होना कि बडे-बडे प्रदशनो का खुलेआम आयोजन किया जाना। सरकारी व्यवस्था का विरोध करने के लिए लगान, चुगी और अन्य कर देना बन्द कर दिया जाता। सरकारी कार्यालयो और उनमे नियुक्त कर्मचारियो अधिकारियो से असहयोग करने का आग्रह किया जाता। पुलिस और सेना के भारतीय जवानो और अधिकारियो को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया जाता। लेकिन एसा कुछ हुआ नहीं। अचानक ही सब कुछ घटित हो गया। देश के नेताओ को इतनी सुध भी नही रही कि वे एक निश्चित कार्यक्रम ही बनाकर अपने पीछे छोड जाते। कसूर उनका भी नहीं था, क्योकि ऐसा कार्यक्रम छिपे तौर पर ही बनाया जा सकता था और गुप्त रूप से किसीके सुपुर्द किया जा सकता था किंतु महात्मा गाधी कोई भी काम छिपे तौर पर या गुप्त रूप से करना नहीं चाहते थे। ऐसा करना उनके जीवन दर्शन और सिद्धात के प्रतिकूल होता।

'भारत छोड़ो' आदोलन वस्तुत आदोलन नही रह गया, बल्कि उसने जन विप्लव का रूप ले लिया। कही भी केन्द्रीय स्तर पर ऐसा कोई सग ठन नही था, जो इस आदोलन या विप्लव को सुनियोजित ढग से दिशा निर्देश दे सकता। नतीजा यह हुआ कि नौजवानो को जहा जो कुछ सूझा, वहा उन्होंने वैसा ही कार्यक्रम बना लिया।

विवेकानन्द पहले से ही क्रान्तिकारी विचारधारा का अनुकरण करता आया था। नीति के तौर पर वह गाधी जी के सत्य-अहिंसा को तो कबूल कर लेता था, लेकिन उसकी समझ म यह बात कभी नही आयी कि तोप और बदूक के सामने एक निहत्था व्यक्ति कब तक अपनी निर्भीकता और सत्यनिष्ठा की परीक्षा देता रहेगा।

चद रोज बाद ही हुकूमत ने करवट बदली। अग्रेज साम्राज्यवादियो को उन दिनो सुदूरपूर्व जापान के साथ घमासान युद्ध करना पड रहा था। पद्रह फरवरी, १९४२ को अग्रजी फौज ने सिंगापुर मे जापान की मार से घबराकर हथियार डाल दिए थे। उस समय अग्रेजी फौज की सख्या एक लाख थी। उधर बर्लिन मे सुभाषचद्र बोस ने आजाद हिन्द फौज का सग ठन कर लिया था। अग्रेजी हुकूमत का सिर चकरा रहा था। जापानी सेना मोर्चे पर मोर्चे जीतती हुई आगे बढती आ रही थी। नेताजी सुभाषचद्र बोस ने अलग से आजाद हिंद फौज का गठन कर लिया था। इधर सिंगापुर मे आजाद हिंद फौज मे वे सनिक और अधिकारी शामिल थे जिन्ह जापा नियो ने अग्रेजी सेना को पराजित करके बन्दी बना लिया। केवल पद्रह फरवरी, १९४२ को ही पचास हजार भारतीय सैनिको ने आत्म समपण किया था। इन्हें कैप्टन मोहनसिंह के नेतत्व मे सगठित किया गया। अग्रेजी साम्राज्यवादियो से यह बात छिपी हुई नही थी। जाहिर है, उनके साथ लडने वाली हिंदुस्तानी सेना का हौसला पस्त होता जा रहा था। ऐसी स्थिति मे अग्रेजी हुकूमत को अपने उपनिवेश भारत मे विद्रोह की ज्वाला देखकर अत्यधिक चिंता हुई। इस दोहरी मार से वह तिलमिला उठी। उसने अपने भारतीय उपनिवश के विप्लव को रौंदने का दढ सकल्प कर लिया।

जाट सैनिक और टौमी सैनिको की टुकडियो ने गाव गाव मे घूम-

घूमकर निहत्थे लोगो पर गोलिया बरसानी शुरू कर दी। हर राज किसी न किसी गाव मे पहुचकर वे दो चार घरो मे आग लगा देते थे। खेतो मे काम करने वाली लडकियो के साथ बलात्कार करने से भी वे नही चूकते थे। सडक से ट्रक पर जाते हुए सैनिक अगल बगल के खेता मे या अपने घरा के सामने खडे किसाना को अकारण ही गोली मार देते थे। उनका उद्देश्य आतक पैदा करना था और चन्द रोज म ही उनका उद्देश्य पूरा हो गया।

पूरे देश म आतक का वातावरण छा गया। खेत खलिहान ही नही, कस्बे और शहर भी मरघट की शाति में डूब गए। हजारा भारतीय रोज गिरफ्तार किए जाने लगे। सब डिवीजन और जिले की जेलें नाकाफी साबित होने लगी, तो जगह जगह कैम्प जेल बना दिए गए। देखते-देखत ये सभी कैम्प भी भर गए।

विवेकानन्द के दल मे अब सदस्यो की सख्या तीस से घटकर तीन रह गयी। अनवर घर से भागकर कही जा छिपा। फिर भी विवेकानन्द ने हिम्मत नही हारी। वह रामनन्दन, यदुवश और कृष्ण के साथ एक तरफ रोसरा तो दूसरी तरफ हाजीपुर तक लगभग साठ मील के क्षेत्र में घूम घूम कर अपने कायक्रम को अजाम देन लगा।

इसी कायक्रम मे एक दिन वह किशनपुर के पास एक गाव मे जा पहुचा था। दो रोज पहले वह अनगाढ घाट मे था। चार आदमियो के बल बूते की बात नही थी कि रेल की लाइन उखाडकर कही दूर फेंकते। इसलिए व अब केवल फिश प्लेट खोल दिया करते थे, टेलीग्राफ के तार काट दिया करते थे और मौका देखकर डाकघर को जला देन से भी नही चूकते थे। अनगाढ घाट मे रात के समय झील पार करके उसने रलवे लाइन के कई फिश प्लेट निकाल लिए थे और वहा से रातो रात चलकर वह किशनपुर के एक गाव म आ पहुचा था।

विवेकानन्द का नाम विख्यात हो चुका था। उन दिनो के सन्दभ मे कुख्यात कहें, ता अधिक सटीक बठेगा। जो इतनी बडी और ताकतवर अग्रेजी हुकूमत की नजर मे खतरनाक हो, वह कैसा दुद्धष व्यक्ति होगा? अनजान लोग उसका नाम सुनते ही आदर और भय से भर उठते थे। चर्चा उठते ही कोई यदि कह देता

"अरे, लौण्डा तो है, वहा दरवेसर सिंह के मामू की ससुराल मे विवेकानन्द के गाव की लडकी ब्याही है। दरवेसर कहता है कि बेकार ही लोग तूल दे रहे हैं।"

तुरत ही प्रतिवाद होता है, "रहने दो, रहने दो। मामू की ससुराल की ऐसी की तैसी। अरे, वह लौंडा नही है। बडा ही डील डौल वाला दिव्य पुरुष है। स्वामी जी का फोटू देखा है कि नही? ठीक वैसा ही है।'

दरअस्ल, कही रेल लाइन या तार काटा जाता, डाकघर मे आग लगायी जाती, वही फौज की टुकडी आ धमकती। दमनचक्र चल पडता और लोग अपनी अपनी कल्पना के अनुरूप विवेकानन्द की तस्वीर खीचने लग जाते थे। विवेकानन्द के नाम वारट कट चुका था। पुलिस ही नही, गाव गाव मे घूमने वाली सैनिक टुकडिया तक उसकी तलाश मे थी। विवेकानन्द को मालूम हो चुका था कि उसके घर पर हुकूमत के दरिदे कई बार छापे मार चुके हैं। वह कभी कभार रात बेरात छिपकर घर पहुचता था तो वहा की दुर्दशा देखकर विचलित हो उठता। सैनिक टुकडी के साथ पुलिस अधिकारी बार-बार उसके घर पर धावा मारने लगे थे। उसकी मा को घर छोडकर खेतो या बगीचे मे जा छिपना पडता था। दो बार राघव बाबू को थाने पकडकर ले जाया गया, उनके साथ अभद्र व्यवहार किया गया और उन्हे धमकी भी दी गयी। घर का सामान अस्त व्यस्त कर दिया सो अलग।

विवेकानन्द अपने तीन साथियो के साथ गाव के एक किसान के बथान मे टिक गया था। किसान बारी-बारी से कभी इस खेत मे तो कभी उस खेत मे एकपलिया या एकचारी बना देते हैं और वही मवेशी बाधे जाते हैं। इससे खेतो मे खाद पट जाती है। इसी झोपडी को बथान कहा जाता है। शायद यह शब्द वरद स्थान का विकृत रूप है। उस किसान का परिवार बडा ही छोटा था—एक जवान बेटा, एक पद्रह वर्ष की अविवाहित लडकी और किसान की अधेड पत्नी। गाव गाव मे हुकूमत के दमनचक्र की रोगटे खडे कर देने वाली कहानिया पहुच चुकी थी। लोग किसी अनजान व्यक्ति को घर मे पनाह देने से घबराने लगे थे, और वह अनजान व्यक्ति यदि गाधी जी का आदोलनकारी हो तो फिर उसे पानी तक पिलाने मे भी

लोग घबराते थे। लेकिन, यह किसान दूसरे ही धातु का बना हुआ था। उसके पिता १६२२ के सत्याग्रह में हिस्सा लेकर जेल जा चुके थे। अब वे जीवित नहीं बचे थे, लेकिन उनकी छत्रछाया और समग्र में पला उनका बेटा पक्का किसान होते हुए भी मन ही मन विदेशी हुकूमत का घोर विरोधी बन चुका था। वह निर्भीक और देशभक्त भी था।

विवेकानन्द का उस परिवार में बहुत आदर सत्कार के साथ ठहराया गया। वह किसान तो अपने घर के बरामदे पर ही ठहराने के लिए राजी था, लेकिन विवेकानन्द ने खेत में बने बथान को ही अधिक सुरक्षित समझा। शाम को जब अपने साथियों के साथ भोजन करने बैठा, तब किसान की अल्पवयस्क किशोरी ही खाना परोस रही थी। किसान, घर के चौखट पर बैठा, बड़े स्नेह से आग्रहपूर्वक भोजन करा रहा था। किसान की पत्नी दमा के रोग से ग्रस्त होकर बिस्तर पकड़ चुकी थी। किशोरी जबरदस्ती किसीके थाल में कभी सब्जी डाल देती थी, तो कभी भात। वह उत्साह में दौड़ दौड़ कर खाना परोस रही थी। उसका रंग गेहुआ था और उसकी बड़ी बड़ी आखें कौतूहल से भरी हुई थीं। आवश्यकता से अधिक कोई सामान थाली में पड़ जाता तो विवेकानन्द और उसके साथी घबराकर उसकी ओर देखने लग जाते थे। किशोरी शरमाकर अपने होठों में ही मुस्कराने लगती थी। विवेकानन्द ने किसान के बहाने लड़की से कहा

"इतना खिला दीजिएगा तो तीन चार दिन तक हम लोग चल फिर भी नहीं पाएंगे। पुलिस और सेना के लोग हमारे पीछे पड़े हैं, सो आप जानते ही हैं।"

"बहुत नटखट है पुष्पा। गांव के स्कूल में मिडिल तक पढ़ चुकी है। इसकी बड़ी इच्छा थी, कुछ और पढ़ने की। लेकिन मिडिल से ऊपर कोई दर्जा गांव के स्कूल में है नहीं, क्या करता? अब तो घर में ही जो कुछ मिलता है—रामायण महाभारत, उसे ही यह पढ़ती रहती है। घर का काम काज भी इसे ही करना पड़ता है। पटने से निकलने वाली कुछ पत्रिकाएं मंगवाते रहते हैं मास्टर जी। मैं वे पत्रिकाएं लाकर इसे दे देता हूं। सब चाट जाती है।"

यह तो बड़ी अच्छी बात है। शहर में रहती तो लिखाई पढ़ाई में काफी

आगे बढ जाती ।" विवेकानन्द ने जवाब किसान को दिया, लेकिन नजर किशोरी पर लगी थी, जो उसकी ओर मुस्कराकर देख रही थी। किसान ने छूटते ही कहा

"अभी वैसा समय नही आया कि गाव म लडकियो के पढने लिखन को अच्छा माना जा सके। मिडिल तक पढाने मे ही बहुत बाधा विरोध झेलना पडा। कई लोगो ने तो विरोध और व्यग्य कसने से ही सतोष न करके तरह-तरह के किस्से फैला दिए। मैंने सोचा, मन चगा तो कठौती मे गगा। किंतु, गगा की पवित्रता भी अब कसौटी पर चढी हुई है। दो बार इसकी शादी तय हो चुकी और दानो बार गाव के विभीषणो के चलते रिश्ता टूट गया।"

पुष्पा अपनी शादी की चर्चा सुनकर परेशान हो उठी। उसकी सारी चचलता पल भर मे काफूर हो गयी। वह जान बूझकर बात का रुख मोडने के लिए विवेकानन्द की ओर देखती हुई बोली

"पुलिस और फौज आपके पीछे क्यो है?"

"हम लोग विदेशी हुकूमत की जड खोदने म लगे हुए हैं। हमारे इस काम को भला हुकूमत के टुकडो पर पलने वाले सिपाही या सैनिक क्या बर्दाश्त करेंगे?"

"आजकल पुलिस और फौज के लोग चारो तरफ उत्पात मचाते फिर रहे ह। जबरदस्ती सामान उठाकर ले जाते हैं। लोगो को कोडे लगाते हैं गोली तक मार देते हैं। न जाने क्या-क्या करते हैं, फिर भी लोग खामोशी से यह अयाय झेल लेते ह। सब मिलकर इनका विरोध क्यो नही करते?"

"वही विरोध तो हम लोग कर रहे है। बेशक, सब लोग हमारे साथ नही हैं। यदि देश की ३० ३२ करोड की आबादी, एकजुट होकर, अग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हल्ला बोल दे तो पल भर मे हमारा देश स्वाधीन हो जाए। लेकिन पूजीपति और जमीदार सरकारी नौकर और राजे महाराजे विदेशी हुकूमत के फरमाबरदार बने हुए हैं। इसीमे उनका स्वार्थ सधता है।"

'फिर तो दोनो हमारे दुश्मन ह। दोनो के विरुद्ध लडाई छेड देनी चाहिए लेकिन, यह लडाई तो बहुत लम्बी हो जाएगी। किस किसके

खिलाफ आप लोग लड पाइएगा और कब तक ? एक को खत्म कीजिएगा, दूसरा वहा आ खडा होगा।"

विवेकानन्द ने चौंककर पुष्पा की ओर देखा। उसकी आखो म और चेहरे पर क्रोध की चमक स्पष्ट हो उठती थी। उसने मन ही मन सोचा, सुदूर देहात के एक कोने मे ऐसी प्रबुद्ध और खूबसूरत चिनगारी ! इसे यदि सुविधा और अवसर मिले तो क्या यह भी सरोजिनी नायड और एनी बेसेण्ट नही बन सकती ? विवेकानन्द को कौतूहल हुआ। उसने पूछा

'खत्म करने का क्या मतलब ?"

'खत्म करने का मतलब खत्म करना है, सुधार करना नही। हमारे बाबा गाधी जी के भक्त थे। मुझे याद है, वे कहा करते थे कि मनुष्य प्रेम का भूखा है इसलिए उसे प्रेम के सहारे ही जीता जा सकता है। लेकिन, यह हुकूमत तो मनुष्य नही, पशु की तरह व्यवहार करती है। क्या आप लोग राम कृष्ण और बुद्ध से भी बडे है ? जब वे लोग पशुओ को प्रेम से नही जीत सके तो आप किस प्रकार जीत पाएगे ? गुलामी, अन्याय, शोषण और अत्याचार की जड मे व्यवस्था है, व्यक्ति नही। जब तक व्यवस्था यही रहेगी, तब तक अन्याय और शोषण जारी रहेगा।"

अपनी बेटी की बातें सुनकर किसान घबरा उठा। वह जानता था कि पुष्पा जब खुल गयी है तब इसी तरह की बातें बोलती चली जाएगी। इसलिए उसने बात का रुख मोडते हुए पूछा।

"सुना, सुभाष बाबू फौज लेकर कलकत्ते पहुच गए ह। क्या यह सच है ?"

विवेकानन्द ने चौंककर किसान की ओर देखा। इस तरह के प्रश्न वह बहुत लोगो से सुन चुका था। सुभाष बाबू एक साल पहले छदमवेश म देश छोडकर जर्मनी चले गए। व अब तक बर्मा भी नही पहुचे ह, कलकत्ते की बात तो दूर रही। यह सही है कि सिंगापुर मे भारतीय सैनिको ने अग्रेजो के विरुद्ध हथियार उठा लिए ह। जनता का उत्साह जगाए रखने के लिए न जाने कहा से इस तरह के गलत समाचार फैलाए जा रहे हैं ? विवेकानन्द के मस्तिष्क म प्रश्न उठते रहे। उसके मन मे आया, कह दे कि यह सब झूठ है। न तो सुभाष बाबू कलकत्ते पहुचने वाले है और न तो नेताओ न

स्वाधीनता संग्राम के लिए कोई निश्चित योजना ही बनायी है। इतने बड़े देश का स्वाधीनता संग्राम केवल भगवान भरोसे चल रहा है। किंतु उस किसान के उल्लास, उमंग और पुष्पा के उत्साह को देखकर विवेकानन्द के मन में द्विविधा उत्पन्न हुई कि क्या इन भोले भाले व्यक्तियों की आशा पर कुठाराघात किया जाए? उसने सिर नीचा करते हुए कहा

"हां, हम लोगों तक भी यह गरम खबर पहुंची है।"

"व जल्दी क्यों नहीं आ जाते ?" किशोरी ने सोल्लास पूछा, "व आ जाए तो इन गोरों को गांव में घूमने का मजा मिल जाए।"

विवेकानन्द ने सोचा, काश, महात्मा जी पुष्पा की बात सुन पाते। अचानक उसे खयाल आया कि गांधीजी तो रोज आम लोगों से मिला करते थे। उन्होंने तो अपना सम्पूर्ण जीवन ही सार्वजनिक सेवा में समर्पित कर दिया है। निश्चय ही इस तरह की बातें बहुतों ने उनसे भी कही होंगी। लेकिन, सत्य और अहिंसा के पुजारी को यह मान्य नहीं हुआ होगा। फिर, अब उन्होंने क्या सोचकर एलान कर दिया कि 'करो या मरो।' क्या करो? असहयोग और सत्याग्रह करने के लिए कहां कोई तैयार है? गाड़ियां चल रही हैं, कारोबार हो रहा है और नेता जेलों में बंद हैं। विवेकानन्द किसी नतीजे पर पहुंच नहीं पा रहा था। उसे चुप देखकर पुष्पा ने अपनी बात जारी रखी। "चौथे रोज गुमटी पर गाड़ी खड़ी करके बहुत से अंग्रेज सैनिक नीचे उतर आये और मकई की बालें तोड़ तोड़कर बन्दर की तरह खाने लगे। उस समय मैं उनसे कुछ दूर खेत में खड़ी थी। मुझे देखकर वे आपस में हंसने बोलने लगे। उनमें से एक तो मेरी ओर बढ़ा भी कि इतने में लाइन पर खड़े एक गोरे ने उन लोगों को पुकारा। वे घूम पड़े। वे लगते कैसे थे? जैसे सबको कोढ़ फूट गया हो। उस समय मेरे हाथ में बन्दूक होती तो मैं तो मैं।"

"चुप रहो। ऐसी बात नहीं बोलते।" किसान ने अपनी बेटी को डपट दिया। पुष्पा लजाकर चुप हो गयी।

सूर्योदय से पहले ही विवेकानन्द अपने साथियों के साथ उस गांव से प्रस्थान कर देने वाला था। वे चारों बथान के बाहर पड़ी चौकियों पर सो गये। विवेकानन्द को नींद नहीं आ रही थी। वह सोच रहा था, जापानियों

के भरोसे देश का आन्दोलन कब तक चलता रहेगा ? गांधी जी इतने बड़े विचारक नेता हैं। उन्होंने यह नहीं सोचा कि जनता कब तक मरती रहेगी ? करने के लिए कोई कार्यक्रम सामने है नहीं। बम्बई अधिवेशन के पहले नेताओं को समझ लेना चाहिए था कि भविष्य के गर्भ में क्या कुछ छिपा हुआ है। यदि वे असहयोग, सत्याग्रह, प्रदर्शन और जुलूस में ही विश्वास रखते हैं तो उसी विश्वास के अनुरूप पहले से ही संगठन बना लेना चाहिए था। कश्मीर से कन्याकुमारी और कामाख्या से द्वारिका तक संगठन का सुनियोजित सूत्र होना चाहिए था। निस्सन्देह गांधीजी युद्ध अथवा विप्लव अथवा क्रांति के मार्ग पर जन मन को प्रेरित करने की बात सोच भी नहीं सकते थे। किंतु देश के अन्य नेतागण तो कुछ इस सम्भावित परिस्थिति की कल्पना कर सकते थे। पुष्पा जैसी अर्धशिक्षित और सुदूर देहात की रहने वाली अबोध बालिका तक सोचती है कि शत्रुओं को खत्म कर दिया जाय। उसके विचार में लाखों करोड़ों का आक्रोश ध्वनित होता है। लूट खसोट, अनाचार-अपमान और दमन उत्पीड़न भला कौन व्यक्ति या व्यक्ति समूह सहिष्णु होकर सहेगा ? स्वाधीनता यदि मिल भी गयी तो क्या ये नेता या इन नेताओं के वंशज देश की महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप काम कर सकेंगे ? इनमें इतना विवेक है ? जब आज इनमें दृष्टि का अभाव है, तब कल कहां से वह दृष्टि पैदा हो जायगी ?

विवेकानन्द काफी रात तक करवटें बदलता रहा। वह मन ही मन किसान की लड़की पुष्पा और छाया में तुलना करने लगा। बहुत ही साधारण साड़ी में बिना किसी साज शृंगार किये पुष्पा अधिक आकर्षक और रूपवती लगी। यदि इसे बनाव-ठनाकर संवार दिया जाय तो लाखों में एक हो जायेगी। शहर की पढ़ी लिखी लड़कियां अपने आपसे डर सम्भलकर बचती हुई चलती है। वे अतिचेतना से ग्रस्त अपने आपसे सशंकित रहती हैं। पुष्पा कितनी सरल, वाचाल और निःशंक है। विवेकानन्द ने अपने दिमाग को झटका दिया जिससे कि पुष्पा की छवि छिन्न भिन्न होकर बिखर जाय। वह अपने मन और मस्तिष्क में छाया के अतिरिक्त और किसी को निवास करने देना नहीं चाहता था। किंतु पुष्पा की बिखरी हुई छवि फिर एकत्र होकर आकर्षक रूप में उभर आती थी। तुलनात्मक अनुभूति ने

विवेकानन्द मे ग्लानि का भाव भर दिया। स्वाधीनता-संग्राम के मार्ग पर चलने वाले बलिदानी को इन आसक्तियों से बचना चाहिए। यह मोह है। मोह मनुष्य को जकड लेता है। वह उद्विग्न भाव से सोचता रहा कि उसे हो क्या गया है? जीवित और जागृत रहने के लिए दो विरोधी तत्त्वो का संघर्ष क्या आवश्यक है? इन विरोधी तत्त्वो के संघर्ष के अभाव मे क्या दृष्टि गतिशील नही रह सकती?

वह चौकी पर लेटे लेटे थक गया था। बिस्तर से उठकर वह वही पर चहलकदमी करने लगा। लगभग ५० ६० गज आगे तक जुता हुआ खेत था। बायी तरफ लीची और आम के पेड लगे हुए थे। दाहिनी तरफ लगभग तीन साढे तीन सौ गज दूर कच्ची सडक थी, जो पूरब तरफ से गाव का चक्कर काटती हुई, दाहिनी तरफ समस्तीपुर जाने वाली पक्की सडक म मिल जाती थी।

बरसात की रात मे आकाश आम तौर पर साफ नही रहता है। आश्चर्य की बात यह थी कि उस रात आकाश मे बादल के चन्द रेशे यहा वहा छिटके हुए थे, इसके अतिरिक्त पूरा आकाश साफ था। कभी कभी एकाध रेशे चाद पर भी आ जाते तो मकई के खेतो और गाछियो पर थोडा धुंधलापन छा जाता था। हवा बिल्कुल गुम थी। चारो ओर खामोशी थी। गाव के दूसरे छोर पर, दक्षिण तरफ, चमारो के टोले से पिपही बजने की आवाज आ रही थी। अगले माघ फागुन के लगन म पैसे कमाने के ख्याल से एक चमार पिपही पर नयी धुन बजाना सीख रहा था सिनेमा के किसी गीत की धुन।

वह चक्कर लगाते लगाते थककर बिस्तर पर लेटने ही जा रहा था कि गाव के बीच से आने वाली कच्ची सडक के अतिम छोर पर किसी मोटर गाडी की तेज रोशनी आती हुई मालूम पडी। गावो मे, वह भी रात के समय और कच्ची सडक पर, साल मे एक दो बार, लगन के समय ही मोटरगाडिया चला करती थी। विवेकानन्द चौंककर रोशनी के आभास की ओर देखने लगा। उसके साथी जैसे घोडा बेचकर सो रहे थे। जब रोशनी साफ दिखने लगी तो विवेकानन्द ने रामनन्दन, कृष्ण और मथुरा को झकझोरकर जगाया। वे तीनो गहरी नींद म थे। कई रात से सो नही पाये थे। उस रात

बढ़िया भोजन पेट में गया था, जिसके चलते उन्हें नशा जैसा चढ़ गया था। विवेकानन्द ने बारी बारी से उन तीनों को खूब झकझोरा, तब वे हड़बड़ाते हुए उठ बैठे।

विवेकानन्द ने कहा

"तुम लोग भी वही देख रहे हो जो मैं देख रहा हू ?"

"अरे, यह तो कोई मोटरगाड़ी आ रही है।" यदुनाथ ने घबराहट के स्वर मे कहा। रामनन्दन भी तब तक उठ खड़ा हुआ था। वह रोशनी की ओर देखता देखता ही बोला

' मोटर गाडी नहीं, यह तो ट्रक है। इसका मतलब हुआ कि ।"

"हुकूमत के कुत्ते आ रहे हैं।" कृष्ण ने वाक्य पूरा करते हुए कहा।

विवेकानन्द कुछ देर तक द्वन्द्व मे पड़ा रहा और फिर सोचता हुआ सा बोला

"किसान को होशियार कर देना चाहिए। व लोग, घर से निकलकर, सामने के खेत म छिप जायें तो बेहतर होगा।"

"अब समय कहा है ? ट्रक बिल्कुल पास आ गया है। वे लोग निश्चय ही हमारी तलाश मे आये हैं। अनगाढ घाट म रेल लाइन की फिशप्लेट निकालने से पहले हम लोगो को झील पार करते समय मल्लाह की नाव लेनी पडी थी। याद है न ? उसी मल्लाह से सुराग लेकर य लोग यहां तक आ पहुंचे है।'

' लेकिन किसान का क्या होगा ? और वह किशोरी पुष्पा ।" विवेकानन्द ने सशंकित स्वर म पूछा।

रामनन्दन चल्ला उठा

' तुम्हारे दिमाग म वह लडकी भूत बनकर बैठ गयी है। कुछ नहीं होगा, उन लोगो को। चलो, उठाओ झोला। हम लोग सामने, मकई के खेत मे छिप जाए।'

उन लोगो का अनुमान सही था। एक ट्रक, किसान के दरवाजे से कुछ ही दूर, सडक पर आकर रुक गया। मकई के खेत से [illegible] देखा, सात आठ पुलिस ट्रक से कूदकर नीचे उतर आये। ड्राइवर की बगल

धिक्कार है, हमपर। क्या है हमारा उद्देश्य ? कहा ह उद्देश्य ?" इतना कहकर वह धीरे धीरे आगे खिसकने लगा। उसन जेब से पिस्तौल निकाल ली थी। उसके साथी उसे रोकने की हिम्मत नही कर सके और वे भी उसके पीछे पीछे आगे की तरफ खिसकने लगे। विवेकानन्द न सुना, किसान गिडगिडाकर कुछ कह रहा था। अपनी टूटी फूटी हिन्दी मे कोई गाली बक रहा था। निश्चय ही यह आदमी अंग्रेज होगा। विवेकानन्द को समझते देर नही लगी। तभी तीन बार घर के भीतर गोलिया छूटने की फिर आवाज आयी। अब तक विवेकानन्द खेत के किनारे तक पहुच चुका था। सामने लगभग तीन चार हाथ तक मक्ई के पौधे लगे हुए थे। विवेकानन्द ने अपने साथियो को दायें-बायें फैल जाने और इशारा मिलने पर कारवाई करने का आदेश दिया। जिस समय उसके साथी उसके आदेश का पालन करने के लिए दायें बायें बढ रहे थे, उसी समय घर के भीतर अजीब तरह की खामोशी का अनुभव करते ही विवेकानन्द आशकाओ से भर उठा। पुष्पा की हसती थिरकती छवि उसकी आखो के आगे तैर गयी। अचानक ही विवेकानन्द की आखो मे खून उतर आया। घर के बाहर तीन स्थलो पर तीन जवान चौकन्ना होकर पहरा कदमी कर रहे थे। उनके कधो पर राइफल लटक रही थी। विवेकानन्द ने निशाना लिया और वे तीनो सभले-सभलें तब तक बडी तेजी के साथ विवेकानन्द की पिस्तौल से तीन गोलिया निकली और वे तीनो धराशायी हो गए।

गोलियो की आवाज सुनते ही भीतर के फौजी दौडते हुए बाहर आए। उसी समय खेत की ओर से एकसाथ गोलिया छूटने लगीं। फौजी जान बचाकर ट्रक की ओर भागे। घबराहट के मारे उन्हें लगा, जैसे मक्ई के खेत मे दर्जनो क्रान्तिकारी छिपे हुए हैं। भागने म भ्रम म दो फौजी गोली खाकर गिर पड़े। उनके अफसर ने उस समय अपने जवानो की लाश तक बटोरने की चिन्ता नही की। वह ट्रक पर बैठकर बचे हुए जवानो के साथ भाग खड़ा हुआ।

देखते-देखते ट्रक की रोशनी आखो से ओझल हो गयी। विवेकानन्द दौडता हुआ किसान के घर म घुसा और वहा का दृश्य देखकर काठ बना

खडा का खडा रह गया। सामने पुष्पा अद्ध नग्न दशा मे मृतप्राय पडी थी। विवेकानन्द को होश आया तो उसने झुककर उसके वस्त्र ठीक कर दिए। पुष्पा का सिर बरामदे पर रखे सिल बट्टे पर गिरा था। उसके सिर से बहुत सारा खून निकलकर जम गया था। उसकी आखे उलट गयी थी। विवेकानन्द ने उसकी नाक के पास अपनी हथेली रखी और वह समझ गया कि या तो यह मर चुकी है या कुछ देर मे मर जाएगी। तब तक उसके तीना साथी भी वहा आ पहुचे थे। टाच जलाकर उन लोगो ने देखा, किसान और उसका बेटा गोली खाकर आगन के दो किनारो पर पडे हुए थे। किसान की प्रौढा बीमार पत्नी कमरे के चौखट के पास पडी दम तोड रही थी। विवेकानन्द ने अपन साथियो से कहा

"तुम लोगो की कायरता के चलते यह घर बरबाद हो गया। अगर शुरू म ही हमन हमला कर दिया होता तो यह नौबत नही आती। न जाने ऐस कितन घर इन पिशाचो के हाथ बरबाद हो चुके है और आगे भी होगे।"

विवेकानन्द अतिम बात स्वगत भाषण के लहजे में बोला। उसकी आवाज बहुत धीमी थी लेकिन बहुत कठोर। जैस वह मन ही मन अपने नये सकल्प को अभिव्यक्ति दे रहा हो। वह जब अपने साथिया के साथ बाहर निकला, गाव के लोग तब तक जग पडे थे और ऐसा लग रहा था, जैसे वे लोग पुष्पा के घर की ओर बढ रहे हो। विवेकानन्द क्रोध से जल उठा। उसकी इच्छा हुई कि वह यही रुककर गाव वालो की प्रतीक्षा करे और जब वे करीब आए तो उन काहिलो, कायरो को भी भूनकर रख दे। पूरे गाव की आबादी चार हजार से कम नही होगी। फिर भी ये नपुसक पुष्पा के परिवार को इस प्रकार उजडते देखते रह। विवेकानन्द को अपने आपपर ग्लानि हुई। "कैसा अभागा देश है!" वह हाठो मे ही बुदबुदाने लगा

"माफ करना जन्म लेकर गोद मे, हिन्द की मिट्टी शरम आयी मुझे।"

२६

सुन्दर, गरम और भोली भाली पुष्पा के साथ हुए बर्बर अत्याचार और अनाचार ने विवेकानन्द की अन्तरात्मा को झकझोरकर रख दिया। पशुबल का उत्तर आत्मबल से कैसे दिया जा सकता है? जब विरोध में ऐसा हिंस पशु सामने खड़ा हो, जिसमें रक्त की प्यास और मांस की भूख अट्टहास कर रही हो, तब क्या अनुनय विनय से काम चल सकता है? आदमियत, न्याय और विवेक से शून्य शक्ति का सामना करने के लिए आत्मबल और बुद्धि के साथ-साथ शारीरिक शक्ति का होना भी अनिवार्य है। विवेकानन्द ने पिछले दिनों गांव-गांव घूमकर देखा था। कहीं भी गांधी जी के लिए आदर भाव की कमी नहीं थी। उनके नेतृत्व में आस्था भी थी। किन्तु सचाई यह भी थी कि हर आदमी एक ही सवाल करता था, सुभाष बाबू फौज लेकर कब आएंगे? दुखद स्थिति यह थी कि न तो सुभाष बाबू कहीं नजर आ रहे थे और न उनके आने की निश्चित सूचना ही देश में थी।

गांवों में सूनापन और सन्नाटा था। उस सूनेपन का कारण था, राक्षसी हुकूमत के दमनचक्र का आतंक! पुष्पा जैसी न जाने कितनी सुकुमार कलियां खिलने से पूर्व ही मसल दी जा चुकी थीं। बेकसूर किसान मौत के घाट उतारे जा रहे थे। हजारों जन जेलों में ठूस दिये गये थे। इनमें से कुछ मजबूरी में देशभक्त बन गए थे, और कुछ सचमुच ही देश के नाम पर कुछ कर गुजरना चाहते थे। कुल मिलाकर विवेकानन्द को लगा कि रेल-तार और सड़क काट डालने या डाकखाने जला देने से हुकूमत को दमन चक्र चलाने का बहाना मिल जाता है। इसका कुफल मिलता है निर्दोष व्यक्तियों को। इस स्थिति को उलट देने का प्रयत्न क्यों न किया जाए?

विवेकानन्द किशनपुर से अपने गांव जा पहुंचा। काफी रात हो चुकी थी। दिन की रोशनी में वह अपने घर जा भी नहीं सकता था। इसमें उसके पकड़ जाने का खतरा तो था ही, उसके माता, पिता और भाभी पर हुकूमत भयंकर अत्याचार भी कर सकती थी।

राघव बाबू दालान पर रखी चौकी पर लेटे हुए थे। ऐसे व्यक्ति की आंखों में नींद कहां, जिसके एक जवान पढ़े लिखे बेटे ने, कमसिन पत्नी के

रहते, आत्महत्या कर ली हो और जिसका दूसरा बेटा साम्राज्यवादी हुकूमत से लोहा लेने के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहा हो। हर तीसरे-चौथे दिन पुलिस अफसर के साथ फौज की टुकडी उनके घर आ धमकती थी। सत्यभामा और कांता को घर से भागकर खेत मे जा छिपना पडता था। सिपाही घर का कोना-कोना छान डालते, और इस चक्कर मे सारा सामान अस्त व्यस्त कर देते थे। अफसर राघव बाबू से बार-बार विवेकानन्द का अता पता पूछता और कोई निश्चित जवाब नही मिलने पर गालिया देता हुआ वापस चला जाता था।

विवेकानन्द जिस समय घर के भीतर पहुचा, कांता अपनी सास के पाव दबा रही थी। यह बात विवेक को अच्छी नही लगी। कांता को स्वय आराम, सहानुभूति और स्नेह की जरूरत थी। उसके जीवन का सर्वनाश हो चुका था। वह पूरी तरह स्वस्थ भी नही थी। ऐसी स्थिति मे, रात देर गए तक, उसे जगाए रखना और उससे पाव दबवाना सर्वथा अनुचित था। किंतु, वह कुछ बोला नही।

विवेकानन्द को देखते ही उसकी मा हुलसकर उसकी ओर दौड पडी। कांता भी अपने प्रमाद बाबू के प्रति स्नेह के अतिरेक से उत्साहित होकर उसकी ओर बढ़ी कि अचानक कुछ सोचकर वह बरामदे पर ही सहमकर खडी हो गयी। सत्यभामा अपने बेटे को गले से लगाकर बार-बार उसका मुख देखने और उसके चेहरे को हाथ से सहलाने लगी। उसने अचानक ही कांता को डपटकर कहा

"खडी-खडी मुह क्या देखती है? जरा लालटेन पास ले आना। अपने लाल को ठीक से देखकर अपनी आखें जुडा लू। न जाने, कैसा हो गया है मेरा बेटा।"

कांता लपककर लालटेन उठा लायी। विवेकानन्द ने झिलमिलाती रोशनी में कांता को देखा। उसका चेहरा पीला पड गया था। आखो के नीचे स्याही-सी पुत गयी थी। विवेक अनमना सा हो गया। उसने किंचित् उपेक्षा के स्वर मे मा से कहा, "जल्दी से चार आदमियो का खाना बना दो या बना हुआ हो, तो परोस दो। हम लोग रात रहते ही यहा से निकल जाएगे। पटने जाना है। वह भी पैदल। कुछ खजूर निमकी बनाकर रास्ते

के लिए दे दो।"

"अभी तो आया है और अभी जाने की भी बात करने लगा? क्यों रे प्रमोद, तुझे मा-बाप का मोह नही है?" सत्यभामा ने स्नेह से डपटकर कहा। विवेकानन्द ने अपनी भाभी की ओर देखते हुए कहा

"मोह तुम लोगों से है, तभी तो यहा रहना नही चाहता। रह गया तो तुरत दुश्मनो की टुकडी यहा आ धमकेगी। फिर तुम लोगो की खैरियत नही। मेरे भाग्य मे ऐसा ही लिखा है। घर रहते हुए बेघरबार की तरह रह रहा हू। स्पष्ट उद्देश्य के बावजूद अधेरे मे भटक रहा हू।"

कांता तुरत वहा से रसोई मे जा पहुची। उसने जल्दी से ढिबरी जला ली और भोजन तैयार करने के लिए सामान जुटाने मे व्यस्त हो गयी। विवेकानन्द का मन हुआ कि वह भाभी के काम मे हाथ बटाये। लेकिन ऐसा वह कर नही सका। सिर झुकाये झुकाये ही बोला

"मेरे तीन साथी घर के पिछवाडे लीची के पेड के पास हैं। मैं भी वही चलता हू। भोजन तैयार हो जाए, तो बुला लेना।"

"अरे, मेरे पास भी तो बैठ लो दो घडी। तुझे जी भरकर देख भी नही पायी हू।"

'उन्हें भी देखा करो मा, जिनकी ओर से भगवान ने मुह फेर लिया है। मेरी देखभाल के लिए तो पूरी हुकूमत बेचैन बैठी है।"

न जाने क्या बोलता रहता है। अरी कहा गयी जल्दी से पूरी तरकारी बना दे।" सत्यभामा ने हाथ चमकाकर कहा। विवेकानन्द वहा रुका नही। वह अपने साथी के पास चला आया। कृष्ण, रामानन्द और यदुवश लीची के पेड के नीचे नही, बल्कि डालियो पर बैठे थे। इन चारो ने तय कर लिया था कि पटने पहुचकर सगठन बनाना होगा। केवल रेल तार काटने से सरकार नहीं झुकेगी। लडाई लम्बी हो चुकी है। इसे योजना बनाकर जारी रखना होगा। जनमत तैयार करने के लिए और देश को जाग्रत् करने के लिए कुछ न कुछ करते रहना होगा। गश्ती चिट्ठिया, इश्तहार और पुस्तिकाए तैयार कर बाटना होगा। हुकूमत के दमन चक्र से उत्पन्न आतक का जवाब उन्हें आतकित करके ही देना होगा।

विवेकानन्द का अपने साथियो के साथ मुजफ्फरपुर, हाजीपुर होते हुए

पटने पहुचने मे सात रोज लग गए। तीन रोज मे भी पहुचा जा सकता था। लेकिन, मुजफ्फरपुर से आगे निकलते ही मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी। रेलवे लाइन के किनारे किनारे चल सकना खतरे से खाली नही था। पुलिस या फौज की टुकडी वहा गश्त लगाती रहती थी। इजन के साथ तीन चार डिब्बे जोडकर जाट रेजिमेण्ट या टामी (गोरे सिपाही) दो स्टेशनो के बीच चल निकलते थे। लाइन के इद गिद किसीको भी देखकर गोली मार दते थे। रेलवे लाइन के अहाते मे कर्फ्यू लगा हुआ था। वर्षा के कारण सडकें पानी मे डूब चुकी थी। तुर्की स्टेशन के आग विवेकान द को अपने साथियो के साथ एक मदिर मे दो दिन बिताना पडा था।

पहलेजा घाट पहुचने पर गगा पार करने की कठिन समस्या आ खडी हुई। ऊपर टीले पर से ही विवेकान द ने देखा, जेटी के पास वर्दीधारी पुलिस के कई जवान खडे थे। तीन चार अफसर भी दीख पडे। स्टीमर के यात्रिया की बडी सख्ती के साथ जाच पडताल की जा रही थी। विवेकान द और उसके साथियो के पास देशी पिस्तौले और कुछ बम थे। विवेकान द पुलिस के हाथो पडना नही चाहता था। गगा मे काफी पानी चढ आया था, इसलिए छोटी नाव से उसे पार कर सकना सम्भव नही था।

"अब क्या किया जाए?" रामन दन ने चि तातुर होकर पूछा। जवाब दिया कृष्ण ने

"सबसे पहले यह किया जाए कि हम लोग स्टेशन के पीछे वाले बाजार मे चलें। हमारी वेश भूषा देखकर हा मूख लोग हमे घर दबाचेंगे।"

"सचमुच ही मेरे मामू रेलवे पुलिस के दारोगा हैं।" यदुवश खुशी के मारे लगभग चीख सा उठा। विवेकान द ने डाटा, "चिल्लाते क्यो हो। लोग हमारी तरफ देख रहे हैं।"

चारो साथी असामा य रूप से सामा य बनकर बाजार की तरफ चुपचाप चल पडे। यदुवश की बात सुनकर तीनो म आशा बलवती हो उठी।

यदुवश के मामू छोटे दारोगा के रूप मे रेलवे पुलिस म काम करते थे। पिछले साल कार्तिक मे वह अपने पिता के साथ गगा स्नान करने आया था। उस समय वे यही नियुक्त थे। वे चक्सलेम के रहने वाले थे। अधेरे मे

आशा की किरण देखकर सभी साथी प्रसन्न हो उठे थे। यदि मामू मिल जाए तो तलाशी के बगैर गगा के पार पहुचा जा सकता था। यह सोचकर वे लोग छोटे दारोगा की तलाश मे गगा किनारे से पहलेजा घाट स्टेशन की ओर चल पडे।

"बाजार मे किसी शरीफ आदमी से पहले पूछ लिया जाए कि क्या यदुवश, क्या नाम है तुम्हारे मामू का?" विवेकानन्द ने अपनी बात बीच मे ही स्वय काटकर पूछा। यदुवश न कहा

"महावीर ठाकुर।"

"हा, तुम स्वय किसीसे पूछ आओ कि महावीर ठाकुर दारोगा का डेरा किधर है। तुम्हारा ही चेहरा शरीफ जैसा दीखता है। रामनन्दन और कृष्ण की दाढी इतनी बढ आयी है कि बस, इनके हाथ मे छुरा पकडा देने की देर है।"

सभी साथी खिलखिलाकर हस पडे। यदुवश अपने साथियो को प्लेटफाम पर ही छोडकर बाजार चला गया। मामू को ढूढने में दिक्कत नही हुई। छोटी सी जगह मे दारोगा जी को भला कौन नही जानता था।

दूसरे दिन लगभग ग्यारह बजे वे लोग पटने पहुचे। सुमन का कमरा खाली था। विवेकानन्द ने अपने तीनो साथियो को वहीं ठहरा दिया। वह खुद कभी अपन मामा के यहा, तो कभी विजय के यहा और कभी-कभार सुमन के डेरे म आकर ठहर जाया करता था। साधारणतया वे लोग दिन मे बाहर नही निकलते थे। शहर मे चारा तरफ पुलिस और फौज की टुकडिया गश्त लगाती रहती थी। पटना सचिवालय पर तिरगा झडा फहराने वाले नौजवानो की हत्या के बाद शहर में आक्रोश और आतक का साम्राज्य छाया हुआ था। पुलिस जनता से डरी रहती थी और जनता पुलिस और फौज से सहमी सहमी समय काट रही थी।

विवेकानन्द ने क्रातिकारी दस्ते के बचे हुए सदस्या से सम्पक स्थापित किया। सगठन के पास पस का अभाव था। कोई सेठ या धनी आदमी किसी क्रातिकारी सगठन, यहा तक कि काग्रेसी आदोलनकारियो को भी, खुले आम मदद नही करता था। विवेकानन्द एमे बहुत-से लागा को जानता था जो सन् १९३९ म काग्रेसी मत्रिया के इद गिद चक्कर काटकर देशभक्ता म

नाम लिखवाना चाहते थे। उसे यह देखकर घोर निराशा हुई कि ऐसे लोगो मे से अधिकाश ने गाधी टोपी उतार फेंकी थी और कुछ ने तो डर के मारे खादी पहनना भी छोड दिया था। विवेकानन्द को जहा इस बात से निराशा और पीडा हुई, वही उसे सफलता का माग भी नजर आया। वह समझ गया कि ये लोग कायर हैं। वे कभी नही चाहेंगे कि मैं इनके घर बार बार जाऊ। इसलिए ये लोग डरकर एक दो चक्कर मारने पर ही पैसे दे देंगे। उसका अनुमान सही निकला। वह ज्योही ऐसे लोगो के पास पहुचकर स्वाधीनता-सग्राम म दिशा निर्देश देने या रुपये पैसे से मदद करने का सवाल उठाता, वे लोग घबडाकर कहते

"भाई, जोश मे होश मत खो बैठिए। बापू सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं। वह कतई पसन्द नही करेंगे कि आप लोग रेल-तार काटें, पुलिस चौकियो पर हमला करें और डाकखानो मे आग लगा दें। यह प्राथना का समय है। गाधी जी जब पहले गोलमेज सम्मेलन से विफल होकर बम्बई लौटे थे जनता यह जानने को उमड पडी थी कि औपनिवेशिक स्वराज्य का क्या बना ? तब गाधी जी ने उस समय भी केवल प्राथना ही करवायी थी।"

"मुझे मालूम है। लेकिन, उस प्राथना-सभा मे गाधी जी उपस्थित थे और उनके दशनो के लिए हजारो की भीड उमड पडी थी। आज किसे देखने के लिए भीड आएगी ? आप शामिल होंगे प्राथना-सभा मे ?"

"कैसी बात करते हैं आप ? शहर मे तो एक सौ चौवालीस लगी है। इसे कर्फ्यू ही समझिए क्योंकि भीड देखते ही गोली मार देन का आदेश है।"

"फिर क्या किया जाए ? घर मे बैठकर माला जपी जाए ?"

"और कर ही क्या सकते हैं ? हा, कुछ इश्तिहार वगैरह छाप कर ।"

"उसके लिए पैसा चाहिए।"

"उसके लिए मैं हाजिर हू। लेकिन इस तरह खुले आम मरे घर न आया कीजिए। पुलिस दख लेगी तो आपके साथ साथ मरी भी खैरियत नहीं।"

ऐसे हुकूमत-भीरु तथाकथित नेताओ को देखकर विवेकानन्द सोचता कि कल जब देश आजाद हो जाएगा तो इनके हाथ मे पडकर वह किस रूप मे प्रकट होगा ? ये लोग ही, सन् १९३९ मे मत्रियो और नेताओ के आस पास मडराया करते थे, और फिर यही लोग, आजादी मिलने पर, दिल्ली के मत्रियो और नेताओ के इद गिद घेरा डाल देंगे। ऐसे कायरों,बेईमानो और स्वार्थियो की घेराबन्दी मे पडकर निश्चय ही स्वाधीन भारत का मत्र तत्र विकृत हो जाएगा।

बहरहाल, कुछ पस बटोरकर विवेकानन्द ने अपना काम शुरू कर दिया। उसने साइक्लोस्टाइल करने वाली तीन मशीनें खरीद ली। चौधरी टोला, चिरैयाटाड और बाकीपुर मे गलियो के भीतर तीन कमरे ले लिए। उसके गुप्त क्रातिकारी सगठन का काम चल निकला। रातो रात दीवालो पर इश्तहार चिपका दिए जाते थे। गश्ती चिट्ठिया बडी होशियारी के साथ वितरित की जाती थी। बहुत से लीफलेट साइक्लोस्टाइल करके शहर मे ही नही, गाव गाव म पहुचा दिए जाते थे। धीरे धीरे उसके सगठन मे सदस्यो की सख्या चालीस पचास तक जा पहुची। हफ्ते मे एक बार इन लोगो की बैठक होती थी।

उस दिन बैठक का आयोजन कुम्हरार म किया गया था। विवेकानन्द को वहा पहुचने मे कुछ देर हो गयी थी। इसलिए वह बैठक म पहुचकर सकोच से गडा जा रहा था। उसने वहा उपस्थित सभी लोगो को देखे बगैर अपनी बात शुरू कर दी

"इश्तहारो का प्रभाव शहरो म अच्छा पडता है। हुकूमत घबरा उठती है। जनता उसे पढकर आश्चर्यचकित हो जाती है। पुस्तिकाए बाटकर भी लोगो को हम जगाए रख रहे हैं। लेकिन, हम जानते हैं कि गावो मे फिर शिथिलता आने लगी है। लोग छुप छुपकर बर्लिन रेडियो जरूर सुनते है, अग्रेजी फौज की हार की खबर सुन सुनकर लोग खुश भी होते है लेकिन सवाल यह उठता है कि क्या इस तरह हम अपनी मजिल पर पहुच सकेंगे ? हमारी मजिल है पूरी आजादी। जमन सेना ईरान, अफगानिस्तान, इराक की राह यदि पजाब मे पहुच जाए और जापानी सेना यदि बर्मा की राह इम्फाल म पहुच जाय तो क्या हम आजाद हो जायेंगे ? हम कसे मान लें

कि अंग्रेजों के हाथ से हुकूमत की बागडोर छीनकर जापान या जर्मनी के बादशाह और तानाशाह उसे हमारे हाथों में सौंप देंगे ? इसलिए हमें सतर्क रहना है। अपनी इन भुजाओं का ही भरोसा रखना है। बाहरी परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए भी आवश्यक है कि हम अपनी शक्ति संगठित करें। इसके लिए, गुप्त ढंग से आन्दोलन करने के साथ साथ, मौका देख कर हमें जुलूस और प्रदर्शन भी आयोजित करने चाहिए। दो अक्तूबर का दिन करीब आ रहा है। सभी प्रमुख शहरों में हर साल की तरह इस बार भी दो अक्तूबर को गांधी जयन्ती मनाने के लिए जुलूस निकालना चाहिए, वरना हुकूमत सोचेगी कि हम मुरदा कौम हैं। हम लोग प्रमुख शहर आपस में बांट लें। मैं मुजफ्फरपुर में अपने चार साथियों के साथ सरैयागंज में यह जुलूस निकालूंगा। आप लोग भी अपनी-अपनी इच्छा बता दीजिए। इसके अतिरिक्त, यहीं कहीं, अत्याचारी फौजियों का दिमाग ठीक करने के लिए ईंट का जवाब पत्थर से देने का प्रभावशाली कार्यक्रम भी बनाना चाहिए । इसके आगे वह कुछ बोल नहीं सका, क्योंकि उसकी नजर दाहिनी तरफ कोने में बैठी नारीमूर्ति पर जा चुकी थी। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। मछुआ टोली से चलकर छाया इतनी दूर कैसे चली आयी ? इस बैठक में शामिल सभी व्यक्तियों की पूरी जांच पड़ताल करके ही उन्हें सदस्य बनाया गया था। फिर छाया यहां कैसे आ पहुंची ? यह तो इस संगठन की सदस्य नहीं है। बैठक की सूचना केवल सदस्यों को थी।

विवेकानन्द ने अपनी बात वहीं खत्म कर दी। कुछ देर तक विचार विमर्श होने के बाद कार्यक्रम निश्चित किया गया। बैठक समाप्त होने पर उसने अपने साथियों से विदा ली और वह छाया की तरफ बढ़ा। छाया भी उसीका इन्तजार कर रही थी। विवेकानन्द ने जिज्ञासा की

"तुम यहां, इस बैठक में कैसे आ गयी ?"

"विजय बाबू से तो आप मिलते ही रहते हैं। मैं ठहरी हुकूमत की खैरख्वाह। खैर, विजय बाबू से ही मुझे आज की बैठक की सूचना मिली थी। मैं कई रोज से आपकी तलाश कर रही थी। छः-सात बार विजय बाबू के घर गयी। लेकिन, आपसे भेंट न हुई। आप शायद विजय बाबू से

नाराज हो रहे है कि उन्होने क्यो मुझे आपकी गुप्त बैठक की सूचना दे दी ? बात यह है कि शायद मेरी आकुलता देखकर ही उन्होने आपका गोपनीय रहस्य प्रकट कर दिया।" छाया ने तिरछी नजर से विवेकानन्द की ओर देखा। उन आखो मे व्याकुलता कम थी और व्यग्य अधिक। विवेकानन्द छाया के विचारो से काफी हद तक परिचित था। उसने बात का रुख मोडने के ख्याल से कहा

"कोई बात नही। आ गयी, तो ठीक ही किया। लेकिन यहा तक आयी कैसे ?"

"रिक्शा से। क्यो ? इत्मीनान रखो। मैं मुखबिर नहीं बनूगी।"

विवेकानन्द हसने लगा। उसने जल्दी से रामनन्दन के साथ कुछ बात चीत की और फिर छाया को लेकर चल पडा। सडक पर पहुचते ही उन दोनो को रिक्शा मिल गया। विवेकानन्द ने रिक्शे की छतरी चढा दी ताकि सडक से आने जाने वालो की नजरें उसे पहचान न पाए। कुछ देर बाद छाया ने पूछा

"जापान और जर्मन सेना पर तुम विश्वास नही करते। तुम्हारे पास लडने के लिए हथियार नही है। गाधी जी के शातिपूर्ण जुलूस और सत्याग्रह मे तुम्हारी आस्था नही। फिर तुम किस बूते पर चल रहे हो ?"

'यह युग हवाई जहाज का है, रेल गाडी का है, मोटरकार का है किंतु यदि किसी कारण से हम उनका उपयोग नही कर पायें, साथ ही गन्तव्य स्थान पर पहुचना ही हो, तो क्या करना चाहिए ? ऐसी स्थिति मे पैदल या बैलगाडी का सहारा लेना क्या मूर्खता है ? जो कुछ हमारे पास उपलब्ध है, उसीके सहारे हम चलते रहना है, आगे बढना है।"

"तुम्हारा साहस स्तुत्य है। लेकिन, उद्देश्य की सिद्धि के लिए साधन की ईमानदारी भी चाहिए। ईमानदारी हर हालत में जरूरी है। जिस चीज मे तुम विश्वास नही करते, उसीका सहारा लेकर अपना उद्देश्य सिद्ध करना चाहते हो यह क्या अपने-आपको धोखा देना नही है ?'

"हमारा उद्देश्य महान है। उसे प्राप्त करना आसान नहीं है। खास कर ऐसी स्थिति मे जबकि हम बटे हुए हैं। फिर क्या किया जाए ? मैं जानता हू कि जिस चीज मे मेरा विश्वास है, वह चीज हमे उपलब्ध नहीं है

और जिस चीज मे विश्वास नही है उसका सहारा हम एक महान के रूप मे ले रहे हैं। सत्याग्रह या जुलूस के लिए भी अपूव एकता और अखड आस्था आवश्यक है। व्यक्ति मे गुण पाए जा सकते हैं किन्तु समूह का सवाल उठते ही विभिन्न स्वाथ टकराने लगते हैं। तुम यह तो मानोगी कि विभिन्न स्वाथ वाले लोग भी आजादी चाहते है। यह जरूर है कि उनकी आजादी का अथ कुछ और है। महात्मा गाधी जैसे साधक और सत्यनिष्ठ भी भली भाति जानते हैं कि उनके सहयोगिया म स्वार्थों का आपसी टकराव है। फिर भी गाधी जी उन्हें साथ चलने का मौका देते हैं। क्यो? जीवनपयन्त सत्य का प्रयोग करने वाला तपस्वी अपने इर्द गिद केवल ईमानदारो को ही क्यो नही पनपने देता? क्योकि वह उनके सुधार मे विश्वास करता है। यह विश्वास अपने-आपम महान है।"

'तुम कहते हो तो चुप हो जाती हू। किंतु, मेरा मन इसे स्वीकार नही करता। तुम युद्ध की नीति पर चलने के लिए सत्याग्रह, जुलूस और प्रदशन की आड लेना चाहते हो। यह शिखडीवाद यदि कायम रह गया तो स्वाधीनता मिलने के बाद भी हमारा देश दिग्भ्रमित ही रह जाएगा। अनास्था के हाथ म आस्था का दीप टिक नही सकता। वह दीप धारण करने वाले की ही देह पर गिरकर विनाश उपस्थित कर सकता है। मुझे लगता है, देश के नेता अवसर मिलन पर लम्बी अवधि तक, सत्य और अहिंसा की ओट म, अपन स्वाथ और लोलुपता की तुष्टि करते रहेंगे।'

विवेकानन्द कोई उत्तर नही दे सका। उसे छाया की बातो मे सच्चाई की झलक मिली। गाधी जी के बहुत-स तथाकथित अनुयायिया से वह आए दिन मिला करता था। वह यह जानता था कि देश न तो खूनी क्रांति के लिए तैयार है और न ही एकजुट होकर निष्ठापूवक सत्याग्रह के लिए ही तैयार है। उसके देशवासी, विचार के धरातल पर, अनन्तकाल से अत्यधिक स्वतत्र रहे है। मत मतान्तर का यहा बोलबाला रहा है। कथनी-करनी म आकाश पाताल का अन्तर बनाए रखना हमारे रक्त म है। विभिन्न पथ और समुदाय एक दूसरे से होड लेने म ही अपने दशन और सिद्धान्त की इतिश्री समझते रहे हैं। राजनीतिक क्षेत्र म भी यही होना था और यही होगा भी। विवेकानन्द ने इस द्वन्द्व से मुक्ति पाने के लिए छाया से पूछा

"तुम्हारे पिताजी नाराज नहीं होंगे ? क्या उनसे अनुमति लेकर आयी हो ?"

"अनुमति का प्रश्न कहा उठता है ? वे सरकारी वकील हैं—हुकूमत के खैरख्वाह। मुझसे अब बर्दाश्त नहीं होगा। देश में आग लगी हुई है। उसकी लपटें मुझे भी छूती हैं। या तो आग बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए या इससे बाहर निकलने की राह ढूढ़नी चाहिए। और अपनी राह आप बनानी पड़ती है, जिसके लिए अनुमति की जरूरत नहीं है।"

छाया सक्रिय रूप से विवेकानन्द के कार्यक्रम में हिस्सा लेने लगी। बेशक वह हिंसक कार्यों में विश्वास नहीं करती थी, इसलिए वह इश्तहार लिखने, पुस्तिका तैयार करने आदि में ही योग देने लगी। चन्द रोज के बाद वह विवेकानन्द के साथ बाहर जाने के लिए भी उतावली हो उठी। विवेक इसके लिए तैयार नहीं था। उसने कहा

"मेरे पीछे पुलिस पड़ी रहती है। मालूम नहीं, कब और कहा पुलिस के साथ सामना हो जाए। तुम जानती ही हो कि मैं सत्याग्रही ही नहीं हू। मौका पड़ने पर गोली का जवाब गोली से दे सकता हू। ऐसी हालत में मेरे साथ बाहर चलना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"

इस बात को लेकर उसमें और छाया में बार बार वाद विवाद होने लगा। कभी कभी तनाव की भी स्थिति आ जाती थी। गनीमत यह हुई कि दो अक्तूबर को विवेकानन्द अपने दो साथियों के साथ मुजफ्फरपुर में, सरैयागज चौक पर, गाधी जयन्ती का जुलूस निकालने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। छाया निराश हो गयी।

मुजफ्फरपुर में विवेकानन्द छद्म नाम से गिरफ्तार हुआ। जुलूस निकालने के पहले, वह उस शहर के एक बड़े काग्रेसी नेता, विश्वेश्वर नारायण सिंह से मिलने गया था। सिंह साहब तीन भाई थे। तीनों भाई तीन प्रमुख दलों से सम्बद्ध थे। सबसे छोटे विश्वेश्वर नारायण सिंह थे। दूसरे हिन्दू महासभा में और तीसरे अग्रेजों के खास सिपहसालार थे। उन्हें हुकूमत ने 'सर' (नाइटहुड) की उपाधि से विभूषित किया था। सिंह साहब को अपने 'सर' भाई से ही मालूम हो गया था कि बम्बई में सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया जाएगा। इसलिए वह बम्बई सम्मेलन में, अ०भा०क०कमि

अस्वस्थता के कारण, शामिल होने नहीं जा सके। इन दिनों उनके पास बहुत बड़ी एजेंसी का काम था। गांधी टोपी उतारकर उन्होंने उसे 'सेफ' में बंद कर दिया था। खुला मैदान साफ देखकर वे खुलकर कागज की काला-बाजारी करने लगे।

विवेकानन्द चाहता था कि जुलूस में कम से कम पचास साठ आदमी शामिल हों। विश्वेश्वर बाबू मुजफ्फरपुर जिले के ही नहीं दरभंगा जिले के भी नेता थे। उनकी प्रेरणा पर पचास तो क्या सामान्य स्थिति में पांच हजार आदमी एकत्र हो सकते थे। चूंकि स्थिति असामान्य थी और शहर में पुलिस ही नहीं, फौज की टुकड़ी बख्तरबन्द गाड़ी में गश्त लगा रही थी, इसलिए सौ-दो सौ आदमी तो एकत्र हो ही सकते थे।

सुबह का समय था। विश्वेश्वर बाबू नाश्ता कर बैठे थे। उनके साथ उनके कुछ रिश्तेदार और शहर के दो-तीन प्रमुख व्यक्ति भी बैठे हुए थे। विवेकानन्द इससे पहले भी उनसे छह सात बार मिल चुका था। फिर भी विश्वेश्वर बाबू से उसकी भेंट आसानी से नहीं हो सकी। बाहर खड़े दरबान के हाथ उसने अपने नाम का चिट भेजा, जिसे पढ़ते ही सिंह साहब इस तरह चौंक उठे, जैसे उन्होंने अपने कुर्ते की बांह के भीतर सांप चढ़ते देख लिया हो। वे अपने मित्रों को कुछ बताये बगैर जल्दी से उठकर बगल के कमरे में चले गए, जहां विवेकानन्द को देखते ही वे एक तरह से उबल पड़े

"देखो विवेक, मैं जानता हूं कि तुम देश के सच्चे सिपाही हो लेकिन अनुशासन की सबसे अधिक जरूरत सिपाही को होती है। जब जहां चाहा, वहां जा पहुंचे, यह ठीक बात नहीं है।'

"बात यह है विश्वेश्वर बाबू कि तीन दिन बाद दो अक्तूबर है ।"

"इसकी जानकारी क्या मुझे तुमसे लेनी पड़ेगी ?" विश्वेश्वर बाबू ने बीच में ही बात काटते हुए कहा

"मैं पिछले बारह साल से गांधी जी के नेतृत्व में काम कर रहा हूं। मैं यह कह रहा था कि बिना पूर्व सूचना दिए तुम्हें यहां नहीं आना चाहिए था। मैं यहां घर पर किसीसे नहीं मिलता। मेरा दफ्तर शहर में है। वहीं आकर मिलो। मुझे मालूम है कि तुम्हारे नाम वारंट है। मैं नहीं

चाहता कि पुलिस तुम्हें मेरे यहा गिरफ्तार कर ले। मुझे बेकार ही कलक लग जाएगा।"

"मुझे गिरफ्तारी की चिंता नही है। दो अक्तूबर को गिरफ्तार तो होना ही है। मैं यहा जुलूस निकालने आया हू। मैं चाहता हू कि आप जुलूस का नेतृत्व करें और ऐसी व्यवस्था करें कि जुलूस मे सौ डेढ़ सौ आदमी अवश्य शामिल हो।"

"तुम्हारा दिमाग खराब है। सब लोग जेल म बद कर दिए गए। बाहर कोई बच नही रहा है जो जनक्रांति को दिशा निर्देश दे सके। उधर बिहार के अतिम छोर पर चम्पारण जिले मे बनवारी बाबू बचे हैं और इधर मैं। तुम चाहते हो कि मैं भी जेल मे बद कर दिया जाऊ और इस पूरे इलाके का आदोलन ठप्प पड जाए? नही, नही, यह ठीक नही होगा। तुम बेशक जुलूस निकालो। तुम्हें और तुम्हारे साथियो को मदद चाहिए तो पच्चीस-पचास रुपये भी मुझसे ले जाओ। इसके बाद मुझसे मिलने की भी कोशिश मत करना। मेरे घर पर पुलिस की नजर है, समझे?" यह कहकर विश्वेश्वर बाबू ने जेब स तीस रुपय निकालकर विवेकानन्द की ओर बढा दिए।

"धन्यवाद। मुझे आपके रुपये नही चाहिए। एक तकलीफ जरूर दूगा। यह झोला आपके यहा रखे जाता हू। इसमे कुछ जरूरी सामान है। आपको मालूम तो हो ही जाएगा कि मैं गिरफ्तार कर लिया गया हू। मरी गिरफ्तारी की सूचना मेरे पिता के पास पहुचाने की व्यवस्था कर दीजिएगा और यह झाला किसी गुप्त स्थान पर स्वय रख दीजिएगा। इसम पिस्तौल ।"

"ठीक है, ठीक है। झाला मुझे दे दो और तुम जाओ।" विश्वश्वर बाबू ने झोले को इस तरह पकडा जैसे उसमे कोई घिनौनी वस्तु हो। विवेकानन्द चुपचाप बाहर निकल गया।

विवेकानन्द को ठीक सरैयागज चौक पर रामनन्दन और रघुवश के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। हर साल दो अक्तूबर मनाने वाले मुजफ्फर पुर निवासी मूक दर्शक की तरह खडे देखते रहे। प्राण भय ने उन सबका स्वाभिमान समाप्त कर दिया था। वैशाली का जो शौर्य वीरता और

निर्भीकता के लिए, लिच्छवियों और वज्जियों के गणतन्त्र के समय, विख्यात था, वही क्षेत्र सन् बयालीस की दो अक्टूबर के जुलूस में अपना एक नागरिक भी शामिल नहीं करा सका। उस दिन विवेकानन्द को लगा कि यह देश स्वतन्त्रता पाने योग्य नहीं है। यहां के निवासी राष्ट्रीय सकट के समय भी स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बेचैन रहते हैं। इनकी जीभ बहुत लम्बी है और दिल बहुत छोटा। यह विश्वेश्वर नारायण सिंह और इसके जैसे अनेक स्वार्थी नेता इतने अवसरवादी हैं कि यदि कहीं भाग्य से इस देश को स्वाधीनता मिल गयी तो ये लोग अपना हित साधन के लिए स्वतन्त्रता तक को बेच देने में सकोच नहीं करेंगे।

महीने भर बाद विवेकानन्द और यदुवश को बार्जो साहब की अदालत में १५-१५ बेंत की और रामनन्दन को २० बेंत की सजा सुनाई गयी। मुजफ्फरपुर जेल के भीतरी और बाहरी दरवाजों के बीच की जगह में—टिकटी पर बाधकर इन तीनों को सजा दे देने के बाद छोड़ दिया गया।

जेल से छूटने के बाद विवेकानन्द को मालूम हुआ कि विश्वेश्वर बाबू ने उनके पिता के पास कोई सूचना नहीं भेजी। उसने स्वय उनके यहा जाना उचित नहीं समझा था। यदुवश को भेजकर उसने अपना झोला मगवा लिया और पटने की राह पकड़ी।

इस बीच देश जहा का तहा था। गाधी जी अपने साथियों के साथ जेल में बन्द थे। जयप्रकाश नारायण, प्रसिद्ध क्रातिकारी योगेन्द्र शुक्ल की सहायता से, हजारीबाग जेल से निकल भागने में सफल हो गए थे। पुलिस परेशान थी उनकी तलाश में। किसान मकई की फसल काटकर जौ-गेहू बोने की तैयारी में लग गये थे। शोर था कि सुभाषचन्द्र बोस नये सिरे से आजाद हिन्द फौज का सगठन कर रहे हैं। जल्द ही वह फौज बर्मा से आगे भारत की ओर चल पड़ने वाली है। अग्रेजी साम्राज्य का सूर्य डूबने ही वाला है। पर्ल हार्बर के पतन के बाद अमेरिका ही नहीं इग्लैंड की कमर भी टूट चुकी थी। पस्तहिम्मत साम्राज्यवादियों को होना चाहिए था। लेकिन हो रहे थे भारत निवासी। भारत की जेलें भर चुकी थीं।

विवेकानन्द ने मामा जी के यहा ठहरना अब उचित नहीं समझा। वे तो सरकारी नौकरी से इस्तीफा तक देने को तैयार हो गये थे, लेकिन मामी

ने उन्हें रोक दिया। घर पर कुल पांच बीघा जमीन थी। जीवन भर ईमानदारी से नौकरी करते रहे थे। नतीजा यह हुआ कि वे बुढ़ापे के लिए दो पैसा जोड़ भी नहीं पाये। इस्तीफा देकर फटेहाली में पड़ जाते। यदि विवेकानन्द उनके यहां ठहरता तो वह खामखाह उसे देख-देखकर दुःखी होते रहते और उनकी नौकरी पर खतरा रहता, सो अलग। विवेकानन्द कभी चिरैयाटाड़ में ठहर जाता तो कभी विजय के यहां सो रहता था। स्कूल कालेज बन्द थे। फिर भी विजय पटना छोड़कर गांव नहीं गया था। उसे शराब की और नग्मू के साथ की बुरी लत पड़ चुकी थी। गांव में यह मौज-मजा मिल नहीं सकता था।

आंदोलन शिथिल पड़ गया था। फिर भी धर-पकड़ जारी थी। सरकार को चक्कर में डाल देने के लिए कुछ लीफलेट और पोस्टर ही काफी थे।

विवेकानन्द चार-पांच रोज से छाया से मिल नहीं पाया था। उसे मालूम था कि आंदोलन में सहयोग देने के लिए छाया को अपने पिता की डांट फटकार रोज ही सुननी पड़ती है। ब्याजान्तर से वह जान गया था कि उसके पिता उससे चिढ़ते हैं। व नहीं चाहते कि उनकी बेटी उससे मिले-जुले। इसके बावजूद छाया विवेकानन्द से मिलने आया करती थी। घण्टे डेढ़ घण्टे निस्संकोच होकर उसके साथ बैठती थी, बातें करती थी। वह छाया की यह निर्भीकता देखकर मन ही मन अभिभूत हो उठता था। छाया के विचार से तो नहीं, उसके इस भाव से उसको अपार शक्ति मिलती थी।

कई रोज बीत गये। छाया नहीं आयी। विवेकानन्द कई प्रकार की आशंकाओं से प्रताड़ित होकर व्यग्र हो उठा। लड़की होकर छाया अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध उससे मिलने आया करती थी, और उससे इतना भी नहीं बन पड़ा कि उसके घर जाकर उसका हाल-समाचार मालूम कर ले। यही सब सोचकर वह शाम के समय, थोड़ा अंधेरा होने पर, छाया के बरामदे में जा खड़ा हुआ।

विवेकानन्द उम्मीद कर रहा था कि उसका नाम सुनते ही छाया भागती हुई बाहर चली आयगी। छाया को देखने के लिए उसकी आंखें

तरस गयी थी। क्या हो गया है उसे ? कैसी हो गयी होगी ? अवश्य ही वह अस्वस्थ हो गयी है। छाया को देखते ही मन ही मन वह निहाल हो जाएगा। किन्तु, ऊपरी मन से डपटकर पूछेगा, 'खोज खबर तक नहीं ली कि मैं जिन्दा हूं या मर गया हूं।' छाया आगे बढ़कर अपनी कोमल उंगलियों से उसके होंठ बन्द कर देगी। तुरंत विवेकानन्द को ख्याल आया, अवश्य कोई असामान्य बात हो गयी है, जिसके चलते वह अब तक बाहर नहीं निकल पायी है। विजय के यहां वह लुक छिपकर आता रहा है। *कई रोज से उसने छाया को बरामदे तक में नहीं देखा।* कहीं किसी असाध्य रोग से ग्रसित तो नहीं हो गयी ?

"कहिए! कैसा चल रहा है आपका स्वाधीनता संग्राम ?" सियावर बाबू को सामने देखकर विवेकानन्द धरती पर आ गिरा। उसने सकुचाते हुए कहा

"कोई काम नहीं चल रहा है। छाया ठीक तो है ?"

"ठीक ही है।"

"क्यों उसे कुछ ।"

"नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है। अचानक कमजोरी महसूस करने लगी है। इसलिए मैंने ही कहा है कि कुछ दिन घर में रहकर आराम करे। वैसे भी मैं आप लोगों की यह क्रांति क्रांति की बात पसन्द नहीं करता। पढ़ने लिखने की उम्र दुबारा लौटकर नहीं आती। गांधी जी आप लोगों का कैरियर चौपट करने पर तुल गए हैं।"

विवेकानन्द सन्न रह गया। वह सियावर बाबू के मन और प्रवृत्ति से परिचित तो हो गया था लेकिन वे इस सीमा तक बदल सकते हैं ऐसी कल्पना भी विवेकानन्द ने नहीं की थी। सियावर बाबू कांग्रेसी नेताओं और मंत्रियों के आगे पीछे लगे रहने में सिद्धहस्त थे। साथ ही वे अंग्रेज अफसरों के कृपापात्र बने रहने के लिए भी कोई कोर-कसर उठा नहीं रखते थे। उन्हें कांग्रेसी मंत्रियों की बदौलत बहुत कुछ प्राप्त हो चुका था, इसके बावजूद वे महात्मा गांधी को कोसने बैठ गए थे। कुछ देर तक विवेकानन्द समझ नहीं पाया कि वह क्या कहे ? अन्त में, विवाद से बचने के लिए संयत स्वर में छाया से मिलाने का निवेदन किया।

और सिपाही भीतर आ चुके थे। विजय के घर की तलाशी ली गयी, लेकिन वहा कुछ मिला नही।

विवेकानन्द को जब पुलिस की गाड़ी में बिठाया जा रहा था तब सियावर बाबू अपने घर की बाहरवाली कोठरी मे खडे खिडकी की ओट से उसीको देख रह थे। कमरे की बत्ती जली हुई थी। दूर से ही विवेकानन्द सियावर बाबू की सतुष्ट और प्रसन्न मुद्रा का आभास पा गया था। उसे यह समझते देर नही लगी कि पुलिस को बुलाने वाला कौन है।

२७

छाया की दशा विचित्र हो गयी। पिछले एक हफ्ते से वह भयकर मानसिक परिताप और सघर्ष मे पडी हुई थी। उसके पिता ने कह दिया था कि यदि वह क्रातिकारियो से, खासकर विवेकानन्द से, मिली तो वे जहर खा लेंगे। यह ऐसी स्थिति थी जिसे छाया न तो स्वीकार कर सकती थी और न नजर-अन्दाज कर सकती थी। वह जानती थी कि उसके पिता उसे बहुत प्यार करते हैं। अतिशय मोह के कारण ही वे छाया को राष्ट्रीय आदोलन से सम्बद्ध होने देना नही चाहते थे।

बाप-बेटी मे बार-बार वाद विवाद होता रहा था। दोना मे से कोई भी अपनी मान्यता से डिगने वाला नही था। छाया ने बरामदे तक पर निकलना छोड दिया। वह या तो अपने कमरे मे बैठी रहती थी या रसोई के काम में मा का हाथ बटाती थी। दो तीन दिन के भीतर ही उसमे घुटन का भाव इतना अधिक बढ गया कि वह बीमार-सी रहने लगी। उसकी भूख आधी रह गयी। सियावर बाबू ने उसकी इस स्थिति के लिए भी विवेकानन्द को दोषी पाया, वे उसके नाम तक से चिढ़ने लगे। उनकी यह चिढ क्रोध मे और क्रोध से प्रतिशोध मे बदल गयी। वे विवेकानन्द से खार खाकर बैठ गए। इधर छाया की दशा भी उनसे देखी नही जा रही थी। उन्होने कई बार कोशिश की कि वह अपनी सहेलियो के घर घूम फिर आए। मन बहल जाएगा। छाया टस से मस नही हुई। उसने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया

"पढ़ा लिखाकर आपने मुझे कहीं का नहीं रखा। आख देकर आप मुझे देखने से मना कर रहे हैं। बाहर जाने से क्या होगा ? जब मैं इच्छित और मनोनुकूल काम नहीं कर सकती तो घर में रहना ही अच्छा है। मैं वहीं नहीं जाऊंगी।"

छठे रोज विवेकानन्द खुद छाया की खोज-खबर लेने उसके घर आ पहुचा था। छाया को इसकी सूचना मिल चुकी थी। वह बाहर आकर उससे मिलने के लिए तैयार ही हो रही थी कि सियावर बाबू ने उसकी कोठरी के दरवाजे पर आकर कहा

"विवेकानन्द से नहीं मिलना है। तुम्हारे दिमागी खुराफात की जड मे यही उद्धत, अनुशासनहीन लडका है।"

अपने पिता की यह बात सुनकर छाया हतप्रभ-सी वठी की बैठी रह गयी थी। पिता का यह क्रूर व्यवहार कम दुखदायी नहीं था। फिर भी, वह खामोश रही।

रात बीतने पर उसने दूसरे कमरे से आती हुई आवाज सुनी। उसके पिता सरकारी वकील के कर्तव्य का निर्वाह करते हुए फोन पर पुलिस को बता रहे थे कि कुख्यात क्रांतिकारी विवेकानन्द उनके सामने वाले मकान म सो रहा है। छाया ग्लानि से भर उठी। उसकी इच्छा हुई कि धरती फट जाए और वह उसमे समा जाए। अब तक उसके पिता ने जो कुछ किया था, वह क्षम्य हो सकता था। लेकिन पुलिस को सूचना देकर उसके पिता न अपने मुह पर ही नहीं, पूरे खानदान और उसके मुख पर भी कालिख पोत दी थी। छाया कहीं की नहीं रही। उसकी इच्छा हुई कि वह अभी तुरत दौडती हुई जाकर विवेका को सावधान कर दे। इस बात पर यदि उसके पिता जहर खा लेते हैं, तो खा लें। देशद्रोही को जीवित रहने का कोई *अधिकार नहीं है।*

छाया सचमुच तैयार होकर अपने कमरे से बाहर निकल आयी। अचानक उसे विचार आया, वह किस मुह से विवेका को सावधान करेगी ? क्या कहेगी कि उसके पिता ने पुलिस को सूचना दी है ! क्या सोचेगा वह ? क्या समझेंगे विजय बाबू ? जिस देश के लाख से अधिक आदमी जेलो मे सड रहे हैं सैकडो नौजवान शहीद हो चुके हैं, बहुत-सी ललनाए वैधव्य

भोग रही हैं, उसी देश का एक पढ़ा लिखा समृद्ध निवासी, उसका पिता विदेशी हुकूमत की चापलूसी मे पतित जैसा कुकर्म कर बैठा है।

छाया के पाव रुक गए। इसके बाद जो कुछ हुआ, दूर खडी खडी वह देखती रही। उसे अपने पिता से घृणा हो गयी। वही घृणा लौटकर, उसके मन मे मैल बनकर लौट गयी। उसने सोचा, पिता को दोष देना व्यर्थ है। दोष तो उसका अपना है। यदि उसमे साहस और सकल्प होता तो क्या कोई उसे *राष्ट्रीय आदोलन मे शामिल होने या विवेका से मिलने मे* इतनी आसानी से बाधक बन जाता ! मन का यह भाव छाया को भीतर ही भीतर कुरेदने लगा। उसकी नीद और भूख मर गयी। उसने सचमुच ही बिस्तर पकड लिया।

सियावर बाबू चिंतित हो उठे। उन्होंने जो कुछ किया, अपनी बेटी का हित सोचकर ही किया। विवेकशून्य, सीमित प्रेम सबसे पहले मनुष्य की उदात्त भावना का हनन कर देता है। जो प्रेम मनुष्य मे विवेक नही उत्पन्न कर सके, जिससे उदात्त भावनाओ का उद्रेक नही हो, वह प्रेम प्रेम नही बल्कि मोह है, आसक्ति है। छाया की दशा देकर सियावर बाबू को अपनी भूल महसूस हुई। उन्होंने अपने विचार और दृष्टि के अनुरूप अनेक तक देकर छाया को समझाने की कोशिश की कि उन्होंने कोई ऐसा अपराध नही किया है जो अक्षम्य हो। छाया पर उनके तर्कों का कोई असर नही हुआ। निस्सन्देह उसने मा बाप की परेशानी देखकर दवा खाना शुरू कर दिया था। डाक्टर ने सलाह दी थी कि उसे गाव ले जाया जाए। जगह बदल जाने से मन बहल जाएगा। छाया गाव जाने को तयार नही हुई, क्योकि वहा चले जाने पर वह जान भी नही पाती कि विवेका का क्या हुआ ? एक दिन सियावर बाबू उसके कमरे मे बैठ गए। उनकी आखो मे कातरता झलक रही थी और उनका मुखमडल पश्चात्ताप के भाव से भरा हुआ था। कुर्सी पर बैठते हुए उन्होने छाया से कहा

"बिस्तर पर लेटे लेटे तुम्हें बारह चौदह रोज बीत चुके। इस कारण भी तुम स्वस्थ नहीं हो पा रही हो। मेरी बात मानो, बाहर जाकर घूम-फिर आओ। न हो, विजय बाबू के यहा ही चली जाओ।"

छाया ने विचित्र दृष्टि से अपने पिता की ओर देखा, जैसे कबूतर अपने

वधिक को देखता है। उसके होंठों की मुस्कराहट भी करुणतम हो रही थी। कोई तीसरा आदमी वहा मौजूद होता तो छाया को देखते ही समझ जाता कि वह समर्पित गाय है और सियावर बाबू मजबूर कसाई। सियावर बाबू ने अपनी बेटी को चुप देखकर थोडा आगे झुकते हुए कहा

"मुझे माफ नहीं कर दोगी ? मेरी नीयत बुरी नही थी। वकील हू न। कानून नीयत को देखता है, कम को नही। फिर भी, तुम्हारी दृष्टि मे मैं कसूरवार हू।"

छाया के मन का मैल धुल गया। तत्क्षण ही, उसे ख्याल आया कि विजय के यहा जाने पर ही विवेका का समाचार मिल सकता है और वह विजय के यहा जाने के लिए राजी हो गयी। वह अपने मन के भाव छिपाती हुई बोली

"ठीक है, बाबू जी। शाम के समय घूमकर आऊगी।"

बाप बेटी दोनो मन ही मन मुस्करा उठे। दोना की मुस्कराहटो का कारण भी अलग-अलग था। एक के मन में संतोष था और दूसरे के मन मे प्रायश्चित्त का भाव।

शाम के समय छाया अचानक ही विजय के फ्लैट म जा पहुची। उस समय विजय कही जाने की तैयारी कर रहा था। और उसी कमरे मे बैठा हुआ नग्गू जल्द से जल्द विजय को लेकर बाहर निकल जाने लिए बेचैन हो रहा था।

छाया को देखते ही विजय घबरा गया। वह उस समय नग्गू के साथ पटना सिटी जाने की तैयारी मे था। उसे उम्मीद नहीं थी कि विवेकानन्द के जैल जाने के बाद छाया उसके घर आएगी। छाया को देखने ही वह कुछ देर तक काठ बना खडा रहा। छाया ने ही पूछा

"माफ कीजिए, आपको तकलीफ देने आ पहुची।"

"अरे, नही, नही। यह तो मेरा सौभाग्य है। खडी क्यो हैं ? बठिए न।" विजय ने अपनी घबराहट छिपाते हुए कहा और एक कुर्सी सीधी करके उसपर बैठ जाने के लिए छाया से अनुरोध किया। वह कुर्सी पर बैठती हुई बोली, 'शायद आप लोग कही जाने की तैयारी मे है ?"

'जी ? जी हां नही, नही, ऐसा कोई खास कायक्रम नहीं है ।"

यह कहकर विजय ने नग्गू की ओर क्षमा मागने की मुद्रा मे देखा। नग्गू की छोटी छोटी आखें छाया के सुकुमार-सुदर अगो पर बारी-बारी से फिसलती जा रही थीं। उसके चेहरे पर भयानक भूख की चिपचिपी छाया तिर आयी थी।

"विवेका जी की कोई सूचना मिली ?" छाया ने नग्गू को नजर-अदाज करते हुए पूछा। नारियो मे पुरुषो की आखो की भाषा पढ़ लेने की अलौकिक शक्ति होती है। छाया की नजर मे नग्गू निहायत पशु था। उस समय विजय को भी नग्गू की उपस्थिति नागवार लग रही थी। उसने एक बार नग्गू को देखा और फिर छाया को। विजय से आख मिलते ही नग्गू ने अपनी एक आख दबा दी थी। विजय उस समय परेशान होकर इस प्रकार अपनी कुर्सी पर उछल पडा जैसे सुई चुभ गई हो। उसने जल्दी म कहा

"जी, नही । जी हा। अभी विवेका जी को स्टेशन के पास वाली जेल में रखा गया है। केस खुला नही है । लेकिन, आपके पिता जी को तो सब कुछ मालूम हागा।"

"इस विषय पर मैं उनसे बात नही करती। वह सरकारी वकील हैं और विवेका जी सरकार की नजर मे मुजरिम। कर्तव्य भी तो भिन्न स्थितियो मे विभिन्न परिभाषा ग्रहण कर लेता है।"

"बिल्कुल ठीक कहा, आपने ।" नग्गू ने खामखाह दाल भात म मूसलचद की तरह कूदते हुए कहा, "विचार और दृष्टिकोण भी अलग-अलग होते ह। लेकिन कुछ लोग है कि अपने विचार को ही सही समझने की जिद पकड लेते हैं। इसीसे जीने का सारा मजा किरकिरा हो जाता है। अरे भाई, दुनिया मे करोडो आदमी हैं, करोडो दिमाग हैं, करोडो आखें हैं। फिर एक विचार, एक दृष्टिकोण और एक ही तरह का कम कैसे हो सकता है ? अपनी-अपनी राह पर चलते चले जाओ, तो कभी क्लेश हो ही नही सकता। दो दिन की जिदगी है और उसे भी भाई लोग, ठोक-पीटकर एक मिनट की बना देना चाहते हैं । आपका क्या विचार है छाया देवी ?"

नग्गू की दखलअदाजी विजय को अच्छी नही लगी। वह छाया को पहचानता था। उसके चरित्र और व्यक्तित्व म विजय को ऐसी रोशनी का

आभास मिलता था जो आकर्षित तो करती है, लेकिन बिल्कुल करीब आने की अनुमति नहीं देती। ऐसी रोशनी को आदमी, आँखें खुली रहने पर, मुट्ठी में पकड़ नहीं सकता। बल्कि दूर से ही उसे देखकर सरकारित होते रहने के आनन्द का अनुभव करता है। विजय समझ गया कि नग्गू किस उद्देश्य से अपने कथोपकथन कर रहा है। इससे पूर्व भी वह नग्गू को कह चुका था कि छाया उन लड़कियों में नहीं है जिनकी मांसल देह की गरमाई मां बहन बेटी के रिश्तों को नकारने का पागलपन पैदा कर देती है। छाया के व्यक्तित्व के चारों ओर विद्युत् का प्रभामंडल है। करीब जाने से जल जाने का खतरा है। लेकिन नग्गू तो अन्धा था।

स्थिति को सम्भालने के विचार से विजय ने नग्गू की ओर उन्मुख होकर कहा

"मैं अब तुम्हारे साथ नहीं जा पाऊंगा। छाया जी से बात करने के बाद विवेक के लिए वकील ठीक करने जाना होगा।"

"अरे चलो यार! लान तक या गंगा किनारे से ही घूम आए। छाया जी को भी साथ ले चलो। एक से दो भले और तीन हो जाए तो समझो कि स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया है।"

'नहीं, नग्गू। तुम जाओ।" विजय ने यह बात कहने के साथ साथ आँखें तरेरकर नग्गू को समझा भी दिया कि उसकी बातें उसे पसन्द नहीं हैं। वह अब तशरीफ ले जाए। नग्गू उठकर अपने कन्धे ऊपर की ओर उचकाने के साथ-साथ दोनों हथेलियां नचाता हुआ बोला

"हां भाई, हम तो अभी दो के रंग में भंग डालने वाले तीसरे खूसट हैं। सोचा था, ऐसी सुहावनी शाम, अंग प्रत्यंग को सिहरन से भर देने वाली हलकी हलकी ठंडी हवा! मजा आ जाता, यदि हम तीनों अभी गंगा में नौका-विहार कर आते। खैर, खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।"

नग्गू पतलून की दोनों जेबों में हाथ डाले सीटी बजाता हुआ बाहर चला गया। उसकी सीटी की आवाज धीमी होकर गायब हो गयी। लेकिन, उसकी मुद्रा, हाव भाव और निरर्थक बातों के प्रभाव से वहां का वातावरण काफी देर तक संकोचपूर्ण बना रहा। अन्त में छाया ने ही बात शुरू की

"मैं गलत समय में यहां आ गयी।"

"नही, आप गलत समझ रही हैं। अकेलापन काटने के लिए ही मैं नग्गू के साथ कभी कभी घूमने निकल जाता हू। अभी इसी विचार से तैयार हो रहा था। मकसद कोई खास नही था।"

"अकेलापन काटना एक बात है और समय बरबाद करना दूसरी बात है। समय ही जीवन है, जो बहुत बहुमूल्य है। हम लोगो के जीवन मे यदि अभी से अकेलेपन का भूत घर कर जाएगा तो फिर भविष्य का क्या होगा ?"

विजय न कोई जवाब नही दिया। वह सिर झुकाए बैठा रहा। छाया ने अपनी बात जारी रखी

"इस मामले म विवेका जी हम लोगा से अच्छे है। हमारा समय काटे नही कटता है और वे समय से आगे रहते ह। आपने अभी विवेका जी के लिए वकील ठीक करने की बात कही थी।"

"हा, राघव चाचा पटो दौड दौडकर आन से रह। एक अच्छा वकील मिल जाए तो वही अदालत म पश हो जाया करेगा, विवेका की तरफ से बहस कर लेगा।"

"आप क्या सोचते ह, विवका जी को सजा हो जाएगी ?"

"वह माफी मागने से तो रहा। डर है कि कही अदालत म जज को डाट-फटकार न करने लग जाए। म उससे मिलने गया था। उसका कहना है कि मुकदमा लडने की कोई जरूरत नही है। विदेशी हुकूमत की अदालतें हमपर अपना फैसला नहीं लाद सकती। हम तो इस हुकूमत को ही नही मानत। फिर इसकी अदालतें कैसी ? जब हमने उसे बतलाया कि उसपर डकती, लूट, आगजनी आदि के अलावा हत्या करने का भी आरोप है, और यदि वकील द्वारा पैरवी नही कराई जाती तो सजा के नाम पर कुछ भी हो सकता है, तो विवेका ने हसकर कहा था, 'तुम क्या समझते हो, क्राति मे कूदने से पहले मुझे ये बातें मालूम नही थीं ? अरे भाई विजय, मैं तो मरन मारन पर आमादा था और आज भी हू। भगतसिंह और चद्रशेखर आजाद जसे कई योद्धा शहीद हो चुके हैं। स्वाधीनता की वेदी अभी और बलिदान मागती है। यह बलिदान कौन देगा ? और यदि कोई नहीं तैयार होगा तो भारत माता के बधन कैसे कटेंगे ? व्यक्तिगत जीवन म भी अच्छी चीज

पाने के लिए परिश्रम करना पडता है, ऊचा उठने के लिए साधना की राह पर चलकर शरीर को गलाना पडता है। यहा तो पूरे देश को उठाना है। एक विवेका तो क्या, हजारो-लाखो विवेका की जान भी आजादी की कीमत चुकाने मे चुक जाए तो कोई चिन्ता नही।' "

छाया ने विजय की ओर मुस्कराकर देखते हुए पूछा

"विवेका जी आपके बचपन के साथी हैं न।"

"हा। गाव मे भी एक-दूसरे के साथ खेलते और पढते थे।"

"और नग्गू बाबू से कितने दिन का सम्बन्ध है?"

'यही, पिछले तीन साढे तीन साल से।"

"लेकिन, मुझे तो लगता है, जैसे नग्गू का प्रभाव आपपर अधिक है। विवेका जी की तो कोई बात आपने स्वीकार नही की।"

विजय फिर हतप्रभ हो गया। वह समझ गया कि छाया का इशारा किस तरफ है। वह शराब पीता है, ऐयाशी म डूबा रहता है, लिखाई-पढाई मे सुभानअल्लाह है। यह बात छाया से छिपी नही थी। छाया यह भी जानती थी कि विवेकानन्द देश का काम करने के साथ साथ लिखने पढने मे भी किसीसे पीछे नही है। उसने झेंपते हुए कहा

"विवेका की बराबरी मैं नही कर सकता। बचपन से ही वह मुझसे आगे चलता रहा है। बल्कि, कभी कभी तो मुझे उससे डर भी लगता है।"

"डर अच्छी चीज नही है। यह भाव मलिन मन से उत्पन्न होता है। मन को मैला क्या कीजिए। अच्छा, अब मैं चलती हू।" यह कहकर छाया अचानक ही उठ खडी हुई। विजय उससे बैठने को कहे कह, तब तक वह हाथ जोडकर बाहर निकल गयी।

विजय को उस दिन जीवन मे पहली बार अपने-आपपर ग्लानि हुई। वह उन लोगो म से एक था, जो पाप और पुण्य के सधिस्थल पर खडे रह जाते है। उसमे समझ थी, सवदनशीलता थी। दूसरो के दुख म दुखी और दूसरो के सुख देखकर वह सुखी होना जानता था। वह दया माया से पूरित था। कठिनाई यह थी कि पिता के गलत लाड प्यार ने उसे आत्मकेन्द्रित बना दिया था। उसके मन म यह बात बैठ गयी थी कि उसके पास अपार सम्पत्ति है, और सम्पत्ति का सुख भाग्यशाली ही उठा पाते ह। अपने पिता

से मिले सस्कार ने उसे भाग्यवादी बना दिया था। अभी छाया की बातें सुनकर उसे लगा कि सचमुच उसका जीवन निरथक है।

२८

सियावर बाबू को छाया का विजय से मिलन जुलन बहुत अच्छा लगा। वे यही चाहते भी थे। उनका आक्रोश राष्ट्रीय आदोलन के विरुद्ध उतना नही था, जितना कि छाया और विवेकानन्द के मेल जोल के विरुद्ध था। वे विवेकानन्द को एक निकम्मा और गैर जिम्मेदार युवक समझते थे। मन ही मन वह कहा करते थे कि एक न एक दिन यह भी अपने भाई की तरह आत्महत्या कर लेगा। इसकी सारी नेतागिरी धरी की धरी रह जाएगी खुद तो अपना पेट पाल नही सकेगा, शादी के बाद अपनी पत्नी को क्या खिलाएगा ?

सियावर बाबू अपने आपको पिता के घेरे से कभी बाहर नही निकाल पाए। उन्होंने यह नही सोचा कि वे भारतवासी हैं, पढ़े लिखे प्रबुद्ध व्यक्ति हैं। उनपर देश की हवा, जल मिट्टी और अन्न का भी ऋण है, जिसे चुकता किए बगर वे सही अर्थों मे पिता भी नही बन सकते।

छाया कई रोज तक लगातार विजय के यहा आती जाती रही। सियावर बाबू यह सब देखकर सुखी होते रहे। उन्हे लगा कि अब उनकी कल्पना साकार हो जाएगी। इसी बीच विजय को घर जाना पडा। छाया भी कुछ उदास रहने लगी। सियावर बाबू को लगा कि छाया अब विजय की ओर उन्मुख हो गयी है। उन्हे क्या मालूम कि छाया अपने विवेका की खोज-खबर लेने के लिए विजय के घर के चक्कर लगाया करती है।

सामने के मकान मे चहल पहल देखकर सियावर बाबू समझ गए कि विजय घर से लौट आया है। उन्होंने पार्क की राह आगे बढकर विजय के नौकर से पूछताछ करके सन्तोष किया। अपने मन की प्रसन्नता पर बडी कठिनाई से नियत्रण रखते हुए तेज कदमो से वह घर के भीतर आए और छाया से बोले

"जानती हो छाया बेटा, विजय बाबू घर से लौट आए हैं।"

छाया ने चौंककर अपने पिता की ओर देखा। वह बोली नही लेकिन उसकी आखो मे और चेहरे पर यह वाक्य स्पष्ट रूप से अकित था कि इसम जानने की कौन सी बात है? तुरन्त ही छाया के मूक प्रश्न का उत्तर उसके भीतर की आशका ने दिया कि कही बाबू जी के दिल मे विजय के प्रति कोई खास लगाव तो नही पदा हो गया है? सियावर बाबू शायद अपनी बेटी के मन का भाव समझ गए। चोरी करते पकडे जाने के भय से उन्होने कहा, "विजय बाबू को अचानक ही घर जाना पडा। अवश्य ही कोई दुघटना हो गयी होगी। ऐसे अवसर पर पडोसिय। की सहानुभूति की बडी कीमत होती है।"

"मैं जानती हू कि वहा कौन सी दुघटना हा गयी थी।"

सियावर बाबू हक्का-बक्का होकर अपनी बेटी की ओर देखत रह गए। छाया अपने पिता क मनोभाव पूरी तरह समझ नही पायी। जिस पिता ने कुछ पहले बाहर निकलने और विवेकानन्द से मिलने जुलने पर आक्रामक रूप से विरोध किया था, वही पिता क्यो चाहते ह कि वह विजय के घर बार आया जाया करे?

छाया को, लेकिन, विजय से मिलना जरूरी था। पिछले दस रोज स वह विवेकानन्द का हाल समाचार नही जान पायी थी। इसलिए सहज ढग स तैयार होकर वह विजय के घर जा पहुची। विजय कुर्सी पर बैठा था। आखो के आगे अखबार फलाए हुए था इसलिए वह छाया को आते देख नही पाया था। छाया ने उसे चौका दिया

"लौटने मे बहुत दिन लग गए?"

"ओह आप। आइये आइये बैठिए।' विजय अचकचाकर खडा होता हुआ बोला। छाया सामने रखी कुर्सी पर बैठ गयी। बोली

"कही आपके दोस्त नगू बाबू तो आने वाले नही ह?"

'अरे नही नहीं। उसे तो खबर भी नहीं होगी कि मैं आ गया हू। अगर आ भी जाए ता क्या? चला जाएगा। लेकिन आप नगू के आने की इतनी चिन्ता क्यो करती हैं?"

"रग म भग नही डालना चाहती।"

"आपके आने से तो सच पूछिए तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। नग्गू के साथ तो अब क्या कहूं ?"

"मजबूरन समय काटना पडता है। यही न कहना चाहते हैं आप ?" छाया ने विजय की ओर मुस्कराकर देखते हुए अपनी बात जारी रखी, "मैं समझ नही पाती कि इतना समय लोगो के पास आता कहा से है ? देश-समाज का काम नही करना चाहते, न सही। कालेज की किताबो मे जी नही लगता, यह बात भी समझ मे आती है। लेकिन, अकारण इधर-उधर घूमना, होटल रेस्तरा म बैठकर शराब पीने म समय और रुपया दोनो बर्बाद करना कहा की बुद्धिमानी है। रुपया अधिक है तो सत्कार्य मे लगाइए, जरूरतमन्द लोगो की सहायता कीजिए। मुझे मालूम नहीं क्यो, नग्गू बाबू के हाव भाव म खोट नजर आती है।"

विजय शरमाता-सकुचाता हुआ चुपचाप छाया की बातें सुनता रहा। आज पहली बार छाया ने स्पष्ट शब्दो म, किन्तु विनम्रतापूर्वक, उसकी बुरी सगत की भर्त्सना कर दी। विजय को खामोश देखकर छाया अचानक ही अपनी भूल समझ गयी। प्रायश्चित्त करने के स्वर मे बोली, 'मैं भी कैसी पागल हो गयी हू। जो कुछ मन मे आया, बकती चली गयी। मुझे आपके मामले म दखल नही देना चाहिए था। मैं तो आपके घर का हाल समाचार पूछने के लिए आयी थी।"

'वैसे सब ठीक ठाक है। कुछ ऐसी गडबडी बात यह हुई कि एक रैयत न मेरे चाचा की "

"यह मुझे मालूम है। आपके चाचा की हत्या कर दी गयी थी। इस घटना के घटित हुए तो कुछ दिन बीत गए। इधर आप अचानक घर चले गए तो मैं अपनी जिज्ञासा रोक नही पायी। और यहा आकर आपके रसोइये से पूछ गयी थी।"

"भयकर बात तो यह हुई कि अब जतना की भी हत्या हो गयी। लोग तरह-तरह के किस्से फैलाने मे जी जान से जुटे हुए हैं। मैं तो ग्लानि से ही गरा जा रहा हू।" यह कहकर विजय उठ खडा हुआ और कमरे म टह लता टहलता बोला, "एक मामूली रैयत ने उनके सगे भाई की हत्या कर दी। दोनो भाई एक ही मा की कोख से उत्पन्न सतान थे। चिना सुलगाई

भी नही गयी कि उनपर जतना को बचाने का भूत सवार हो गया। और अब जतना की भी हत्या हो गयी। यह सब क्या है ? गाव के लोग डर से कुछ बोलते नही, क्योंकि हर आदमी को पिता जी से कोई न कोई जरूरत पडती ही रहती है। किसीने कर्ज ले रखा है तो कोई उनके यहा जमीन सूद भरना पर लगाए हुए हैं। किसीको जमीन के झगडे में पिता जी से अनुकूल फैसला करवाना है तो कोई किसी लूट-पाट के मामले मे फसकर पुलिस पैरवी करवाना चाहता है। लेकिन, गाव मे घूमकर मैंने देख लिया कि इन घटनाओं को लेकर हर आदमी की उगली पिता जी की ओर उठी हुई है।"

"स्वार्थ ने आदमी को बहुत छोटा बना दिया है। निदान उसके परिवार का दायरा भी बहुत छोटा हो गया है। क्या मालूम कि आपके पिता जी अपने भाई से मुक्त होना चाहते रहे हों ?"

विजय ने चौंककर छाया की ओर देखा। उसकी भगिमा से स्पष्ट था कि वह अपने कानो पर विश्वास नही कर पा रहा है। उसने कौतूहल से पूछा

"आपको कैसे मालूम ? यही बात राघव चाचा भी कह रहे थे।"

'क्या कह रहे थे ?"

'यही कि मेरे पिता नही चाहते थे कि उनका पागल भाई जीवित रहे। चश्मदीद गवाह भी केवल वही हैं।"

"राघव बाबू तो विवेका जी के पिता हैं न ?"

"हां। मैं उनसे विवेका के लिए वकील के बारे मे बात करने गया था तभी उन्होंने व्याजान्तर से यह बात मुझे कह दी। दरअसल, पिता जी की परेशानी के मुख्य कारण राघव चाचा ही बन हुए हैं।"

"क्यों ? आपके पिता तो बहुत बडे जमीदार हैं। राघव बाबू उन्हें किस बूते पर परेशान कर सकते हैं ? मैं स्वय गाव मे रही हू। मुझे मालूम है कि जमीदार या गाव का समृद्ध व्यक्ति सबपर हावी रहता है। कुछ देर पहले आप तो यही बात कह चुके है कि गाव का हर आदमी आपके पिता से डरता है। फिर राघव बाबू क्या कर लेंगे ?' छाया ने किंचित अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा। विजय सही बात छाया से कहना नही चाहता था। वह

जानता था कि छाया विवेका को प्यार करती है और राघव बाबू उसके पिता हैं। उसने बात बनाते हुए कहा

"इधर पिता जी कुछ अस्वस्थ रहने लगे हैं। गाव मे यह जो चन्द घटनाए घट गयी, उसका बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पडा। अचानक ही उन्होने खाट पकड ली।"

"क्या निदान निकला ?"

"दिल का दौरा पडा था।"

"तो उन्हें यहा क्यो नही बुलाया ? यह रोग ठीक नही है। इसका लगकर इलाज करना चाहिए और यह इलाज शहर मे ही सम्भव है।"

विजय सिर झुकाए बैठा रहा। क्या जवाब देता ? गाव मे ऐसी स्थिति पैदा हो गयी थी कि भुवनेश्वर सिंह एक रोज के लिए भी अपना घर नहीं छोड सकते थे। एक समय था जब तमाम लोग जमीदार के विरुद्ध जुबान खोलना तो दूर, सिर भी नही उठा सकते थे। यदि कोई सिर उठाने की हिम्मत करता था तो उसका सिर कुचल दिया जाता था। पुलिस और हुकूमत खुलकर जमीदार का साथ देती थी। अब समय बदल रहा था। स्वामी सहजानन्द सरस्वती की किसान सभा ने रैयता और खेतिहार मजदूरो मे अधिकार चेतना की आग सुलगा दी थी। गाधी जी के आदोलनो के चलते गाव-गाव मे निर्भीकता की हवा बहने लगी थी और अब तो 'करो या मरो' के आदोलन ने हुकूमत और उससे सम्बद्ध सगठनो की जडें ही उखाड दी थी। ऐसी परिस्थितियो मे लगातार तीन हत्याए हो गयी। प्रतिरोध पहले से था। इन तीन हत्याओ का सम्बन्ध भुवनेश्वर सिंह की हवेली से ही था। इसलिए भीतर ही भीतर प्रतिरोध और घृणा की आग सुलगने लगी। भुवनेश्वर सिंह चाहते थे कि राघव सिंह कचहरी मे चलकर जतना को रामेश्वर सिंह की हत्या के सन्दभ मे बेकसूर बता दें। इसके एवज मे भुवनेश्वर सिंह उनका सब कज माफ कर देने को तैयार थे।

भुवनेश्वर सिंह ने अपनी रायसाहबी के प्रभाव से जतना को जमानत पर छुडा लिया था। भुवनेश्वर सिंह का शह पाकर जतना पहले से ही अपने-आपको तीसमारखा समझने लग गया था। वह जानता था कि जब कभी जमीदार को कोई मुश्किल काम कराना पडता है, तब वह उसी पर

करते हैं। धीरे धीरे जतना अपनी कीमत आकने लग गया था। रामेश्वर सिंह की हत्या के बाद तो भुवनेश्वर सिंह की प्रतिष्ठा की कुंजी ही उसके हाथ लग गयी।

जमानत से छूटकर आते ही जतना की जरूरियात बढ़ गयी, कभी वह वस्त्र की माग करने लगा, तो कभी रुपये की। सुरसा की तरह उसकी माग बढती ही गयी और एक दिन वह भुवनेश्वर सिंह के सामने आकर बोला

"सरकार, पेट नही भरता। बाल-बच्चो का भूखा देख नही पाता। पहले से ही सात प्राणी थे। जिरिया अपनी गोद की बच्ची के साथ ससुराल से भाग आयी है, सो अलग।"

"तो क्या हुआ?" भुवनेश्वर सिंह ने थोड़ा गरम होकर कहा। उनकी वेधक आखें जतना की आखो से जा मिली। जतना कुछ देर तक उनकी आखो से आखें मिलाए रहा। उसकी इस गुस्ताखी पर भुवनेश्वर सिंह क्रोध से आग बबूला हो गए। आज तक किसी रैयत ने उनसे आख मिलाने की हिम्मत नहीं की थी। जतना की इस हरकत को उन्होंने अक्षम्य अपराध माना। वे अपने क्रोध को अभिव्यक्त करने ही जा रहे थे कि उन्हें जतना की विशेष स्थिति का ख्याल आया। उन्होने सोचा, यह काटा बन गया है। इसे काटे से ही निकालना होगा। इसलिए वे खून का घूट पीकर रह गए और सयत स्वर मे बोले

"हर रोज तुम्हें दरबार मे काम मिलता है और उसकी मजदूरी मिल जाती है। छह कट्ठा जमीन मिली हुई है और बटाई मे एक बीघा जमीन जोतते ही हो। समय-समय पर इनाम बख्शीश भी दिया जाता है। अब और क्या चाहते हो?"

"सरकार, आपका इकबाल बुलन्द रहे, यदि हमारे घर के पास वाली आठ कट्ठा जमीन हमारे नाम से हो जाए तो इस गरीब का"

"तुम्हारा दिमाग तो नही खराब हो गया है? इस तरह यदि हम रैयतो मे जमीन बाटना शुरू कर दें तो कल मुझे और मेरे बेटे को तुम्हारे खेत मे हल जोतना पडेगा। लगता है, किसीने तुम्हे बहका दिया है या स्वराजियो का भूत तुमपर भी सवार हो गया है।"

"ऐसी बात नही है मालिक। हम तो आपके गुलाम है। रात-बेरात, जब कभी हमे जैसा भी हुक्म आपने दिया है, हम जान पर खेलकर "

"तो उसके बदले क्या दू ? मेरी पलग पर सोना चाहता है, हराम-खोर ! चुपचाप जाकर अपना काम कर !" आखिर भुवनेश्वर सिह अपने-आपपर नियत्रण नही रख सके।

जतना चला गया। भुवनेश्वर सिह बहुत देर तक दालान के बरामदे मे कुर्सी पर बैठे रह गए। उनके ध्यान से जतना की घूरती हुई आखें हट नही पा रही थी। वे भी जतना की कीमत जानते थे। यदि राघव सिह ने उनके विरुद्ध कचहरी मे बयान दे दिया तब क्या होगा ? भुवनेश्वर सिह परिणाम की कल्पना करते ही काप उठे। पहले वाला समय होता तो घर से बन्दूक निकालकर दिन-दहाडे मार डालते। लेकिन स्वराजिया ने हवा ही बिगाडकर रख दी थी। उस समय मन ही मन उन्होने महात्मा गाधी को जी भरकर गाली दी।

भुवनेश्वर सिह ने जान बूझकर तीन चार रोज बीत जाने दिया। इस बीच जतना हर रोज ताडी पीकर नशे मे धुत हो अनाप शनाप बकता रहा

"कु कुछ नहीं म म मजा है साली दुनिया मे। क का काम करा करे सा स्साली दगा दे देनी है। क क क्या समझ रखा है देख लूगा। ह ह हम इतना ब ब् बडा काम किया इतना बडा र् र् राजा और आ आ आठ क् क् कट्ठा जमीन नही दिया ! ठ् ठ ठि ठीक है स्साली द द दुनिया को द् द् देख लेंगे।"

भुवनेश्वर सिह को सारी सूचनाए मिलती रही। अब उनका क्रूर मन किसी और दिशा मे भागने लगा। चौथे दिन उन्होने जतना को एकान्त मे बुलाया और कहा

"अरे जतना, तू फिर मिला नही। उस दिन गुस्से मे आकर मैंने तुझे डाट दिया था। जमीन का क्या है ? हजार एकड जमीन तो परती पडी हुई है। तू आठ कट्ठा ले लेगा तो मेरा क्या बिगड जाएगा ? खेत खाली होने दे, अगले बैसाख मे तुम्हारे नाम पर चढवा दूगा।"

जतना बार-बार जमीन पर सिर रगडकर जमीदार साहब को प्रणाम

करता हुआ बोला, "आप साछात भगवान हैं, सरकार। आपका इकबाल बुलन्द रहे। छोटे सरकार, विजय बाबू राजा बन जाए।"

"एक काम कर। स्टेशन जाकर एक टिन किरासन का सफेद तेल ले आ। यह ले, पैसे।"

जतना आगे बढ़कर पैसे लेने लगा तो भुवनेश्वर सिंह ने चारों तरफ ऐसे देखा मानो वह जतना की इज्जत बचाने के लिए कोई गुप्त बात धीमे से उसके कान में कहना चाहते हों। जतना पैसे लेकर हक्का-बक्का उनकी ओर देखता रहा, क्योंकि भुवनेश्वर सिंह ने बायें हाथ से उसे करीब ही रहने का इशारा किया। जतना अपने जुड़े हुए हाथों में रुपये लिए 'जी हाजिर है' की दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा। भुवनेश्वर सिंह ने बहुत ही धीमे स्वर में कहा

"तू मेरे बेटे की तरह है, इसलिए कहता हूं। जिरिया का दूसरा ब्याह कर दे, यदि वह अपनी ससुराल नहीं जाना चाहती। मेरे मैनेजर शिवबदन और जिरिया का रिश्ता जोड़कर लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। तू मेरा खास आदमी है। यह बात सब लोग जानते हैं। तेरी भी इज्जत है।"

जतना अपनी बेटी का चरित्र जानता था। हर तीसरे-चौथे दिन वह उसपर हाथ भी छोड़ देता था। इसके अतिरिक्त वह कर ही क्या सकता था? पिछड़ी या हरिजन जाति की बहू-बेटी को बड़े-बड़े किसानों के घर काम करना ही पड़ता था। इनमें से कइयों की इज्जत के साथ खिलवाड़ करना गांव के बाबूसाहबों का शौक हुआ करता था। इसे बहुत बुरा भी नहीं माना जाता था। दरअसल इसमें दोष ऊंची जाति या नीची जाति का ही नहीं था, बल्कि गरीबी और अमीरी का था। जतना की बेटी जिरिया बाबूसाहबों का शौक पूरा करके दो पैसे कमा भी लाती थी। जतना को उस समय अच्छा लगता था, क्योंकि उस दिन वह तीन चार गोली अधिक ताड़ी पी सकता। अभी जमींदार साहब की बात सुनकर जतना को अपने आपपर गुस्सा आ गया। वह बोला

"क्या करें मालिक, यह उसका दूसरा विवाह था। कितनी बार विवाह करवाए? सौ डेढ़ सौ रुपये खर्च हो जाते हैं।"

"मैं दूंगा। तू रुपये की चिन्ता मत कर और देख, तब तक के लिए उसे

पर कडी नजर रख।"

"जो हुकुम हो सरकार। लेकिन मैनेजर साहब से तो डर लगता है। वह काम के लिए बुला लेते हैं। उसका क्या करें?"

"शिवबदन से तो डरने की जरूरत नही है। उसके चलते मेरी भी बदनामी है। तू शिवबदन को भी मना कर दे। अगर वह जिरिया को बुलाए तो कह देना, नही जाएगी। समझे?"

"जी मालिक"

"अब जा, मेरी हवेली के पीछे अरहर के खेत वाली पगडडी से निकल जा।"

जतना झुककर प्रणाम करके चला गया। भुवनेश्वर सिंह मन ही मन अपनी सटीक योजना पर खुश हो गए। उन्हें मालूम था कि हवेली के पीछे तीन फर्लांग दूर अरहर और गन्ने के खेत के बीच एकान्त स्थान पर अभी शिवबदन जिरिया के साथ केलि कर रहा होगा। वही शिवबदन की बगली भी थी। वह अकेला उसीमे रहता था।

भुवनेश्वर सिंह दालान पर ही किसी घटना की प्रतीक्षा मे बैठ गए। उनका अनुमान सही निकला। लगभग आध घण्टे बाद शिवबदन वहा आ पहुचा। उसका चेहरा उतरा हुआ था। उसे उम्मीद नही थी कि जमीदार साहब दलान पर ही बैठे मिलेंगे। उन्हें देखते ही शिवबदन असामान्य रूप से घबरा गया। भुवनेश्वर सिंह ने पूछा

"क्या बात है, शिवबदन। उदास लगते हो।"

शिवबदन सिर झुकाये खडा रहा। कुछ बोला नही। भुवनेश्वर सिंह ने फिर पूछा

"कोई खास बात हुई है क्या? बोलते क्यो नही? मुझसे कोई बात छिपी नही रह सकती है। तुम न कहोगे, कोई और आकर कहेगा।"

"हुजूर, यह जतना बहुत बदतमीज हो गया है। इसने एकाध बार हुजूर की सेवा क्या कर दी है कि यह सबके सिर चढ़ गया है। आखिर मैं भी तो आपके लिए अपनी जान हथेली पर लिए रहता हू। छोटी मालकिन के मामले मे, यदि मैं नहीं होता तो ।"

"तुम ठीक कहते हो। रामेश्वर की बहू एक दाग थी। उसे दूर करके

तुमने भुवनेश्वर सिंह के खानदान की इज्जत बचाई है। मैं इस बात को मानता हूं। तुम अपनी तुलना जतना से क्या करते हो? मुझे मालूम है कि ताड़ीखाने में बैठकर यह मेरे बारे में भी अनाप शनाप बकता रहता है। इसने तुमसे भी कुछ कहा है क्या?"

"मैं अपने अरहर और गन्ने का खेत देखने गया था।"

"यह मुझे मालूम है। वहां जिरिया भी थी।"

"हुजूर, जिरिया उधर से घास लाने गयी थी। तभी जतना वहां आ पहुंचा और जिरिया को दो तीन थप्पड़ मारे। मुझे भी धमकी देने लगा।"

"फिर? तुम अपना-सा मुंह लेकर मुझे दिखाने के लिए चले आए! मेरे मनेजर होकर तुमने मामूली रैयत की धमकी बर्दाश्त कर ली!"

"अभी हम लोगों को उससे काम लेना है सरकार, नहीं तो मैं उसे गोली मार देता।"

"उससे हमारा काम पूरा हो चुका है। तुम चाहो तो उसका काम तमाम कर सकते हो। बोलो, क्या विचार है?"

"आपके हुकुम की देर है। मैं तो बहुत रोज से उससे खार खाए बैठा हूं। आज तो उसने मुझसे यहां तक कह दिया कि वह मुझे देख लेगा।'

"इस काम में तुम्हें मेरे हुकुम की जरूरत नहीं है। यदि उसने तुम्हारी बेइज्जती की है और तुम समझते हो कि उसकी आदत सुधरने वाली नहीं है तो जो चाहो, सो करो।"

उसी दिन भुवनेश्वर सिंह की मनोकामना पूरी हो गई। जतना ताड़ी के नशे में धुत था। शिवबदन से उसका आमना-सामना हो गया। ताड़ी पीकर जतना हमेशा आप से बाहर हो जाता था। उसकी जुबान पर लगाम नहीं रहता था। उस समय गांव के लोग उससे कतराकर बच निकलते थे। शिवबदन को देखते ही जतना की जीभ चलने लगी। दोनों पक्षों को जमींदार का शह मिला हुआ था। दोनों ने सोचा कि आज फैसला कर ही लेना चाहिए। यह हमारा क्या बिगाड़ लेगा? बात बढ़ते-बढ़ते हाथा-पाई में बदल गई। कुछ तमाशबीन भी वहां आ खड़े हुए जिनमें से एक दो ने बढ़कर जतना को पकड़ लिया। शिवबदन को मौका मिला और वह भागकर अपने घर से बन्दूक ले आया। जतना तब तक राघव सिंह के दालान के पास

पहुच चुका था। शिवबदन ने दूर से ही निशाना लगाया और जतना को गोली मार दी। अजीब सयोग, उस समय राघव सिंह दालान के बाहर चबूतरे पर खडे जतना की ही ओर देख रहे थे।

जतना वास्तव मे भुवनेश्वर सिंह की राह का काटा बन चुका था। काटे को काटे से निकालने की कला मे भुवनेश्वर सिंह माहिर थे। जो दुश्चक्र उन्होंने आरम्भ किया था, उसकी परिणति कभी न कभी खुद उन-पर होनी थी। जतना जमानत पर छूटा हुआ अपराधी था। जमानतदार थे—शिवबदन। शिवबदन मध्यम वर्ग का साक्षर, चतुर और तिकडमी व्यक्ति था। क्रूर जमीदार का मैनेजर और कैसा हो सकता है? उसने जमीं-दार को साफ शब्दो मे कह दिया

"यह हत्या मैंने नही की है लेकिन राघव बाबू ने मुझे गोली चलाते देख लिया है। आप बडे आदमी हैं। आपकी ताकत का लोहा मैं मानता हूं। आप ही राघव बाबू को चश्मदीद गवाह बनने से रोक सकते हैं।"

"जतना मेरी आख के सामने गिरा। मैं समझ नहीं पाया कि क्या हो गया। गोली की आवाज सुनकर बात समझ मे आयी और तब लगभग दो सौ गज दूर पर शिवबदन को बन्दूक के साथ भागते हुए देखा।"

शिवबदन ने कहा, "राघव बाबू ने मुझे गोली चलाते नहीं देखा।" लेकिन हत्या की परिस्थिति एसी थी कि मजबूर होकर पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

सवाल था राघव बाबू को समझाने का और उन्हें अपनी तरफ मिलाने का। भुवनेश्वर सिंह ने उन्हें समझाने की कोशिश की। लेकिन राघव सिंह बोले

"भुवनेश्वर बाबू, भगवान से डरिए। आपका कलेजा बहुत बडा है। तीन-तीन खून पचा जाना आपके ही वश की बात हो सकती है। मेरे वश की बात नही है।"

भुवनेश्वर सिंह को लगा कि जैसे अचानक किसी भयकर दलदल में आ गिरे हैं। न तो इसमें से निकल सकना आसान था और न इसमें धंसे रहना। हर स्थिति में मन स्थिर रखा। उन्होंने एक-एक कर अपने खास आदमियों को उनके दरवाजे पर प्रलोभन का प्रस्ताव लेकर भेजा

राघव बाबू टस से मस नही हुए। वह सबको यही कहते

"मैंने बड़े बड़े पाप किए होंगे तभी तो नन्ही मुन्नी पोती चल बसी। पढ़े लिखे जवान बेटे ने आत्महत्या कर ली। घर मे इक्कीस बाईस साल की विधवा बीमार बहू बैठी किसी तरह दिन काट रही है, और एक बेटा दर दर की ठोकरें खा रहा है। नही, नही, अब मुझसे झूठ नही बोला जाएगा। भले ही मुझे अपना कर्ज सधाने के लिए सारी जमीन जायदाद क्यों न बेच देनी पड़े।"

मुकदमा खुलने की तारीख करीब आने लगी तो भुवनेश्वर सिंह घबरा उठे। शिवबदन से हवालात मे मिलकर उनका एक आदमी लौटा था। उसी-ने बताया, "शिवबदन कहता है कि जमीदार साहब के इशारे पर ही उनके भाई की हत्या की जतना ने और मैंने जतना की हत्या कर दी ताकि जतना मुखबिर न बन सके। जमीदार साहब अपने भाई के हिस्से की जमीन की मिल्कियत चाहते थे। गर्भवती राधा भी इसी स्वार्थ की बलि-वेदी पर अर्पित कर दी गयी।"

भुवनेश्वर सिंह को इससे बहुत बड़ा धक्का लगा। गाव मे ही नही, पूरे इलाके मे थू थू होने लगी। छल-प्रपच, घात प्रतिघात, षडयन्त्र और हत्या करके जो जायदाद और प्रतिष्ठा उन्होने हासिल की थी, उन सबको वे कपूर की तरह उड़ते देखकर बहुत ज्यादा परेशान हो उठे। चार-पाच साल पहले का समय होता तो वे रचमात्र भी चिंतित नहीं होते। चार-पाच वर्षों मे समय कितना बदल गया। इस विपत्ति और भविष्य की आशकाओ के चलते उन्हें दिल का दौरा पड़ा और उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया था।

विजय को देखते ही भुवनेश्वर बाबू को आशा की किरण दिखाई पड़ी। विजय विवेकानन्द का बचपन का मित्र था। इस नाते राघव बाबू विजय से बहुत स्नेह करते थे। उसे देखकर शायद राघव बाबू पसीज जाए, यही सोचकर उन्होंने अपने बेटे को राघव बाबू से मिलने भेजा था।

विजय को खामोश देखकर छाया ने कहा

"आपको चाहिए था कि अपने पिता को जबदस्ती पटने ले आते। वहा तो परेशानियो के बीच मे रहकर वह निश्चिंत न हो पाएगे और निश्चिंत भी होंगे तो रोग मुक्त कैसे होंगे ?"

"यही तो कठिनाई है। खून का मुकदमा नही होता तो मैं उन्हे लेकर आता।"

"आपने कहा कि विवेका जी के पिता चश्मदीद गवाह हैं ?"

"हा। उन्हींके चलते पिता जी को दिल का दौरा पडा। वह खामखाह, अपनी जिद पर अड गए थे। कहने लगे कि इतने खून पचाने की शक्ति मुझमे नही है।"

"कितने खून हो गए ?" छाया ने जब सवाल कर दिया तब विजय को अपनी भूल मालूम हुई। वह अनजाने ही सचाई की सीमा मे जा पहुचा। झेंपता हुआ बोला, बहुत पहले मेरी चाची की हत्या हो गयी थी। उनकी लाश गाव के पोखर म से निकली। इसके बाद चाचा की हत्या हो गयी। राघव बाबू का कहना है कि यह हत्या जतना चमार ने की।"

"यह तो असम्भव लगता है। एक मामूली और गरीब चमार इतने बडे जमीदार के भाई की हत्या कर दे। वह तो पकड लिया गया होगा ?"

"हा। पकडे जाने के बाद जमानत पर छोड दिया गया ।"

"खूनी को तो जमानत पर छोडा नही जाता।"

विजय फसता ही जा रहा था। वह सच्ची बात कहना नही चाहता था। उसे डर था कि उसके पिता के कारनामे सुनकर वह भी उससे नफरत करने लगेगी। वह अब क्या जवाब दे। छाया ने दुबारा पूछा तो उसके सामने कोई उपाय नही रह गया। उसने सकुचाते हुए कहा

"वह पिता जी का खास नौकर था। उसने उनकी बडी सेवा की थी। इसलिए उन्होने ही अपने प्रभाव से काम लेते हुए उसे जमानत पर छुडा लिया। यही पिता जी ने गलती कर दी। न वह जेल से बाहर आता और न मारा जाता।"

'उसे भी मार दिया गया ? किसने मारा उसे ?" छाया ने चौंककर पूछा। विजय ने सिर झुकाये झुकाये ही कहा

"राघव चाचा का कहना है कि हमारे मैनेजर शिववदन ने गोली चला दी।"

"आपके मैनेजर ने गोली चलाई होगी तभी तो राघव बाबू ने देखा।"

"शाम का समय था। दो सौ गज से गोली चली। अधेरे म उतनी दूर

तब राघव बाबू कैसे देख सकते थे ? गाव म और लाग भी तो हैं। किसीने शिवबदन को गोली चलाते नही देखा। राघव बाबू ने भी नही।"

"इसमे राघव बाबू को क्या फायदा है ? वह क्यो झूठ बोलेंगे ? उनके दोनो बेटो से मैं मिल चुकी हू। जिस व्यक्ति के इतने अच्छे बेटे हो, वह झूठ नही बोलेगा।"

"राघव बाबू ने मेरे पिता से बीस-बाईस हजार रुपये कर्ज ले रखा है। जब पिता जी ने उनसे वापस मागे ।"

"ठहरिये, ठहरिये, विजय बाबू ! मैं वकील की बेटी हू। मेरे घर म बहुत से मुकदमेबाज आते रहते हैं और प्राय मुकदमा की और तरह-तरह के अपराधो की चर्चा होती रहती है। जतना पर आरोप था कि उसने आपके चाचा की हत्या की ? आपके चाचा यानी आपके पिता जी के सगे भाई ! इसके पहले आपकी चाची पोखर मे डूब मरी थी। इस तरह आपकी चाची और चाचा दोना आप लोगो की राह स दूर हो गए। जिसपर भाई की हत्या का आरोप था, उसे ही आपके पिता ने जमानत पर छुडा लिया दयावश। यह आश्चर्य की बात है। भाई की हत्या हो गयी इसका न तो उन्हें दुख हुआ और न हत्यारे पर क्रोध आया। उल्टे दया आ गयी। और जब हत्यारा बाहर निकला तो कहा जाता है कि उसे आपके मैनेजर ने गोली मार दी। आप यह बताइए कि आपके गाव मे किसके किसके पास बन्दूकें हैं ?"

"मेरे घर मे दो बन्दूकें हैं। एक बन्दूक मेरे मैनजर के पास है।"

"क्या आप सोचते है एक गरीब हरिजन को मारने के लिए कोई बन्दूकधारी आपके गाव मे बाहर से आएगा ? नही विजय बाबू। राघव बाबू के कथन म सच्चाई मालूम पडती है। हत्या के पीछे हमेशा कोई न कोई उद्देश्य होता है। लगातार तीन हत्याए हो गयी। इन तीनो मृत व्यक्तियो का सीधा रिश्ता आपके परिवार से है। आपको राघव बाबू के बारे मे अन्यथा नही सोचना चाहिए।"

"नही नही। मैं उनका बडा आदर करता हू। तभी तो मैं उनसे मिलने गया था। उनके सामने मैं कातर हो उठा। उनके बयान से मेरे पिता जी फस जाते।"

"तो क्या वह बयान बदलन को तैयार हैं ?"

"हा। मैंने उनके पाव पकड लिए। मैंने देखा कि वह बहुत परशान हो गए। जब मैंने अपने और विवका के सम्बध की दुहाई दी तो वह पसीज गए। उस समय चाची भी वहा मौजूद थी। उन्हाने ही अपने पति को मजबूर किया। कहा, 'मेरा बेटा जेल मे है। विजय उसे छुडाने के लिए दौड धूप कर रहा है और आप हैं कि अपनी जिद पर अडे हुए हैं।' चाची की बात सुनकर राघव चाचा ने मुझे वचन दे दिया।"

"यह आपने बहुत बुरा किया। आपने एक धर्मात्मा को पापी बना दिया।"

"हमने उनका कज भी तो माफ कर दिया।"

"छि छि ! यह क्या कहते ह आप ? बहुत ओछी बात है। कई हजार एकड जमीन का मालिक फासी के फदे से ही नही बचा, बल्कि उसकी और उसके बेटे की इज्जत भी बच गयी। कज माफ कर देने का लोभ दिखाकर आप लोगो न यह चौथी हत्या की। मैं राघव बाबू की मनोदशा की कल्पना कर सकती हू। आपने उनकी कमजोरी का फायदा उठाया। बटा जेल मे पडा हो और उसका दोस्त उस बेटे के बाप के यहा आकर दुहाई दे, बेचारे बाप क्या करे ? हर आदमी महात्मा गाधी तो हो नही सकता।"

छाया बोलते बोलते आवेश मे आ गयी। उसका स्वर किंचित् कापने लगा। विजय सिर झुकाए सब कुछ चुपचाप सुनता रहा। कुछ देर की खामोशी के बाद छाया को अचानक एहसास हुआ कि उसे इतना कटु नहीं होना चाहिए था। वह उठकर हाथ जोडती हुई बोली

"क्षमा कीजिएगा, भावुकता मे आकर मैंने आपको बहुत कुछ कह दिया। मुझे यह सब कहन का अधिकार नही था। अब चलती हू। विवेका जी के बारे मे कोई नयी बात हो तो खबर भेज दीजिएगा।"

विजय सकपकाकर उठ खडा हुआ। उसकी बोलती बन्द थी। छाया ने कापते होठो से मुस्करा दिया और वह चली गयी।

२६

उस रात विजय ने छककर शराब पी। नग्गू भी आ गया था। नग्गू ने बहुत चाहा कि विजय उसके साथ पटना सिटी चले। कई कोठेवालियों के उन्मादक रूप रंग का प्रलोभन देकर नग्गू ने उसे उकसाने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ गया। उस समय विजय के दिल दिमाग पर छाया का तेजस्वी रूप हावी था। नग्गू अपनी बात करता रहा और विजय छाया की बात सोचता रहा।

छाया उससे कई बार घर आकर मिल चुकी थी। रात के अकेलेपन में भी छाया उसके पास बैठ चुकी थी। लेकिन विजय जैसे भोगी पापी मन ने कभी कोई गुस्ताखी करने की कोशिश नहीं की। क्यों विजय ने तो छाया को पहली बार देखकर ही ठान लिया था कि अवसर मिलते ही वह इस अहंकारमय सौन्दर्य को क्षत विक्षत कर देगा, मसल कर फेंक देगा, और जब ऐसे अनेक अवसर आए तब उसे क्षत विक्षत करने या मसलकर फेंकने की बात दूर रही, वह उसके समक्ष कोई ओछी बात करने का साहस भी नहीं जुटा पाया था।

विजय जानता था कि विवेका छाया से प्रेम करता है। छाया भी विवेका के प्रति अत्यधिक उन्मुख है। छाया को मुट्ठी में कर सकना किसीके लिए सम्भव नहीं है, फिर वह तो विवेका की छाया है। विवेका अपने नाम के अनुरूप स्वाधीनता, समता और क्रान्ति की रोशनी बिखेरता फिर रहा है।

विजय के मन के किसी कोने में विवेका के प्रति ईर्ष्या जग उठी। क्या है विवेका में कि छाया हमेशा उसीकी बात करती रहती है? विवेका के पिता राघव चाचा तो जब-तब उसके पिता के सामने हाथ पसारे आ पहुंचते हैं। उन्हींका यह पुत्र अपने आपको महान क्रान्तिकारी समझता है। देश की गुलामी की जंजीर तोड़ने की शक्ति रखता है तो अपने पिता के कर्ज क्यों नहीं तोड़ देता? उसके पिता ने तो फिर घुटने टेक दिए हैं। घुटने न टेकते तो विवेका के वकील की फीस कैसे चुकाई जाती? बहुत अकड़े हुए थे, राघव चाचा। जब विवेका के मुकदमे में पैरवी करने की बात आयी

तब गिडगिडाने लगे, जमीन बचने को तैयार हो गए। आखिर जमं
खरीदने की औकात उसके पिता के अलावा और किसमें है ?

विजय घुटन से भर उठा और शराब का गिलास उठाकर एकबार
ही कई घूट शराब पी गया। अनायास ही उसके मुह से निकल पडा

"हु हू बडा आया मुझपर रहम करने वाला।"

"कौन तुमपर रहम कर रहा है ?" नग्गू ने चौंककर विजय
ओर देखते हुए पूछा। विजय ने अपने-आपको सभालने के लिए पूरी देह
एक झटका दिया और नग्गू को घूरकर देखा। उसे अपनी भूल का एहस
हुआ। छाया के सम्बन्ध मे वह नग्गू से कोई बात नही करना चाहता थ
किन्तु शराब उसके दिमाग की नस-नस मे घुस चुकी थी। अपने आप
नियत्रण रखने का उसे एक ही उपाय सूझा और वह गिलास उठाकर
एक ही घूट मे खाली कर गया। नग्गू ने प्यार जताते हुए कहा

"मैं तुम्हारा दोस्त हू। जिगरी दोस्त। तुम न भी बताओ तब भ
जानता हू।"

'क क् क्या जानते हो ?"

"यही कि कि कौन तुमपर रहम कर रहा है।"

"कौन ?"

"छाया।"

"अरे वो वो मु मुझपर क्या रहम करेगी ? तुम उसका
मत लो।"

"क्यो ? वह क्या तुम्हारी ।"

"हा, वह वह मेरी सब कुछ है।"

नग्गू ठठाकर हस पडा। विजय भौचक्का होकर उसका मुह दे
लगा। नग्गू कुछ देर तक हसते हसते अचानक रुक गया। बोला

"गिलास खाली है। इसमे शराब डालो। यही यही तुम्हारे
सब कुछ है। लो मैं ढाल देता हू।"

विजय ने बहुत ही करुण दृष्टि से नग्गू की ओर देखा। नग्गू ने उ
तरस खाने के भाव से मुखमुद्रा बनाते हुए गिलास उठाकर पीने का इ
किया। विजय ने एक आज्ञाकारी बालक की तरह गिलास उठाकर दो-

घूट शराब पी ली और कहा

"तुम तुम ठीक कहते हो। मेरे जीवन मे यह नकली नशा ही है। असली नशा तो विवेका के भाग्य मे है।"

"अरे यार, मुझ हू हू हुकुम करो, फिर देखो कि छाया की मैं क्या दशा कर देता हू! ऐसी-ऐसी कई शोख लडकियो का गर्व मैं तोड चुका हू। यदि तुम छाया को यहा इसी मकान मे मेरे हवाले छोडकर आध घटे के लिए बाहर चले जाओ तो ।"

"खबरदार! फिर ऐसी बात ज ज गान पर मत लाना।" विजय इतना कहकर गुस्से म उठ खडा हुआ। उसकी पूरी देह काप रही थी। किसी तरह हिलता डुलता हुआ वह चीख उठा, "चले जाओ तुम अभी मेरे यहा से चले जाओ। तुम्हारी नापाक जबान पर उस लडकी का नाम नहीं आना चाहिए।"

नग्गू ने उठकर विजय को और छाया को एक भद्दी सी गाली दी। विजय उसकी तरफ बढने को हुआ, लेकिन वह लडखडाकर कुर्सी पर गिर पडा। नग्गू ने रसोइये को बुलाकर कहा

"मैं जा रहा हू। सभालो अपने राजकुमार को। पूरी तरह टुल हो चुका है।'

नग्गू के चले जाने के बाद, रसोइये न नौकर की सहायता से विजय को उठाकर बिस्तर पर सुला दिया। वह नींद और नशे मे रात देर गय तक बडबडाता रहा। उसके मुह से बार-बार छाया का नाम सुनकर रसो इया घबरा उठा। कुछ ही देर बाद विजय बिस्तर से उठकर बाथ रूम की ओर बढा। किन्तु तीन कदम से अधिक चल नही पाया। लडखडाकर गिर पडा। रसोइया और नौकर ने उसे लपककर उठा लिया और बाथ रूम तक जाने मे मदद की। उसन बाथरूम मे आकर उल्टी कर दी। बाथ रूम ही नही, पूरा कमरा बदबू से भर गया।

थोडी देर बिस्तर पर लेटे रहने के बाद वह फिर उठ बैठा और शराब पीने लगा। वह उन्मादग्रस्त की तरह बडबडाने भी लगा। रसोइये की हिम्मत नहीं हुई कि वह मालिक के हाथ से गिलास छीन ले। मालिक के मुह से बार-बार छाया का नाम सुनकर रसोइये को एक उपाय सूझा और

वह दौड़ा-दौड़ा छाया को बुला लाया।

सियावर बाबू भी छाया के साथ आ पहुचे थे। उस समय तक नौकर ने घर की सफाई कर दी। उल्टी की बदबू धूपबत्ती की सुगन्ध मे दब गयी थी। विजय आराम कुर्सी पर अधलेटा बैठा था। मेज पर शराब की खुली हुई बोतल और भरा हुआ गिलास रखा था। सामने छाया को खडी देखकर विजय कोशिश करके अपनी आखो को खोलता हुआ बोला

"अ अ आप?"

छाया ने मेज पर रखी बोतल और गिलास उठा लिए। उन्हे रसोइये की ओर बढाती हुई बोली

"इसे ले जाकर फेंक दीजिए। पिता जी, आप भी जाकर आराम कीजिए। मैं यहा थोडी देर बैठूगी। विजय बाबू की तबीयत ठीक नही लगती है।'

विजय सहमी सहमी आखो से कभी छाया को और कभी ओझल होती हुई बोतल और गिलास को देखता रहा। उल्टी के बाद वैसे भी उसका नशा आधा रह गया था और छाया को देखते ही रहा-सहा नशा भी हिरण हो गया। किन्तु, उसके शरीर म शक्ति नही रह गयी थी। उसने उठने की कोशिश की लेकिन उसके पाव लडखडा गये। वह बेलाग कुर्सी के ऊपर गिरने ही जा रहा था कि छाया ने आगे बढकर उसकी बाह थाम ली। उस समय विजय ग्लानि से भर उठा। उसने अपने आपको धिक्कारा और ताकत बटोर कर दृढतापूर्वक खडा होता हुआ बोला

"छाया जी, आपको बहुत तकलीफ हुई है। रसोइये ने गलती की। मालूम नही, इसे क्या सूझा और आपको बुला लाया।"

"रसोइये ने बिलकुल ठीक काम किया। आप बिस्तर पर चलकर चुपचाप सो जाइये।"

छाया ने सहारा दिया और वह चुपचाप बिस्तर पर जाकर लेट गया। उसे पता भी नही चला कि वह कब सोया और कब रात बीत गयी। जब उसकी आखें खुली तो उसने देखा कि छाया सामने कुर्सी पर बैठी कोई किताब पढ रही है। कमरे म दिन का प्रकाश भर गया था। वह अचकचा-कर उठ बैठा ।

"आप रात भर यही बैठी रह गयी ?"

"नही, मैं नहा धोकर दुबारा आयी हू। सुबह के नौ बजन वाले है।"

"अरे, मुझे तो कुछ पता भी नहीं चला। मैं बहुत शर्मिन्दा हू। मेरा रसोइया निहायत बदतमीज और मूर्ख है। उसने आपको नाहक म कष्ट दिया।"

"यह बात आपने रात भी कही थी। इसका मतलब है कि मैं गर थी, फिर भी यहां आती रही।"

"क्यो, क्यो ? आप ऐसा क्या सोचती हैं ? यह आपका घर है।"

"मैं ऐसा-वैसा कुछ नही सोचती। सोचते हैं आप। तभी तो मेरे यहा आने पर आप अपने रसोइया से नाराज हैं। मैं यहा बार बार आती रही हू। आपसे मिलती-जुलती रही हू। फिर समय पडने पर आपका रसोइया मुझे नही, तो और किसे बुलाने जाएगा ? यह काम उसने तमीज और बुद्धिमानी का किया। लेकिन आप उल्टी दिशा मे सोच रहे हैं। मैं दुबारा आयी थी। विवेका जी के मुकदमे के निस्वत याद दिलाने और और यह पूछने कि आप पीते क्यो हैं ?"

विजय तुरत कोई जवाब न दे सका। सिर झुकाकर रह गया। उसे खुद मालूम नही था कि वह पीता क्यो है। जब कुछ नही सूझा तो मुस्कराता हुआ बोल पडा

"इस विषय पर मैंने कभी विचार नही किया।'

"सचाई यह है कि आपने किसी विषय पर अब तक विचार नही किया। विचार मानवीय विवेक से उदभूत होता है। मानवीय मूल्यो का पोषण भी विचारो से ही होता है। मनुष्य को यदि विचार से अलग थलग कर दीजिए तो वह निरर्थक ही नही, समाज के लिए घातक भी बन जाता है।"

"आप ठीक कहती है। मुख सुविधा के जो भी साधन चाहिए, वे भी मुझे मिलते गए। कुछ चीजें मुझे नही मिली तो मैंने सोचा वे मेरे भाग्य मे नही है। शहर मे आकर मानसिक और सामाजिक धरातल पर अपने-आपको अभावग्रस्त मानने लगा। ऐसे क्षण मे शायद नग्गू सरीखे लोगो से भेंट हो गयी।"

"और आप चल पडे। यह नही विचार किया कि किधर जा रहे

ह। मेरा ख्याल है,आपने अपने-आपको ठीक से कभी आका नहीं, देखा और परखा भी नहीं। शहर में केवल नग्गू ही नहीं था, विवेका जी भी थे। उन्हें आप पहले से जानते हैं, फिर भी आपने अपने आपको उनसे अलग रखा। क्यों?"

विजय फिर मौन रह गया। इसका उत्तर उसके पास नहीं था। विवेका को वह बचपन से देखता आया था। उससे लगाव भी था। कहा जा सकता है कि वह विवेका को प्यार करता था। किंतु वह उसे अपने-आपमें नहीं, अपने समानान्तर देखता था। वह पीछे छूट जाता था और विवेका हर मंजिल पर उससे आगे निकल जाता था, जबकि बाहरी दृष्टि से विवेका उसके समक्ष टिक भी नहीं पाता था। विजय ने सोचा कि मनुष्य गतिहीन नहीं रह सकता। इसलिए वह चल तो पड़ा, लेकिन गलत दिशा की ओर। कुछ सोचकर उसने कहा

"विचार के धरातल पर विवेका के साथ मेरा ताल-मेल नहीं बैठता। वह जमींदार के खिलाफ है। मैं स्वयं एक जमींदार का बेटा हूं। वह अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकना चाहता है मेरे पिता हुकूमत के फरमाबरदारों में से एक हैं। फिर भी मैं विवेका को मानता हूं बहुत मानता हूं।"

'यह मैं जानती हूं। किंतु सम्बन्ध का आधार धन-सम्पत्ति नहीं है, यहां तक कि विचारों की एकता भी नहीं होता। सम्बन्ध का आधार तो प्रेम, समता, मानवता और मानवीय मूल्य हुआ करते हैं। विचार के धरातल पर मेरा मत भी तो विवेका जी से नहीं मिलता है। विवेका जी जिन बातों को ढकोसला मानते हैं, उन्हें मैं आत्मा की पवित्रता समझती हूं। कुछ दिन पहले महात्मा गांधी ने अनशन किया था। उस अवसर पर मैंने भी तीस रोज का उपवास रखा। विवेका जी से कम से कम चौबीस घंटे का उपवास रखने का मैंने आग्रह किया था लेकिन वह नहीं माने। फिर भी उनके लिए मेरे हृदय में बहुत सम्मान है। मैं जानती हूं कि इक्के दुक्के आदमियों को डरा-धमका देने से आजादी नहीं मिल जाएगी या पच्चीस-पचास जगहों पर बम फेंक देने से अंग्रेजी फौज का तोपखाना ध्वस्त नहीं हो जाएगा। फिर भी विवेका जी का आदर्श और उनकी कुर्बानी अनुकरणीय है। वह स्वयं देशभक्ति की जलती हुई मशाल हैं, जिसकी रोशनी में समाज

आगे बढ़कर बन्दिनी भारत माता को मुक्त करने के अभियान मे शामिल हो सकता है।"

उसी समय नौकर ने आकर मेज पर 'सचलाइट' अखबार रख दिया। पहले पृष्ठ पर छपा समाचार देखकर दोनो चौक उठे। आठ कालमो की सुर्खी थी 'कलकत्ते पर जापानी हवाई जहाज का हमला'। यह खबर पढ़ने के लिए दोनो ने अखबार की ओर हाथ बढाया। दोनो ने एक साथ ही अखबार को अपनी ओर खीचा, जिससे अखबार दो टुकडा मे बट गया। विजय ने अथपूण हसी के साथ कहा

"मेरे हाथ मे पूरा अखबार आ गया।"

छाया ने छटते ही जवाब दिया "और मेरे हाथ लगा लक्स साबुन का विज्ञापन।"

विजय अचानक ही गम्भीर हो उठा। उसे लगा, जैसे उसके लिए ही यह लक्षणापूण शब्द कहे गए हो। ठीक तो, उसके पास और धरा ही क्या है। बाहरी तडक भडक, वैभव की चमक दमक और ऐश के उथले साधनो के सिवा उसके पास और क्या है? चरित्र की निमलता, विचारो की गम्भीरता और ऊचाई और देश की बलिवेदी पर जा चढने का उत्साह तो विवेका के पास है।

"क्या सोच रहे हैं, आप " छाया ने हसकर पूछा। विजय झेंपता हुआ बोला

"कुछ खास नही। सोचने को मेरे पास कोई विचार तो है नही। और जब विचार नही हैं तो कोई सही रास्ता भी नहीं सूझता। तभी शराब पीने बैठ जाता हू।"

"इन उखडी-उखडी बातो मे कोई अथ नहीहै और यह भी जान लीजिए कि मनुष्य का जीवन निरथक नही होता, बेशक, उसे निरथक बना देने की क्षमता वह अवश्य रखता ह। आपके पास विचार है, हर प्रबुद्ध व्यक्ति के पास विचार होता है। आप अपने भीतर उसकी तलाश कीजिए। तभी आप पायेंगे कि जमीदारी प्रथा अच्छी चीज नही है। गुलामी बहुत बडा पाप है। मनुष्य के पास दो हाथ हैं और दो पाव इनके अतिरिक्त वह बुद्धि और विवेक का धनी है। फिर वह अपनी राह आप क्यो न बनाए? क्यो लम्बे

समय से चली आ रही शोषण की गलत परम्परा को चुपचाप स्वीकार कर ले।'

"आप जानती ही हैं कि विवेका के साथ रहकर भी मैं इन विचारों का कायल नही हुआ। कल ही आपने देख लिया कि मैं क्या हू और अभी सुबह मेरी सगत मे आपके हाथ लगा लक्स साबुन का विज्ञापन।"

'ओ हो यह बात है', छाया हसने लगी और कुछ देर हसती ही रही, फिर बोली

"आप तो बहुत भावुक निकले। इसका मतलब कि म गलत नही हू। आपमे वे सभी गुण हैं जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं। जो भावुक है, वही मवेदनशील भी है।" छाया यह कहकर हसती हुई उठ खडी हुई और हाथ जोडती हुई बोली। "मैं अब चलती हू। याद रखिएगा, मेरे हाथ मे साबुन है। मैं धब्बा को धोकर स्वच्छ कर सकती हू।"

छाया चली गयी। विजय को जीवन मे पहली बार एहसास हुआ, जैसे उसका भी कोई अस्तित्व है। वह भी सम्पूर्ण सृष्टि की एक इकाई है, एक अग। वह अकिंचन अणु ही सही, उसकी अपनी अस्मिता है। महान वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने अणु की असीम शक्ति सिद्ध कर दी है। इस नाते वह भी समाज का एक शक्तिशाली अग बन सकता है।

३०

धुधलके के आगोश मे गाव सिमटता जा रहा था। गाव के चारो ओर, दूर-दूर तक फैले हुए आम के बगीचे अधेरी आकृति का रूप धारण करते जा रहे थे। झोपडियो, मकानो और आगनो मे सुलगने वाले घूडा, चूल्हा के धुए से आकाश और जमीन के बीच एक परदा सा पड गया था। शायद यह एहसास कराने के लिए कि महाकाश अलग है और घटाकाश अलग। गाय, भैंस और बैल बथानो मे खूटो से बध गए थे। नाद मे पानी और कटी हुई घास डाल दी गयी थी। कही कही से कुट्टी काटने की खट खट खटक खटक की ध्वनि आ रही थी तो कही से किसीको पचम स्वर मे पुकारने

की लयबद्ध आवाज गूज रही थी। चमरटोली की औरतें आपस म जो
जोर से लड रही थी।

राघव सिंह स्टेशन जाने की तैयारी मे थे। उनके घर म उत्सव का-
वातावरण था। परिवार के नौकर चाकर तक प्रसन्नता और उत्साह
इधर-उधर आ-जा रहे थे। सब लोग अत्यधिक व्यस्त दीख रहे थे। आ
लगभग चार वर्ष बाद विवेकानन्द जेल से छूटकर आ रहा था। उसकी
सत्यभामा के पाव जमीन पर नही पड रहे थे। देश स्वाधीन हो गया
सत्यभामा सोचती थी कि उसीके बेटे की बदौलत इतनी बडी अंग्रेजी सरका
भारत छोडकर भाग खडी हुई। वह निश्चित थी कि उसका बेटा जेल स
छूटते ही बहुत बडे पद पर जा बैठेगा। राघव सिंह उससे कोई बात पूछने
आते, वह मानिनी सी ऐंठकर कुछ का कुछ जवाब दे देती और राघव सिंह
मूछो मे ही हसकर रह जाते थे।

काति रसोई बना रही थी। पटने स विधवा होकर लौटने के बाद
रसोई बनाने से लेकर घर का सारा काम-काज उसे ही करना पडता था।
सुबह चार साढे चार बजे से लेकर रात साढे दस बजे तक वह एक पाव पर
खडी रहती थी। घर वालो के व्यवहार मे भयकर परिवर्तन आ गया था।
कोई उससे सीधे मुह बात भी नही करता था। किसीने यह भी चिन्ता नही
की कि वह दो बार तपेदिक का झटका झेल चुकी है। उसका शिक्षित होना
उसके लिए अभिशाप बन गया था। यदि कभी सब्जी मे नमक ज्यादा हो
जाता तो सत्यभामा व्यग्य कर उठती, 'तुम्हें यह नही पढाया गया कि
सब्जी में नमक पडता है या नमक में सब्जी पडती है ?" यदि कोई बरतन
साफ नहीं रहता तो नौकरानी की जगह उसे ही बात सुननी पडती

"पढा लिखा बैल इसीको कहते है। अन्धी हो, जो थाली की गदगी
तक दिखाई नही पडती ?"

काता इस तरह के व्यग्य बाण सह लेने की आदी हो गयी थी। उसकी
सास सत्यभामा को बात भर कह देने से सतोष नही होता तो कभी-कभी
ठुकनिया भी देती थी। पिछले चार साल मे वह आठ दस बार अपनी
सास का पाद-प्रहार भी झेल चुकी थी। क्या करती बेचारी काता ? वह
हिन्दू समाज की विधवा थी जिसमे नारियो की पूजा का रिवाज धर्मग्रन्थो

तक ही सीमित था।

कान्ता भी आज बेहद खुश थी। वह अनुभव कर रही थी, जैसे देश या विवेका जी के बन्धन नहीं कटे, बल्कि उसे ही बन्धनों से मुक्ति मिल गयी हो। बहुत दिनों बाद उसके मुखमंडल पर आंतरिक सौन्दर्य की आभा खिल आयी थी। कान्ता का शारीरिक गठन और मुखमंडल विचित्र था। इधर वह प्रायः उदास, अस्वस्थ और खिन्न रहने के कारण आकर्षणहीन दिखने लगी थी, किन्तु कभी-कभी अकारण और अनायास ही, वह अपूर्व सुन्दरी दिखने लग जाती थी। आज वह हर काम बड़ी फुर्ती के साथ सम्पन्न करती जा रही थी, जैसे उसके पाँव में पंख लग गए हों और उसके अंग-प्रत्यंग में बिजली सी स्फूर्ति दौड़ रही हो।

पिछली रात वह एक पल के लिए भी सो नहीं पायी थी। घर की सफाई नौकरानी किया करती थी। उस दिन उसने स्वयं अपने हाथों से हर कमरे की सफाई की। सामान को सुव्यवस्थित किया। बक्सा, पलंग, चौकी, कुर्सी आदि को धो पोंछ यथास्थान करीने से लगा दिया। दीवारों और छतों तक में लगी हुई जाला जाली को साफ कर दिया। इस तरह की सफाई गाँवों में दीपावली के अवसर पर ही की जाती है। कान्ता जानती थी कि जब राम वनवास से लौटे थे, तब अयोध्या में गली-कूचों की सफाई की गयी थी, दीये जलाए गए थे। विवेकानन्द उसके लिए राम से कम नहीं था। उसने अपनी सास से कहा था

"विवेका बाबू शाम के समय आएंगे। यहाँ बिजली तो है नहीं कि चार-छह बल्ब लगा देते। मिट्टी के कुछ दीये ही मँगवा दीजिए।"

अपनी कुलक्षिणी बहू की अच्छी से अच्छी बात सुनकर भी सत्यभामा झल्ला उठती थी। इस बार भी वह बड़े जोर से फटकारते हुए बोली

"तू अपना काम कर बाप खौकी। विधवा होकर दीये जलाएगी और मेरे बेटे की आरती उतारेगी। खबरदार, आगे बढ़कर अपना मनहूस मुँह न दिखाना। कुल देवता को प्रणाम कर लेगा तब तू उसके सामने आना।" सत्यभामा ने उसे इस समय डाँट तो दिया, लेकिन बाद में ख्याल आया, 'अरे बात तो ठीक ही कह रही थी। चार साल बाद बेटा जेल से छूटकर घर आ रहा है। फिर भी क्या यहाँ अँधेरा ही छाया रहेगा?'

गीये मगवा लिए गए थे। कान्ता ने अपने हाथ से कपड़े की बत्तिया बनायी। हर दीये मे लबालब तेल भरकर उनमे बत्तिया सजा दी। एक बडा सा चौमुख दिया था जिसमे उसने घी डालकर कुल देवता के घर म रख दिया। बाहर के चौकठ पर लोटा मे जल भरकर आम के पल्लव के साथ रख दिया गया। जसे जैसे समय बीतता जा रहा था, वैसे वैसे कान्ता का अधैय भी बढता जा रहा था। रसोई बनाने मे कही देर न हो जाए यह सोचकर उसने अपनी सास से पूछा

"माता जी, गाडी आने का समय क्या है ?"

' तुझे क्या जोग टोन करना है जो गाडी का समय पूछ रही है ? चुप चाप जाकर अपना काम कर।" सत्यभामा ने क्रूरतापूवक उसे झिडक दिया। कान्ता का सारा उत्साह क्षण भर के लिए गायब हो गया। वह विवेकानन्द के लिए जोग टोन करेगी ? क्या उसे जोग टोन आता भी है और यह सब होता क्या है ? किस कुकम का फल भुगतने के लिए ईश्वर उसे जीवित रखे हुए है ? कान्ता बहुत उदास हो गयी थी। वह असीम और असह्य वेदना का बोझ लिए धीरे धीरे रसोईघर की ओर चली गयी। उस समय राघव सिंह बरामदे पर खडे थे। कान्ता के चले जाने पर उन्होने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा

"उस बेचारी के साथ तुम्हें कम से कम आज तो इस तरह का व्यवहार नही करना चाहिए।'

"क्या उसीका भतार घर आ रहा है ? यह डाइन तो मेरे फूल जैस बेटे को पहले ही खा पीकर बैठ गयी है। मैं नही चाहती कि इसकी छाया तक मेरे दूसरे बेटे पर पडे। इस कुलक्षिणी के कदम पडते ही मेरे घर का सत्यनाश हो गया। सबसे पहले इसने मेरे बेटे को मुझसे छीन लिया, फिर यह अपनी बेटी को भी खा गयी। इससे भी पेट नही भरा तो अपने पति को ही खा गयी। अब क्या खाएगी ? भगवान जाने कब इस चुडैल से हम सब को छुटकारा मिलेगा ?"

"कैसी बातें करती हो ? शुभ घडी मे ऐसी अशुभ बातें मुह से निकालना पाप है।"

"पाप-पुण्य और धरम-अधरम की बातें आप मत कीजिए। आपके

चलते ही मेरी यह दशा हुई। आज आप मुझे समझाने आए है। इस अभागिन को क्यो नही पटने जाकर समझाने गए थे, जो मर बेटे के पीछे हाथ धोकर पड गयी थी। उसका जीना मुश्किल कर दिया था।"

राघव सिंह ने बात बढाना हितकर नही समझा। वह अपनी पत्नी के स्वभाव स भली भाति परिचित थे। अगर ज्यादा बात बढी तो रग मे भग पड जाएगी। यह सोचकर वह चुपचाप वहा से बाहर खिसक गए।

विवेकानन्द स्टेशन से सीधा घर आया। राघव सिंह के अलावा गाव और इलाके क बहुत से नौजवान भी उसकी अगवानी के लिए स्टेशन पर मौजूद थे। नौजवानो ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'विवेकानन्द जिन्दाबाद' के नारे भी लगाए। फूल मालाओ से उसे लाद दिया। विवेकानन्द उन सबसे बडी आत्मीयता और सहजता के साथ मिला। उन लोगो से फुरसत पाते ही वह घर की ओर चल पडा।

दरवाजे पर गाव की अन्य महिलाओ के साथ उसकी मा खडी थी। बेटे को देखते ही सत्यभामा एक तरह से रो पडी। विवेकानन्द ने झुककर अपनी मा के पाव छूए तो उसन जल्दी से अपने बेटे को कलेजे से लगा लिया और फफक फफककर रान लगी। वह जल्दी जल्दा अपने बेटे के दोना गाल, बाह और पीठ की हड्डिया टटोलने लगी और बोली, "कितना दुबला हो गया है, मेरा लाल।'

विवेकानन्द ने हसते हुए अपनी मा को अलग किया और कहा

"दुबला कहा हुआ हू। पहलवान बन गया हू और जेल मे रोज डड-बैठक और तरह-तरह की कसरत किया करता था । लेकिन मा, भाभी को नही देख रहा हू।"

"अरे उस कुलक्षिणी के दशन के लिए क्यो परेशान हो रहा है? उसे देख लेगा तो तेरी यात्रा ही चौपट हो जाएगी। नाम मत ले उसका। पहले चलकर हाथ-पैर धो ले और कुलदेवता को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद ले।"

मा की बात सुनते ही विवेकानन्द का माथा झनझना उठा। उसे अनुमान लगाते देर नही लगी कि कान्ता कैसा जीवन जी रही होगी। कान्ता की विपन्न, असहाय और आद्र तस्वीर उसकी आखो के आगे यवनिका की

तरह आ गिरी। विवेकान द का उत्साह और उसकी प्रसन्नता खत्म हो गयी। उसके मन मे आया कि वह मा का डपट दे और पूछे कि यदि सुमन भाई जीवित होते तो क्या वह इस तरह की बात बोलती ? विवेकानन्द ने अपने आपपर नियन्त्रण रखते हुए इतना ही कहा

"मा, पहले मैं भाभी से मिलगा, फिर तुम्हारे देवता के दर्शन करूगा। देख तो लू कि तुम्हारे देवता अपने भक्तो की किस हद तक रक्षा कर पात है ?"

"हाय दैया, यह कैसी बातें कर रहा है तू ?" सत्यभामा ने आश्चर्य से अपने होठो पर पाचो उगलिया रखते हुए कहा। विवेकानन्द पर अपनी मा की उस भयावह भगिमा का कोई असर नही पडा। वह भीड को चीरता हुआ भीतर आगन की ओर बढ गया।

सामने वाली कोठरी म ही, किवाड की ओट से, कान्ता सब कुछ देख-सुन रही थी। उसे घर मे बन्द रहने की आज्ञा दी गयी थी, क्योकि वह मन हूस विधवा थी। शुभ घडी म विवेकानन्द को उसका चेहरा नही देखना चाहिए था। लेकिन विवेकानन्द को घडघडाते हुए अपनी ओर आते देखकर कान्ता आने वाली विपत्ति से आतकित हो गयी। उसे सामने देखकर वह प्रसन्न होने की बजाय घबराहट से भरकर चीख-सी उठी

'यह क्या कर रहे हो प्रमोद बाबू ! जाओ, पहले कुलदेवता के दर्शन कर आओ।"

उधर आगन म उठे भुनभुनाहट के स्वर को हवा ने फैलाकर कोलाहल का रूप दे दिया था। औरतें तरह तरह की बात करने लगी। विवेकानन्द सब कुछ अनसुनी करता हुआ बोला

"अगर कुलदेवता के आशीर्वाद का जीता-जागता प्रतीक ही आसानी से देखने को मिल जाए तो उन तक जाने की जरूरत ही क्या है ? तुम यहा क्या खडी हो ?"

"ओफ ओह, तुम समझते क्या नही प्रमोद बाबू। मुझपर रहम करो और बाहर चले जाओ। अनर्थ हो जाएगा, अगर ।'

"अगर मैंने देवता को प्रणाम नहीं किए तो। यही कहना चाहती हो न ?' विवेकानन्द बात काटते हुए बोला, "लेकिन, अनर्थ देवता नहीं

करेंगे। व तो खामोश रहते आए हैं और खामाश ही रहेंगे। मिट्टी की मूर्ति मे बैठे हैं। बेजुबान हैं। यदि वे सत्य बोलते होते तो उन्ह कोई नही पूजता। उन्ह घर के भीतर कोई रहने भी नहीं देता। अनथ करते हैं उस मूर्ति को गढने वाले इन्सान। भाभी, तुम भी इन्सान हो। मैं जानता हू, मूर्ति मे कैद देवता ने तुम्हारे साथ अच्छा सलूक नही किया, इसलिए मैं उसका बहिष्कार करूगा।"

काता हतप्रभ हो उठी। उसकी बुद्धि जवाब दे गई। घबराहट के मारे उसके ललाट पर पसीने की बूदें आ गईं। लगा कि उसका सिर चक्कर खा रहा है। वह अपने आपको गिरने से बचाने के लिए पास रखी हुई कुर्सी का सहारा लेकर उसी पर बैठ गई। विवेकानन्द अपनी भाभी की विचित्र दशा देखकर क्षण भर मे ही समझ गया कि पिछले चार वर्ष भाभी की जिन्दगी मे क्या बनकर बीते होगे। वह अपने विचारो म खो गया कि देश को आजादी तो मिल गई, लेकिन, देशवासियो के मन मस्तिष्क कब मुक्त होंगे? कब तक मनुष्य को मनुष्य की भाति रहने, बोलने, सोचने और जीवन जीने का गरिमापूर्ण अधिकार मिल पाएगा? ठीक उसी समय तूफान के झोंको की तरह सत्यभामा गरजती बरसती वहा आ पहुची

"हाय हाय! किस ठाट से कुर्सी डटाकर बैठी है। जैसे इसके बाप ने कुर्सी बनवाकर भेज दी हो। कलमुही, शर्म नहीं आती! मेरा जवान बेटा यही खड़ा है और तू पटरानी की तरह सिंहासन पर बैठी है? डायन।" यह कहकर सत्यभामा काता की ओर लपकी ही थी कि विवेकानन्द जोर से चीख उठा

"मा!"

इस आकस्मिक और भयकर चीख को सुनकर सत्यभामा जहा की तहा खडी रह गई। काता हडबडाकर कुर्सी से उठ खडी हुई। विवेकानन्द की आखें क्रोध से लाल हो गइ। उसकी भवें चढ़ गई थी। गांव की कुछ औरतो को दरवाजे पर देखकर उसके चेहरे पर क्रोध की क्रूर रेखाए उभर आयीं। उसने ऊचे स्वर मे कहा, "आप लोग चली जाए यहां से।"

भीड छट गयी। बेटे का रौद्र रूप देखकर सत्यभामा भी सहमी सहमी सी चुपचाप जाने लगी।

"तुम ठहरो, मा।"

"क्या है ?"

"मैं यहा से अभी चला जाऊगा।"

"तो रोकता कौन है ?" मा ऐसे बोली जैसे अब रो पड़ेगी। विवेकानन्द ने मा की ओर देखते हुए कहा

"मेरे जाने की बात सुनकर तुम्हारा कलेजा फटा जा रहा है, क्योकि तुम मेरी मा हो। भाभी भी तो किसीकी बेटी है। इसका सुहाग उजड़ गया। तुम्हारे कमजोर और कायर बेटे ने आत्महत्या कर ली। इसके प्रायश्चित्तस्वरूप क्या तुम इसे थोड़ा स्नेह भी नही दे सकती थी ? मेरे लिए तुमने आरती की थाली सजा रखी थी, दीये जला रखे थे, और यही इस असहाय अबला के प्रति तुम्हारा ऐसा क्रूर व्यवहार ? जीवन और मृत्यु क्या हमारे तुम्हारे हाथ की बात है ? हम सुख बाट सकते हैं, लेकिन वह भी हमसे पार नही लगता। खैर, मैं यहा रहना नही चाहता। भाभी को अपने साथ लेकर अभी चला जाऊगा।"

"नही नही, मैं नही जाऊगी।" कान्ता डर से लड़खड़ाती आवाज मे जल्दी जल्दी बोल गयी।

'ऐसे नरककुण्ड मे किस प्रकार रहोगी ? तुम्हे हमारे साथ चलना होगा।" विवेकानन्द अभी भी गुस्से से काप रहा था। कान्ता मे न जाने कहा से अपूर्व दृढता आ गयी थी। वह स्पष्ट स्वर मे बोली

"मैं यहा से कही नही जाऊगी।"

"तो क्या घुट घुटकर मरने के लिए यहा रहोगी ?"

'कुछ भी हो, अब मेरी अर्थी ही यहा से निकलेगी।"

'तो मरो।" यह कहकर विवेकानन्द धम धम करता हुआ बडी तेजी के साथ आगन मे उतरकर दरवाजे से होता हुआ बाहर निकल गया। पर आगन म मरघट की-सी शान्ति छा गयी।

३१

विवदान द आवेश मे आकर ही मा के पास से भाग खडा हुआ था, किन्तु, उसका यह आवेश वस्तुत नितान्त आकस्मिक नहीं था। होश आते ही उसने अपने आस-पास बहुत सारी विसगतिया देखी थी। मा, बहन के रूप मे नारी की श्रद्धा, स्नेह का पवित्र पात्र बनते और उसी पात्र मे प्रेमिका, पत्नी, पतिता या विधवा की छाया पडते ही घृणा, और क्रूरता का उग्रतम रूप म उभरते उसने देखा था। ये विसगतिया उसके गले नहीं उतरती थीं। आदमी हर स्थिति मे आदमी ह। यदि वह गरीब, दीन, हीन, दुखी है ता भी वह प्रेम का पात्र है। यदि वह विधवा है तो उसे सहानुभूति और समान अवसर मिलना चाहिए। यदि वह क्रूर, स्वार्थी, लोभी और पतित ह तो इसके कारण का निदान ढूढा जाना चाहिए।

विवकान द दालान पर भी नही रुका। वह सीधे सडक पर जा पहुचा, जहा से दाहिने या बायें चलकर वह गाव के भीतर जा सकता था या सडक पार करके खेत की पगडण्डी से चमार टोली की तरफ। उस समय विवेकान द ऊची जातियो की विकृत मनोवत्ति, सडे हुए दृष्टिकोण और घिनौनी परम्परा के परिणाम से उद्विग्न हो रहा था। इसलिए उसकी इच्छा दायें-बायें जाने की नही हुई। वह सडक पार खेत की पगडण्डी से होकर दक्षिण की ओर चल पडा।

शाम हो चुकी थी। खेत मे लगे पेड पौधे, झाडी झुरमुट और आस-पास के लता द्रुम, अधेरे के कारण, तरह-तरह की प्रच्छन्न आकृतिया ग्रहण कर चुके थे। विवेकान द को कभी कभी ऐसा लगता था जैसे दूर पर कोई दो मूर्तिया बठी आपस म काना फूसी कर रही हो और जब वह आकृतियो के पास पहुचता तो वहा डरेर उगी हुई घास के अलावा कुछ नही होता था। विवेका का दिमाग स्थिर नही था। तरह तरह के प्रश्न उठ उठकर उसे परेशान कर रहे थे।

परम्परा क्या है? जो अनन्त काल से चली आ रही है, उसे ज्यो का त्यो ग्रहण कर लेना ही क्या नैतिक और सामाजिक दृष्टि से उचित है? लेकिन लेकिन परम्परा तो एक गहरी झील के समान है। उसका जल

स्थिर होते हुए भी परिवतनशील है। इसम चारो ओर से नया जल आ की गुजाइश होनी चाहिए। समय-समय पर इस झील की खुदाई और सफाई भी होनी चाहिए ताकि इसका जल निमल और उपयोगी रह सके, अन्यथा इसम बदबू, सडाध और गन्दगी के उत्पन्न हो जाने का खतरा रहेगा जो कालान्तर मे घातक रोग फैलाने का कारण बन सकती हैं ।

निस्सन्देह परिवार की एक मर्यादा होती है। किसी समाज या परिवार की विशेष परम्परा इस मर्यादा को सम्पुष्ट करती रहती है। कदाचित सामाजिक व्यवस्था और उसके अनुशासन के लिए यह मर्यादा आवश्यक है, किन्तु यदि कोई मर्यादा परम्परा या अनुशासन व्यक्ति की गति, विकास को रोक दे और उसकी गरिमा को नष्ट भ्रष्ट कर दे तो ऐसी मर्यादा या परम्परा को तोडन म किसीको कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। व्यक्ति का विकास और उसकी गतिशीलता सामाजिक उत्थान के साथ सम्बद्ध है। अतीत की बहुत सी उपलब्धिया एसी भी हो सकती हैं जो हमारे भविष्य को सवारन और दिशा निर्देश देने की बजाय उन्ह विकृत और अवरुद्ध कर देन म सहायक बनें । कान्ता का दोष क्या है ? वह विधवा है। क्या इसलिए उसे जीवन पयन्त एक ऐसी मर्यादा और परम्परा का पालन करते रहना चाहिए जो उसके भविष्य के सभी माग अवरुद्ध कर दे ? क्या कोई जीवित प्राणी अतीत म लौटकर जीवन के लक्ष्य प्राप्त कर सकता है ?

विवेकानन्द किसी निष्कष पर पहुच नही पा रहा था। उसका अतीत ग्रसित सस्कार उसके विवक को झकझोर रहा था। उसे लगा जैसे सबसे बडी और घातक दासता है अतीत को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेने की मजबूरी। राजनीतिक दासता का कुप्रभाव सतही हुआ करता है, किन्तु अतीत और परम्परा की रूढिगत मान्यताए आत्मा का ही हनन कर देती ह। तब मनुष्य वास्तव मे मनुष्य नही रह जाता। वह पालतू पशु से भी बदतर हो जाता है। विवेकानन्द ने अहसास किया कि स्वाधीनता की लडाई अभी खत्म नही हुई। आर्थिक और सास्कृतिक क्रान्ति किए बगैर जनकल्याण नही है और ऐसी क्रान्ति भारत जैसे पुराणपथी देश म लाना बडा कठिन है। इस क्रान्ति के बाद ही समाज स्वाधीन हो पाएगा। विवेकानन्द कुठित हो गया। इसी स्वाधीनता के लिए उसने अपने जीवन

के अनेक मूल्यवान क्षण तिल तिलकर जलने मे व्यतीत किए। वह स्वाधी-नता क्या थी ? हुकूमत बदल गयी। विदेशियों की जगह देशी हुक्मरान अपने-आपको सुव्यवस्थित और सुदृढ करने मे सलग्न हो गए हैं। क्या इसी स्वाधीनता के लिए वह पागल की तरह दिन-रात माला फेरता रहा और जेल की सजा भुगती ? भुवनेश्वर सिंह ज्यो के त्यो हैं। जतना जैसे असख्य शोषित और दलित आज भी शोषित और दलित हैं। २०-२१ साल की माता के जीवन मे स्वाधीनता का कोई अर्थ नही है।

विवेकानन्द के पाव अचानक रुक गए। बाईं तरफ के खेत से फुस-फुसाहट की आवाज आ रही थी। उसने उस दिशा मे नजरें गडाकर देखा। घने अधकार के बावजूद अरहर के झूमते पौधो के करीब का मचान नजर आने लगा। उधर कुछ देर तक देखते रहने के बाद मचान पर की दो आकृतिया भी स्पष्ट होने लगीं। अनायास ही उसके पाव उस तरफ बढ गए। वे आकृतिया आरम्भ मे विवेकानन्द की उपस्थिति से बेखबर थीं। वह जब बिल्कुल पास जा पहुचा तब जाकर उन आकृतियो को होश आया और वे घबराकर उठ खडी हुइं। उन आकृतियो को पहचानते ही विवेका-नन्द वहा से उल्टे पाव लौट चला। यह कैसा रिश्ता है ?

सभी जानते हैं कि शिववदन ने जतना को गोली मार दी थी। वही शिववदन जतना की बेटी जिरिया के साथ रात के अधेरे मे मचान पर रग-रेलिया मना रहा है। क्या यह प्रेम का रिश्ता है ? या पाशविक भूख का ? या कोई और रिश्ता जिसके बगैर जीवन का निर्वाह नही हो सकता ? ठीक तो, इसमे शिववदन या जिरिया ही क्या करे, जब उसके पिता राघव सिंह ने आर्थिक कठिनाइयो से तग आकर भुवनेश्वर सिंह से समझौता कर लिया। यदि उसके पिता सच्चाई पर दृढ रहते तो आज शिववदन और भुवनेश्वर सिंह कहा होते ? लगता है, सारे रिश्तेनाते और पूर्ति के आर्थिक आधार पर कायम हैं। जो लोग इस पुरानी सामन्ती और पूजीवादी व्यवस्था के पोषक हैं वे लोग ही गला फाड फाडकर परम्परा, मर्यादा, सस्कृति और धर्म के नाम पर अतीत की उपलब्धि को कलेजे से लगाए रखने का उपदेश देते हैं। यह मरा हुआ अतीत न जाने कब तक हम आदिम मानव की याद दिलाता रहेगा ? वह भी तो उसी

अतीत की लाश को कलेजे से चिपकाए रखना चाहता है। तभी तो वह काता को जीवन भर मरते रहने के लिए छोड आया। उसके भाग आने से क्या समस्या का समाधान हो जाएगा ?

विवेकानन्द अचानक ही बडी तेजी के साथ अपने घर की ओर लौट चला। दालान पर उस समय सन्नाटा था। राघव बाबू बरामदे पर चुपचाप लेटे हुए थे। उन्होने सिर उठाकर विवेकानन्द को देख लिया फिर व पूर्ववत लेट गए। वह एक खाट निकालकर बाहर चबूतरे पर, ले आया और वहीं लेट गया। उसकी आधी नींद उड चुकी थी। आगन मे से हल्का हल्का शोरगुल उठकर उसे बेचैन कर रहा था। तभी आगन से किसी नारी के रोने का कण्ठस्वर सुनाई पड़ा। विवेकानन्द खाट पर उठ बैठा। ध्यान लगाकर सुनते ही वह आशकित हो उठा। रोने की आवाज काता की थी।

विवेकानन्द के चले जाने के बाद घर के भीतर भयकर शान्ति छा गयी, जैसी शान्ति तूफान के आने से पहले छा जाती है। विवेकानन्द चार साल बाद जेल से लौटा था। उसके स्वागत के लिए बडे उत्साह के साथ तैयारियां की गयी थी। उसे खिलाने के लिए तरह-तरह के पकवान बनाय गए थे। लेकिन घर मे कदम रखते ही वह उल्टे पाव बाहर भाग गया। उसने एक घट पानी तक नही पिया। सत्यभामा के दिमाग में सवाल उठा कि ऐसा क्यो हुआ ? यह सवाल एक तूफान बनकर सत्यभामा की नस नस में समा गया। वह अपने पर नियत्रण नही रख सकी। अब उसे विश्वास हो गया कि काता निश्चित रूप से डायन है। जरूर उसने श्मशान जगा रखा है। निश्चय ही उसने किसी पिशाचिनी को साध रखा है। उसीके चलते उसका घर बरबाद हो गया। बडा बेटा गया, पोती गयी और अब दूसरा बेटा भी हाथ से निकला जा रहा है। यह सब सोचते ही सत्यभामा उन्मादग्रस्त होकर काता की तरफ दौडती हुई बोली

"अब भी तुझे सन्तोष नही हुआ ? क्या तू मेरे दूसरे बेटे को भी खाकर दम लेगी ? अरी चुडैल, मेरी पोती और एक बेटे को खाकर तेरा पेट नही भरा ?"

लालटेन की रोशनी मे काता ने अपनी सास का रौद्र रूप देखा। वह समझ गयी कि आज उसकी खैर नही है। लात घूसे तो पहले भी उसपर

बरसते ही रहे थे, लेकिन आज वह बेकसूर होते हुए भी विवेकानन्द जी के रुठकर चले जाने का मुख्य कारण वही है। वह सहमकर चूल्हे के पास ही खडी होती हुई बोली

"इसमे मेरा क्या कसूर है मा जी ? मैंने तो कुछ भी नही किया।"

"तूने कुछ नहीं किया ? तू औरत नही रडी है। तूने मेरे बडे बेटे को शादी से पहले ही उसे अपने जाल म फसा लिया था। अब तूने मेरे इस दूसरे बटे पर भी जादू कर दिया है। डाकिनी, मैं तुझे जिन्दा नही छोडूगी।"

सत्यभामा ने काता के सिर के बाल पकड लिए। काता को जोर का झटका लगा और वह चूल्हे के पास गिर पडी। सत्यभामा ने चूल्हे से जलती हुई एक लकडी उठा ली और पागल की तरह काता की देह पर बरसाने लगी। अधजली लकडी की चिनगारिया काता की देह पर और आसपास बिखर गयी। काता चीत्कार कर उठी। ऐसी स्थिति मे भी काता को इतना होश था कि कहीं गाव वाले उसके रोने की आवाज को सुन न लें, इसलिए उसने अपने आचल का किनारा अपने मुह मे ठूस लिया।

उसी समय विवेकानन्द आगन मे आ पहुचा। अपनी मा का ऐसा भयकर और घृणित रूप देखकर वह स्तभित रह गया। क्षण भर के लिए वह काठ बना एक ही जगह पर खडा रह गया। होश आने पर विवेकानन्द ने लपककर मा का हाथ पकड लिया और कहा

'यह क्या कर रही हो ? क्या यही मा का रूप है ?"

काता कुछ देर तक औधी पडी सुबकती रही। सत्यभामा को यह देखकर सतोष हुआ कि उसका बेटा लौट आया है। वह अपने बेटे के स्वभाव से परिचित थी। इसलिए चुपचाप वहा से खिसककर बरामदे पर जा बैठी। काता ने विवेकानन्द के पैर पकडकर रोते हुए कहा

'मुझे ल चलो प्रमोद बाबू। मुझे यहा से ले चलो। मैं एक पल भी नहीं रह सकती। तुम्हारे भाई स्वय तो चले गए और मुझ अभागिन को न जाने किस जन्म का पाप भुगतने के लिए छोड गए। बोलो प्रमोद बाबू चुप क्या हो नही ले चलोगे मुझे ? अभी अभी तो तुमने मुझसे चलने को

कहा था मैं तुम्हारे यहा नौकरानी बनकर रहूगी। तुम ता मुझ बहुत प्यार करत थे। अब चुप क्या हो? क्या अपन भाई को दिखान भर के लिए मुझे इतना मानते थे? अब मैं ऐसी परायी बन गयी? क्या तुम्हारी नजर मे भी मे कुलक्षिणी हू, कलकनी हू?"

"नही भाभी, तुम निष्कलक हो, बहुत शुभ हो। जो लोग तुम्ह कुलक्षिणी कहते हैं वे स्वय बबर और घिनौने हैं। उठो, तैयार हो जाओ। हम लोग अभी तुरत ही स्टेशन चलेंगे। रिश्ता एक मूल्य है और मूल्य की स्थापना के लिए ही रिश्ता बनाया जाता है। इस घर म कोई मूल्य नही रह गया है, मानवीयता नही रह गयी है। यहा के लोग सडी-गली परम्पराओ को ढोते रहने मे धम मानते हैं जबकि यह घोर अधम है। जो धम आदमियत की बलि चढ़ा दे उस धम को जड मूल से समाप्त कर देना ही बेहतर है।"

विवेकानन्द ने काता की बाह पकडकर उसे उठाया और सहारा देता हुआ कमरे म ले गया।

उसी रात को विवेकानन्द अपनी भाभी के साथ पटने के लिए रवाना हो गया। किसीने कोई रोक-टोक नही की। सत्यभामा देवी बरामदे मे बैठी कलेजा पीट-पीटकर रोती रही। अडोस पडोस की कुछ महिलाए और पुरुष दरवाजे पर आकर खडे हो गए। राघव बाबू दालान पर बैठे रहे, लेकिन कुछ बोल नही सके। विवेकानन्द अपने क्रातिकारी व्यक्तित्व के चलते जहा श्रद्धा का पात्र था, वही वह अपने इद गिद एक आतक भी उत्पन्न करता था। लोग मन ही मन उससे डरते भी थे। इसलिए वह जब काता के साथ अधेरी रात मे खेत की पगडडी से स्टेशन की तरफ चल पडा, तब किसीको यह कहने की हिम्मत नही हुई कि सुबह होने पर चले जाना। इतनी रात को भूखा प्यासा कहा भटकोगे? कोई कुछ कहता कैसे? ऐसी घटना गाव म घटित होते किसीने देखा नही था। सब यह सोचकर खामोश रह कि अब कुछ भी घटित हो सकता है। समय बदल रहा है। बेशक, सुबह होने मे अभी काफी देर है।

३२

पटना पहुचते ही विवेकानन्द के सामने दो प्रमुख समस्याए खडी हो गयी। पहली समस्या थी मकान की और दूसरी समस्या थी जीविकोपार्जन की। कोई उपाय न देखकर वह स्टेशन से सीधे विजय के डेरे पर जा पहुचा। विजय काता को साथ देखते ही पूछ बैठा

"क्या काता भाभी का इलाज करवाने के लिए इन्हें यहा ले आए हो?"

"नही, कुछ ऐसी बात है कि भाभी अब गाव म नही रह सकती।"

"गाव में नहीं रह सकती? तो क्या यह तुम्हारे साथ अकेली रहेंगी? क्या हो गया गाव मे? उनका किसीके साथ कोई सम्बन्ध ।"

"क्या कहते हो? ऐसी कोई बात नही है। एक विधवा को भी जीवित रहने का अधिकार है। वह भी काता जैसी विधवा को जिसकी उम्र अभी कुछ नही है। लेकिन, हमारे घर के लोगो को अब यह फूटी आख भी नही सुहाती। इनके साथ अमानवीय व्यवहार हुआ करता है।"

यह सुनकर विजय हस पडा। विवेकानन्द ने हक्का-बक्का होकर उसकी ओर देखा। विजय शायद अपने मित्र के मन का भाव समझ गया। बोला

"यहा के लोग भी इन्हें हमारे साथ रहते देखकर पसन्द नही करेंगे। इस मामले मे गाव और शहर मे कोई अन्तर नही है। तुम जानते ही हो विवेका, कि हमारे देश का नाम भारतवर्ष है, इग्लैंड या अमेरिका नही।"

"जो स्थिति आज भारतवर्ष मे है, वही स्थिति कभी इग्लैंड और अमेरिका म भी थी। जो कुछ आज भारतवर्ष मे है, कुछ युग पहले वह यहा भी स्वप्नवत था। समय परिवर्तनशील है और समाज को युग और समय के साथ बदलना चाहिए।"

"अभी समाज बदला नही है विवेका। पागलपन मत करो।"

"देश की स्वाधीनता के लिए मैं जिन दिनो कुछ करता था, उन दिनो भी तुम मुझे पागल समझते थे।"

"वह और बात थी। और यह विधवा भाभी को जो दुर्भाग्य से जवान क्या कहू ।"

कहा था मैं तुम्हारे यहा नौकरानी बनकर रहूगी। तुम तो मुझे बहुत प्यार करते थे। अब चुप क्यो हो? क्या अपने भाई को दिखाने भर के लिए मुझे इतना मानते थे? अब मैं ऐसी परायी बन गयी? क्या तुम्हारी नजर म भी मे कुलक्षिणी हू, कलकनी हू?"

"नही भाभी, तुम निष्कलक हो, बहुत शुभ हो। जो लोग तुम्ह कुलक्षिणी कहते हैं वे स्वय बबर और घिनौने हैं। उठो, तैयार हो जाओ। हम लोग अभी तुरत ही स्टेशन चलेंगे। रिश्ता एक मूल्य है और मूल्यो की स्थापना के लिए ही रिश्ता बनाया जाता है। इस घर मे कोई मूल्य नही रह गया है, मानवीयता नही रह गयी है। यहा के लोग सडी गली परम्पराओ को ढोते रहने म धम मानत ह जबकि यह घोर अधम है। जो धम आदमियत की बलि चढ़ा दे उस धम को जड मूल से समाप्त कर देना ही बेहतर है।"

विवेकानन्द ने कांता की बाह पकडकर उसे उठाया और सहारा देता हुआ कमरे मे ले गया।

उसी रात को विवेकानन्द अपनी भाभी के साथ पटने के लिए रवाना हो गया। किसीने कोई रोक टोक नहीं की। सत्यभामा देवी बरामदे म बैठी कलेजा पीट-पीटकर रोती रही। अडोस-पडोस की कुछ महिलाए और पुरुष दरवाजे पर आकर खडे हो गए। राघव बाबू दालान पर बठे रहे, लेकिन कुछ बोल नही सके। विवेकानन्द अपने क्रातिकारी व्यक्तित्व के चलते जहा श्रद्धा का पात्र था, वही वह अपने इद गिद एक आतक भी उत्पन्न करता था। लोग मन ही मन उससे डरते भी थे। इसलिए वह जब कांता के साथ अधेरी रात मे खेत की पगडडी से स्टेशन की तरफ चल पडा, तब किसीका यह कहने की हिम्मत नही हुई कि सुबह होने पर चले जाना। इतनी रात को भूखा प्यासा कहा भटकोगे? कोई कुछ कहता कसे? ऐसी घटना गाव मे घटित होते किसीने देखा नही था। सब यह सोचकर खामोश रहे कि अब कुछ भी घटित हो सकता है। समय बदल रहा है। बेशक सुबह होने मे अभी काफी देर है।

३२

पटना पहुचते ही विवेकानन्द के सामने दो प्रमुख समस्याए खडी हो गयीं। पहली समस्या थी मकान की और दूसरी समस्या थी जीविकोपाजन की। कोई उपाय न देखकर वह स्टेशन से सीधे विजय के डेरे पर जा पहुचा। विजय काता को साथ देखते ही पूछ बैठा

"क्या काता भाभी का इलाज करवाने के लिए इन्हें यहा ले आए हो ?"

"नही, कुछ एसी बात है कि भाभी अब गाव मे नहीं रह सकती।"

"गाव मे नही रह सकती ? तो क्या यह तुम्हारे साथ अकेली रहेंगी ? क्या हो गया गाव म ? उनका किसीके साथ कोई सम्बन्ध ।"

'क्या कहते हो ? ऐसी कोई बात नही है। एक विधवा को भी जीवित रहने का अधिकार है। वह भी काता जैसी विधवा को जिसकी उम्र अभी कुछ नही है। लेकिन, हमारे घर के लोगो को अब यह फूटी आख भी नही सुहाती। इनके साथ अमानवीय व्यवहार हुआ करता है।"

यह सुनकर विजय हस पडा। विवेकानन्द ने हक्का बक्का होकर उसकी ओर देखा। विजय शायद अपने मित्र के मन का भाव समझ गया। बोला

"यहा के लाग भी इन्हें हमारे साथ रहते देखकर पसन्द नही करेंगे। इस मामले में गाव और शहर में कोई अन्तर नहीं है। तुम जानते ही हो विवेका, कि हमारे देश का नाम भारतवष है, इग्लैंड या अमेरिका नही।"

"जो स्थिति आज भारतवष मे है, वही स्थिति कभी इग्लड और अमेरिका म भी थी। जो कुछ आज भारतवष मे है, कुछ युग पहले वह यहा भी स्वप्नवत् था। समय परिवतनशील है और समाज को युग और समय के साथ बदलना चाहिए।"

"अभी समाज बदला नही है विवेका। पागलपन मत करो।"

'देश की स्वाधीनता के लिए मैं जिन दिनों कुछ करता था, उन दिनो भी तुम मुझे पागल समझते थे।"

"वह और बात थी। और यह विधवा भाभी को जो दुर्भाग्य से जवान क्या कहू ।"

'कहने की आवश्यकता नही है। मैने विचार कर लिया है। हर स्थिति का सामना करूगा।"

"टूट जाओगे। समाज की ताकत ईश्वर की ताकत जैसी होती है।"

विवेकानन्द ने कोई जवाब नही दिया था। वह अपने मित्र के दकियानूसी विचारो से परिचित था। उसने सोचा, विजय धरती तोडने वाला म नही है। वह तो फसल काटने वाला मे है। वह यह भी जानता था कि विजय सामन्ती परम्परा के स्तम्भ बाबू भुवनेश्वर सिंह जसे बहुत बडे जमीदार का बेटा है। इन जमीदारो, सामन्तो और बडे बडे पूजीपतियो का निहित स्वार्थ पुरानी परम्पराओ को अक्षुण्ण रखने मे है। विवेकानन्द को उसकी बातो से न तो दुख पहुचा और न आश्चय हुआ। किन्तु, छाया के बदले हुए स्वभाव और व्यवहार से वह अवश्य चिंतित हो उठा। छाया वहा लगभग रोज ही आती जाती थी। विवेकानन्द वर्षो बाद छाया को देखते ही आन्तरिक आनन्द से हुलस उठा था। थोडी देर के लिए वह अपनी तमाम परेशानियों और समस्याओ को भूल बैठा था। उस समय कमरे मे कोई नही था। विजय प्रदेश के एक नेता से मिलने गया हुआ था। कांता स्नान करने गयी थी। विवेकानन्द छाया को देखते ही उठ खडा हुआ। विमुग्ध भाव से उसकी ओर देखता हुआ बोला

"कैसी हो ? पिछले चार साल मे बहुत कुछ बदल गयी हो, लेकिन तुम्हारी मुखाकृति मे कोई परिवतन नही आया।'

छाया सिर झुकाए कुछ देर तक बैठी रही, बोली कुछ भी नही। विवेकानन्द ने सोचा, शायद छाया शरमा रही है। उसने उसे निहारते हुए पूछा, "तुम्हारे बाबूजी कैसे हैं ?

"ठीक हैं। वे जज बन गए हैं।"

'बधाई। कब यह तरक्की मिली ?"

"सुना, मा से लडकर भाभी के साथ भाग आए हो ?" छाया ने विवेकानन्द के प्रश्न को अनसुना करके पूछा। विवेकानन्द जैसे तैयार बैठा था। बोला

"भागकर नही आया हू। सबको बताकर चला आया हू। मैं नाराज किसीसे नही हू। सचाई यह है कि मेरे भाग्य मे शायद जीवन-पयन्त

व्यवस्था से लडते रहना ही लिखा है।"
' लेकिन यह अच्छा नही हुआ।"
'क्यो? मेरे सामने रास्ता ही क्या रह गया था? क्या मैं अपनी आखो के सामने काता को तिल तिलकर मरते देखता रह जाता?"
"ऐसी अनगिनत स्त्रिया तिल तिलकर व्यवस्था की बलिवेदी पर चढती जा रही है। सबको बटोरो लगो, तो कुम्भ मेला का दृश्य उपस्थित हो जाएगा।"
"काता को तुम अनगिनत स्त्रिया मे गिनती हो?"
"सिद्धान्त और आदश व्यक्ति को नहीं देखता। बेशक, चरित्र और व्यक्तित्व की अपेक्षा अवश्य करता है। इस देश की हवा ही ऐसी है।"
"आदश और सिद्धात हवा से पैदा नही होते। इनका उत्स या प्रेरणा-स्थल भी किसी न किसी रूप मे व्यक्ति ही है। विधवा को भी जीने का अधिकार है, इस सिद्धात या आदश का अहसास मुझे काता ने दिया।"
"मैं तुमसे सहमत नही हू। व्यवस्था से लडने के लिए भी आदश चरित्र चाहिए। यदि तुम एक व्यक्ति की खातिर पूरी व्यवस्था से लोहा ले बैठे तो लोगो को तुम्हारे आदश पर ही शका होगी।'
विवेकान द ने बहुत गौर से छाया की ओर देखा। छाया के होठो पर अविश्वास और व्यग्य के भाव घनीभूत हो रहे थे। विवेकान द ने किंचित विह्वल होकर कहा
"नही छाया, काता भाभी निमित्त मात्र हैं उस आदश का जिसे हम धरती पर उतारना चाहत हैं। काता अब व्यक्ति नही रह गयी हैं। प्रश्न है कि काता जैसी विधवाओ को घोर यातना देकर क्रूरतापूवक मार डालना चाहिए या इसे भी सम्मानपूवक जीने का अधिकार मिलना चाहिए? छाया, मैं जानता हू कि दुनिया मुझे गलत समझ रही है। विजय के व्यवहार मे भी परिवतन आ गया है। किन्तु उसकी भी चिंता नही है। वह तो चाहेगा कि पुरानी व्यवस्था कायम रहे। किन्तु मेरा विश्वास है कि तुम मुझे गलत नही समझोगी।"
"मर समझने या न समझने से क्या होता है। तरह-तरह के प्रश्न हुगे, लोग उगलिया उठायेंगे और तुम्हारी सारी शक्ति उन प्रश्नो का

उत्तर देते-देते चुक जाएगी। व्यवस्था को बदलने का जो तुम्हारा उद्देश्य है वह कभी पूरा नही होगा। साधना और पवित्रता कोई बुरी चीज नही होती। हमारे देश मे विधवा के लिए त्याग,साधना और पवित्रता का माग निश्चित किया गया है। इसमे क्या बुराई है ? जीवन का उद्देश्य केवल सुख भोग तो नही है ?"

"छाया !" विवेकान द अचानक ही चीख-सा पडा। उसकी चीख का छाया पर कोई असर नही पडा। वह शाति पूर्वक बोली

'मैं जानती थी कि मेरी बात तुम्हे अच्छी नही लगेगी। फिर भी मैं कहना चाहती हू और सत्य का सहारा लेकर कहना चाहती हू कि आने वाले दिनो मे, तुम्हारे लिए, काता की समस्या प्रमुख हो जाएगी और आदश स्थापित करने की बात गौण।"

"सत्य को सहारे की आवश्यकता नही होती यह कटु सत्य भी जान लो। तुम्हारी बातो मे मुझे कही न कही स्त्रियोचित ईर्ष्या की गध मिल रही है। दूसरो के लिए तप, त्याग और साधना का माग इगित करने वाला वस्तुत अपने सुख भोग के अधिकार पर आच नही आने दना चाहता।'

छाया ने विवेकान द की ओर देखा। उस समय उसका मुखमडल आरक्त हो उठा था। छाया उठ खडी हुई। उसी समय काता वहा आ पहुची थी। काता की ओर देखकर छाया ने कहा

"अहकार सुपात्र मे हो या कुपात्र मे, अहकार ही कहलाएगा। तुम अपने अह को सिद्धात और आदश का रूप देकर दूसरो पर थोपने की कोशिश करते हो और दूसरा की बाता मे तुम्हे ईर्ष्या और ओछेपन की गध आती है।"

यह कहकर छाया अचानक ही वहा से चली गयी। काता कुछ समझ नही पायी। उसने विवेकान द की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि स देखा। विवेका न द की आखें झुक गयी। वह चुपचाप सिर झुकाकर कुर्सी पर बैठ गया।

इस घटना के बाद वह समझ गया कि उसे किसीकी सहानुभूति अथवा सदभाव की अपक्षा नही करनी चाहिए। इस युद्ध मे उसे अकेले ही जूझना है। वह निद्वद्व था, क्याकि काता से व्यक्तिगत प्रेम होते हुए भी काता म उसका कोई स्वाथ नहीं था। उसका प्रेम परमाथ से प्रेरित था। वह

निष्क्रिय होकर माता को उसके अपने पाव पर खडा होने मे योग भर देना चाहता था। इसके लिए आवश्यक था कि पहले वह स्वय अपने पाव पर खडा हो जाए। यह सोचकर विवेकानन्द ने नौकरी की तलाश शुरू की।

दिन भर वह चक्कर काटा करता था और शाम को निराश होकर डेरे पर लौट आता। शहर के जितने भी नेता थे, वे सत्ता हथियाने के जोड-तोड म व्यस्त थे या भक्तो, अनुयायियो और चाटुकारो से घिरे हुए थे। इनम से काफी लोग विवेकानन्द को जानते थे, किंतु उन्हें फुरसत नही थी कि वे शातिपूवक उसकी बात सुनते।

देश का बटवारा हो चुका था। नेताओ ने कागज के नक्शे पर एक लकीर खीच दी। उन्होने यह भी नही सोचा कि स्याही की लकीर से खून के फव्वारे फूट पडेंगे। उन नेताओ ने स्वाधीनता के अग्रदूत और सत्य के मसीहा महात्मा गाधी की बात नही सुनी। गाधी जी किसी भी कीमत पर देश का बटवारा नही चाहते थे। वे द्रष्टा थे। उन्हें मालूम था कि देश का बटवारा यदि कर दिया गया तो भारत की सामाजिक सस्कृति खतरे मे पड जाएगी। हिंदू मुसलमान के बीच ऐसी दीवार खडी हो जाएगी कि उसे इतिहास भी नही मिटा पाएगा। इसीलिए गाधी जी की उपस्थिति और अस्तित्व तक को अस्वीकृत करके उन नेताओ ने विदेशी हुकूमत के साथ समझौता कर लिया था। ऐसे सत्ताप्रेमी लोग विवेकानन्द जसे सवेदनशील और प्रबुद्ध क्रान्तिकारी युवक को क्यो महत्ता प्रदान करते ! जब उन्होने कागज पर लकीर खीचकर हजारो माताओ को सतानहीन बना दिया, लाखों नारिया विधवा हो गयी, हजारो युवतियो की अस्मत राक्षसी वृत्ति का शिकार बन गयी तब भला उन्ह माता के दुख-दद की चिंता क्यो होती ?

विवेकानन्द को कही नौकरी नही मिली। अन्त मे घूमता घामता वह उसी प्रेस में पहुचा, जहा कभी उसका भाई सुमन काम करता था। सम्पादक ने बडे सम्मान के साथ उसे बैठाया और पूछा

"आपके बहुत से साथी तो दिल्ली पहुच गए हैं। नौकरी मे क्या धरा है ? यही मौका है। मुख्यमत्री आपको जानते ही होगे। क्या नही उनसे मिलकर सविधानसभा या ससद की सदस्यता के लिए प्रयत्न करते हैं ? '

'मुझे इसम दिलचस्पी नहीं है। फिलहाल मैं नौकरी करना चाहता

हू। यदि आप मेरी मदद कर सकें तो मैं आपका अनुगृहीत हूगा।"

"यहा प्रेस म कोई जगह नही है। दिल्ली स भी हमारा अखबार निक लता है। यदि आप वहा जाना चाहते हैं तो मैं आपकी सहायता कर सकता हू। दिल्ली मे निकलने वाला हमारा अखबार बहुत कठिनाई से निकल रहा है। वहा हडताल चल रही है। यदि आप दिल्ली मे काम करना चाहू तो मैं आपको आज ही भेजने की व्यवस्था कर सकता हू।"

हडताल की बात सुनकर विवेकानन्द को सकोच हुआ। क्या अपना स्वाथ सिद्ध करने के लिए दूसरो के पेट पर लात मारना उचित होगा? उसे यह प्रस्ताव सुखकर नही लगा किंतु उसके सामने कोई रास्ता नही रह गया था। छाया और विजय के व्यवहार से उसे मर्मान्तक पीडा पहुची थी। अब वह एक दिन के लिए भी विजय के डेरे मे नही रहना चाहता था। उसने अपने दुविधाग्रस्त मन पर जबरन नियत्रण करते हुए कहा

"मुझे मजूर है। यदि आप व्यवस्था कर दें तो मैं कल ही दिल्ली जाने को तैयार हू।"

दिल्ली जाने की व्यवस्था हो गयी। तीन सौ रुपये माहवार पर विवेकानन्द को उप सम्पादक के पद पर काम करने के लिए नियुक्ति पत्र मिल गया। अपनी इस सफलता पर वह प्रसन्न हो उठा। उसे अधिक प्रसन्नता इस बात की थी कि अब वह विजय की सहानुभूति से मुक्त हो जाएगा।

नौकरी की चिंता से मुक्त होते ही विवेकानन्द फिर दुविधाग्रस्त हो गया। वह समझ नही पाया कि छाया क्या चाहती है? छाया जसी विचार शील, बुद्धिमती और उदारहृदया नारी भी क्यो चाहती ह कि काता तिल तिलकर, घुट घुटकर मर जाए? यह नारी चरित्र क्या है? इसम इतना विरोधाभास क्यो है? क्या यही सब देखकर नीत्शे न नारी को जानवर कहा है? या वह थैकरे के अनुसार अगम्यता की जीती जागती पुतली है? शायद यही सत्य हो, अन्यथा छाया नारी होकर भी नारी के दुख-दद को क्यो नही महसूस करती?

दिल्ली जाने और वहा पहुचकर महीने भर रहन सहने की व्यवस्था करने के लिए विवेकानन्द के पास पैसे नही थ। विजय ने उत्साहपूर्वक उसकी सहायता की। उसका यह उत्साह और सहज व्यवहार देखकर

विवेकानन्द को आश्चर्य भी हुआ। जब वह दिल्ली के लिए गाडी मे बैठा तब एक ही प्रश्न उसे परेशान करता रहा कि विजय कही उससे मुक्त तो नही होना चाहता था ? उसके साथ छाया भी स्टेशन तक उसे छोडने के लिए आई हुई थी। छाया की आखो मे गहन उदासी थी। उसके होठ कुछ कहने के लिए फडक उठते थे, लेकिन अन्त तक वह कुछ कह नही पाई। जब गाडी खुल गयी तब उसने देखा, छाया की आखें छलछला आई थीं।

३३

गाडी तेज रफ्तार मे भागी जा रही थी। स्टेशन पर स्टेशन पीछे छूटते जा रहे थे। विवेकानन्द के लिए अपने प्रदेश से बाहर जाने का यह पहला अवसर था। दिल्ली उन दिनो विवेकानन्द और काता जैसो के लिए अन जान ही नही, आतककारी जगह थी। जो भी चीज पहुच से बाहर होती थी, उसके लिए कह दिया जाता था कि दिल्ली दूर है। उसी दिल्ली शहर म काम करने के लिए वह अचानक ही चल पडा था। न तो उसके पास रहने के लिए मकान था, और न ऐसा कोई परिचित प्रभावशाली व्यक्ति जो आवश्यकता पडने पर मदद कर सके।

होश सभालने से लेकर अब तक विवेकानन्द को पुरुष नारी के सम्बन्ध पर विचार करने का अवसर मिला नही था। कारण, इसकी आवश्यकता भी नही पडी थी। छाया को वह मित्रभाव से देखता था। कभी-कभी उसके मन के किसी कोने मे यह गुदगुदी अवश्य उठती थी कि वह छाया का सिर अपने कलेजे से लगा ले या उसकी ठोढी उठाकर उसकी आखो म झाकने लगे। किंतु, किसी अन्य नारी के सम्बन्ध मे वह ऐसी कल्पना स्वप्न मे भी नही कर सकता था।

काता को साथ ले चलने के समय वह इतना तो जानता था कि लोग विरोध करेंगे, लेकिन वह सोच नही पाया था कि उसका यह निर्णय उसे सबसे काटकर रख देगा, यहा तक कि छाया से भी। जसे जैसे समय बीतता जा रहा था, वैसे वसे वह सामाजिक मान्यताओ की भयकर ताकत का

एहसास करता जा रहा था। कोई भी प्रबुद्ध या उदार व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं था कि वह अपनी विधवा भाभी को महज आदमियत और मानवीयता की पुकार पर अपने साथ लिए जा रहा है। धीरे धीरे वह अब सच्ची बात कहने मे भी कतराने लगा था।

तृतीय श्रेणी के डिब्बे के उस खण्ड मे विवेकानन्द और काता के अतिरिक्त एक और यात्री चल रहा था। वह हल्के श्याम वर्ण का प्रौढ व्यक्ति था। छोटे और कुछ लम्बे से चेहरे पर छटी हुई मूछें, मझोले आकार की आकर्षक आखें और सिर पर बगल से कढे हुए छोटे छोटे बाल जाहिर करते थे कि वह सज्जन व्यक्ति होगा।

विवेकानन्द अब कुछ सतर्क हो गया था, इसलिए जल्दबाजी मे न तो किसीसे परिचय प्राप्त करना चाहता था और न किसीको अपना परिचय देना चाहता था। वह अपने ही विचारो में डूबा हुआ था। छाया के व्यवहार मे हुए आकस्मिक परिवर्तन ने उसके भीतर के मनुष्य को जगा दिया था।

विवेकानन्द समझ नही पा रहा था कि मनुष्य अपने छोटे छोटे स्वार्थों से मुक्त क्या नही हो पाता है? पुरुष और नारी का पारस्परिक प्रेम तो अपने आपमे साध्य है नहीं। प्रेम तो साधन है और जब वह साधन है तब इसी सम्बन्ध को विराम या इति मान लेना कहा तक उचित है? कोई भी सम्बन्ध पारस्परिक विश्वास और समझदारी पर ही स्थायी बन सकता है। विश्वास और समझदारी का जन्म विवेक से होता है। जहा विवेक नहीं, वहा मनुष्यता नहीं। छाया क्या ऐसी विवेकशून्य हो गयी कि वह काता भाभी की असह्य पीडा, वेदना और दर्द को देखकर भी समझ नही पायी?

वह तो सोच बैठा कि छाया के सहारे बडी से बडी समस्याओ का समाधान कर पाएगा। कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करने मे सकोच भी नहीं करेगा और लाख विपत्तियो के बावजूद, उसके स्नेह के सहारे सन्मार्ग पर चलता चला जाएगा लेकिन यह क्या हो गया? एक मामूली से झटके ने उस सम्बन्ध सूत्र का रेशा रेशा अलग कर दिया। वह जितना ही विचार करता, उतना ही उसका मन पक्का होता जाता कि छाया में स्त्रियोचित ईर्ष्या प्रमुख है। करुणा, प्रेम, त्याग और उदात्त भावनाए उसमें

रूढिगत सस्कार के नीचे दब गयी हैं।

"आप कहा तक जाएगे ?" सामने बठे प्रौढ व्यक्ति ने आखिर पूछ ही दिया। विवेकानन्द का ध्यान कही और था। उसने घबराकर प्रौढ व्यक्ति की ओर देखा, क्योकि उसने आवाज तो सुनी थी, लेकिन शब्दो पर ध्यान नही दिया था। उस प्रौढ व्यक्ति ने अपना प्रश्न दुहराने से पहले एक वाक्य और जड दिया, ' मेरा नाम मदनचन्द है। मै दिल्ली का रहने वाला हू। आप कहा तक जाएगे ?"

"हम लोग भी दिल्ली जा रहे हैं।'

"मेरा कपडे का थोक व्यापार है। आप क्या कोई रोजगार या ?"

"जी नही मैं नौकरी करने जा रहा हू, अखबार मे।"

विवेकानन्द की घबराहट बढती जा रही थी कि कही वह प्रौढ व्यक्ति यह न पूछ ले कि आपके साथ जाने वाली यह महिला कौन है ? मदनचन्द ने ऐसा कोई सवाल नही किया। उसने पूछा, "दिल्ली पहली बार जा रहे हैं ?"

"जी हा। यही तो समस्या है।"

"इसमे समस्या की कौन-सी बात है ?"

"जी, बात यह है कि अचानक ही चल देना पडा। मैं यह भी नही जानता हू कि ठहरूगा कहा ?"

मदनचन्द ने मुस्कराकर एक बार कांता की ओर देखा और फिर विवेकानन्द की ओर। जैसे वह कह रहा हो कि ठहरने की व्यवस्था नही थी तो परिवार लेकर क्यो निकल पडे ?

विवेकानन्द को मदनचन्द की आखो की भाषा समझ मे आ गयी और उसने आखे झुका ली। मदनचन्द ने कहा

"यह समस्या तो बेशक बहुत ही कठिन है। हर रोज हजारो की सख्या मे पजाब से शरणार्थी चले आ रहे है। इसके चलते मकान की कमी ने विकराल रूप धारण कर लिया है। यह समझा जाता था कि हमारे नेता दूरदर्शी हैं, कल्पनाशील हैं लेकिन जो कुछ हो रहा है उसे देखकर मालूम होता है कि दूरदर्शिता और कल्पनाशीलता सत्ता की मजिल से आगे नही

जा सकेगी। उन्होंने इतना भी अनुमान नहीं लगाया कि बटवारे का अंजाम क्या होगा।"

विवेकानन्द को खुशी हुई कि बात का रुख बदल गया। उसने सहज होकर कहा।

"इसका कारण है आत्मविश्वास की कमी। क्रिप्स मिशन की विफलता से हमारे उतावले नेता निराश हो गए थे। आपने गौर नहीं किया कि भारत के अन्तिम वाइसराय लार्ड माउण्ट बैटन से बातचीत के दौरान इन लोगों ने महात्मा गांधी को अलग थलग रखा, क्योंकि वे जानते थे कि महात्मा गांधी देश के विभाजन की बात स्वीकार नहीं करेंगे। अंग्रेजी हुकूमत किसी भी कीमत पर देश को बांट देने के लिए कृतसंकल्प थी। जाहिर है, इन नेताओं की सारी शक्ति जल्द से जल्द किसी फैसले पर पहुंचने में लगी रहा, भले ही वह फैसला इतिहास की दृष्टि में घातक क्यों न हो।"

"इन नेताओं के सामने शायद कोई विकल्प नहीं रह गया था। यदि माउण्ट बैटन का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करते तो देश गुलाम का गुलाम रह जाता।"

"ऐसा समझना अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र को नकारना होगा। दूसरे विश्व महायुद्ध ने अंग्रेजी साम्राज्य का आर्थिक ढांचा खोखला बना दिया था। इंग्लैण्ड की सरकार अपने देश को संभाल सकने में ही असमर्थ हो गयी थी। इधर नेताजी के नेतृत्व में गठित आजाद हिन्द फौज ने विदेशी हुकूमत की किलेबन्दी में सेंध डाल दिया था। भारतीय सैनिकों पर से उनका विश्वास उठ गया था और जो रहा सहा विश्वास था भी उसे सैनिक विद्रोह ने छिन्न भिन्न कर दिया। ऐसी हालत में क्या आप सोचते हैं कि अंग्रेजी हुकूमत भारत में बनी रहती? कदापि नहीं।"

मदनचन्द ने इस बार बड़े ध्यान से विवेकानन्द को देखा। उसकी आंखों में आदर और आश्चर्य का मिश्रित भाव घनीभूत हो रहा था। उसने प्रशंसात्मक स्वर में कहा

"लगता है, आपने इस विषय पर गहरा अध्ययन कर रखा है। आपकी बातों में तर्क ही नहीं, सच्चाई भी है।"

"मैंने कोई खास अध्ययन नहीं किया है। हां, आठ दस सालों से किसी

न किसी रूप म स्वाधीनता सग्राम से सम्बद्ध रहा।"

"अच्छा? तो आप भी स्वराजी भाइया म से हैं गाधी जी के अनुयायी?"

'नही, गाधी जी का मैं आदर करता हू। उन्होंने देश की जनता को निर्भीकतापूवक सचाई की राह पर चलने की प्रेरणा दी। उनके पहले भय और हीन भावना से पूरा देश ग्रस्त था।"

"फिर उनके अनुयायी बनने मे कसर क्या है?"

"उनकी अहिंसा मे मुझे विश्वास नहीं है। देख नहीं रहे हैं, सत्य और अहिंसा का मसीहा महात्मा गाधी देश को स्वाधीनता के द्वार पर ला खडा करने के बाद अपनी असफलता देखकर कितना निराश और अकेला भटक रहा है। लगभग तीस वर्षों तक सत्य के इस पुजारी ने गाव-गाव घूमकर अहिंसा का उपदेश दिया। लेकिन, वह अहिंसा आज कहा गयी? मनुष्य ही मनुष्य का शिकार कर रहा है। इतना ही होता तो गनीमत थी, लेकिन अब मनुष्यता भी दम तोड रही है। क्या हो रहा है पजाब और बगाल मे और इसकी प्रतिक्रिया देख लीजिए।"

"आप अहिंसा मे विश्वास नही करते। फिर हिंसा देखकर इतने दुखी क्या हो रहे हैं?"

"व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने के लिए या घृणा और क्रोध के वशीभूत होकर किया गया काम अनैतिक है, अन्याय है और अपराध है। इस तरह के कर्मों मे अपराध वृत्ति की ही अभिव्यक्ति है, किंतु यदि नि स्वार्थ भाव स दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध परमार्थ भाव से हाथ उठाया जाय तो इसमे निर्भीकता और बलिदान की भावना ही अभिव्यक्ति पाती है। यदि हिंस्र पशु आक्रमण कर दे तो उसका सामना मात्र नैतिक बल से नहीं किया जा सकता, अपनी शारीरिक शक्ति का इस्तेमाल भी करना होगा। ऐसा करना हिंसा नहीं है। सच पूछिए तो हम सस्ती आजादी मिल गयी, जिसकी कीमत आज निरपराध भोली भाली लडकियो, माताओ और नौजवानो को चुकानी पड रही है। निश्चय ही इस नरमेध की जिम्मेदारी हमारे नेताओ पर है। अन्यथा गाधी जी प्रायश्चित्त करने की बात क्या करते?"

"आप तो बहुत दिलचस्प आदमी मालूम पडते है अरे, मैं आपका

नाम पूछना तो भूल ही गया।"

"मेरा नाम विवकानन्द है।'

"विवेकानन्दजी, आप जैस नौजवान को तो राजनीति म जाना चाहिए था। नौकरी के चक्कर मे क्या पड गए?"

"अब जो लडाई होगी वह बहुत लम्बी चलेगी। उस लडाई को लडन के लिए राजनीति का पलडा पकडना आवश्यक नही ह। मैंन कहा न कि हमारे नेताओ मे आत्मविश्वास की कमी है। इसका अथ यह हुआ कि व अब योद्धा नही रह। लडाई से ऊबकर वे सुख सुविधा की तलाश मे भटक रहे ह। राजनीति का स्वरूप बदल गया ह। अब तो हर नागरिक को प्रबुद्ध और चेतन होकर अपना अपना कम करते हुए इस लम्बी लडाई का हिस्से दार बनना है। शत्रु अब बाहर नही, भीतर है। इस शत्रु का सामना करने के लिए उद्देश्य की स्पष्टता सकल्प, साहस और धैय की आवश्यकता पडेगी। मोचा भी अलग अलग बनान पडेंगे—आर्थिक मोचा, सामाजिक मोर्चा, सास्कृतिक मोर्चा और बौद्धिक मोर्चा।'

विवेकानन्द की बातो स मदनचन्द बहुत प्रभावित हुआ। वह स्वय पढा लिखा व्यक्ति था। अपनी युवावस्था मे वह अध्यापक बनने का स्वप्न देखा करता था। अचानक ही उसके पिता का देहान्त हो गया और पूरे परिवार का बोझ उसे सभालना पडा। उसे इच्छानुसार अध्यापक की नौकरी मिल नही पाई तो उसन कपडे का रोजगार शुरू किया और आज दिल्ली के चादनी चौक मे कपडे का थोक व्यापारी बन गया था। व्यापारी बनकर भी वह वणिक्-वृत्ति से सम्बद्ध हथकण्डा का शिकार नही बना था। उसन किंचित् हसत हुए कहा, "विवकानन्द जी, मैं उम्मीद करता हू कि आपस दिल्ली म भेंट हुआ करेगी। पहले, म भी कोई ऐसा काम करना चाहता था जिसके माध्यम स समाज की सेवा हो सके, किंतु परिस्थितिया न मुझे मजबूर कर दिया और म व्यापारी बन गया। अब आपकी बातो से लगता है कि अपन पेशे मे रहकर भी समाज और देश की सेवा की जा सकती है।"

विवेकानन्द की तात्कालिक समस्या का समाधान मदनचन्द ने कर दिया। चादनी चौक की कई गलियो म उसके कई मकान थे। उसन यहा

बाहर स आन वाले व्यापारी वहा ठहरा करते थे। मदनचन्द न विवेकानन्द को आश्वस्त कर दिया कि वह तब तक के लिए एक-दो कमरे उसे दे देगा जब तक कि वह स्थायी व्यवस्था नही कर लेता। विवेकानन्द को लगा कि पुरुषार्थ का अनुगामी है प्रारब्ध।

३४

दैनिक 'बन्धु' का कार्यालय कनाट प्लेस म था। सुबह लगभग आठ-साढे आठ बजे ही विवेकानन्द अखबार के कार्यालय मे जा पहुचा। कनाट सरकस मे उस समय लगभग सन्नाटा था। सभी बडी बडी दुकानें अभी ब द पडी थी। कनाट सरकस के बरामदे खाली पडे थे। सडको पर दो चार मोटरगाडिया आ-जा रही थी।

विवेकानन्द को दैनिक 'बन्धु' का कार्यालय ढूढने म विशेष कठिनाई नही हुई। दैनिक हिंदुस्तान के पास ही दैनिक 'बन्धु' का यह कार्यालय था। कार्यालय के बाहर बरामदे पर झण्डे झण्डिया, पोस्टर, लीफलेट और बैनर लटक रहे थे, जिन्ह देखते ही वह समझ गया कि कर्मचारियो की हडताल अभी जारी है।

बरामदे के बाहरी किनारे पर पाया के पास तीन व्यक्ति दरी बिछा कर बैठ हुए थे। विवेकानन्द न उन्ही लोगो से पूछा कि कार्यालय कब खुलेगा और सम्पादक जी से कब भेंट हो पाएगी। उन तीन व्यक्तियो ने ध्यानपूर्वक उस देखा, जस कि व पहचानने या कुछ कहन की कोशिश कर रहे हो। उनमे से एक व्यक्ति ने कहा, "सम्पादक जी तो बैठे हैं, लेकिन कार्यालय अभी नही खुलेगा। यहा हडताल चल रही है। आप कौन है?"

"मुझे यहा सहायक सम्पादक के रूप मे नियुक्त किया गया है। आज ही पटने स पहुचा हू।"

"प्रेस के कर्मचारी हडताल पर ह। उनकी सहानुभूति मे सम्पादको और सहायक सम्पादको ने भी हडताल कर दी है। फिर भी आप यहा काम

करने आय ह   व्यवस्था इस कोशिश मे लगी है कि हड़ताल टूट जाए। इसीलिए आठ पृष्ठ की जगह किसी प्रकार दो पष्ठ का अखबार निकाला जा रहा है। ये लोग आपसे सहायक सम्पादक का नही, बल्कि प्रूफरीडर, उप सम्पादक और शायद कम्पोजीटर का कार्य भी कराएग।"

विवेकान द ने उन तीनो व्यक्तियो की ओर देखा। वह समझ नही पाया कि उ हें क्या उत्तर दे। उनमे बात करन वाला व्यक्ति गम्भीर और सतुलित दीख रहा था। उसके स्वर मे निवदन का भाव था। शेष दो व्यक्तिया मे से एक की आखो मे आक्रोश झलक आया था। और दूसरे व्यक्ति के होठो और चेहरे से घृणा झलक रही थी। विवेकान द चुपचाप कायालय के भीतर दाखिल हो गया।

भीतर छोटे छोटे केबिन बने हुए थे। सम्पादक के केबिन के बाहर उनका नाम और पद की पट्टिका लगी हुई थी। वह दरवाजा खोलकर भीतर चलागया। सामन बडी सी मजके उस पार दैनिक व धु के सम्पादक त्रिवदी जी कुर्सी पर बैठे हुए थे। उनके सामन मेज पर बहुत से कागजात बिखरे पडे थे। त्रिवेदी जी उस समय किसी लेख के कान्न छाटने म लगे हुए थे। दरवाजा खुलन की आहट पाकर उ होन सिर उठाकर देखा। उनकी आखो मे आश्चय, कौतूहल और प्रस नता के मिले जुल भाव स्पष्ट हो उठे। मुह स एक ही शब्द निकल पाया, "आप   ?"

उस छोट से एक शब्द से कही अधिक अथ त्रिवेदी जी की मुख मुद्रा स प्रकट हो रहा था। उस भाव को विवेकान द समझ गया और बोला

"मेरा नाम विवकान द है। मुझे आपके अधीन सहायक सम्पादक नियुक्त किया गया है।"

त्रिवदी जी ने बडे तपाक से विवकान द को बैठाया। उसे त्रिवेदी जी का व्यक्तित्व काफी प्रभावशाली लगा। त्रिवदी जी की मूछें करीन स कटी छटी थी। उनकी बडी-बडी आखो के कोरो पर थोडा थोडा कीच भरा हुआ था। त्रिवेदी जी की गौर वण की भरी देह और पान स रग होठ देखकर ही उसने अनुमान लगा लिया कि वह एक सहृदय व्यक्ति के सामने बैठा हुआ है। त्रिवेदी जी ने हसते हुए कहा

"आपसे मिलकर बडी प्रस नता हुई है।   सचमुच, मैं तो काम करत

करते तग आ गया हू। इस कार्यालय मे कर्मचारियो की सख्या लगभग १०० है। लेकिन, आपको आश्चय होगा कि आजकल २० २२ आदमी ही काम पर जाते हैं, व भी पारियो मे। आपने देखा ही हागा, बाहर कर्म चारी यूनियन के नेता धरना दिए हुए बैठे ह । रहने की क्या व्यवस्था की ?"

"अभी तो आ ही रहा हू।"

"ठीक है। दो चार रोज तो आप मेरे साथ भी रह सकते ह। लेकिन मकान की तलाश तो आप आज से ही शुरू कर दीजिए। दिल्ली मे यमुना की शरण जाने पर भगवान मिल जाते हैं, लेकिन, मकान तो शायद ही मिलता है। समझे ?"

"जी सुना है, शरणार्थियो के आ जाने से मकान की समस्या भयकर हो गयी है।"

"जी हा। आपका अनुमान कुछ हद तक सही है। लेकिन, सचाई तो यह है कि स्वाधीनता मिलते ही यह समस्या जटिल हो गयी थी। सब लोग दिल्ली की तरफ दौड पडे, जैसे मोक्ष का रास्ता यही ससद भवन और केन्द्रीय सचिवालय के बीच से शुरू होता हो । आप अकेले हैं ?"

"जी नही ?"

"तो क्या आपकी पत्नी भी साथ आई हैं ?"

"जी वात यह है कि मेरी अभी ।"

"अच्छा अच्छा, अभी-अभी शादी हुई है। ठीक ही किया, साथ लेते आए। दिल्ली बहुत ही आकर्षक जगह ह । यहा मनका के चितवन पर मत ललचाना परदेशी। बडी रगीनी है यहा। भटक जाने का खतरा हमेशा बना रहता है।" यह कहकर त्रिवेदी जी ठठाकर हस पडे। फिर उन्होने अचानक ही अपनी हसी रोक दी, जस पूरी रफ्तार से चलती हुई गाडी के चक्के एक ब एक जाम हो गए हा और कहा, "आज कहा ठहरे हैं आप ?"

"चादनी चौक मे। एक सेठ का मकान है।"

'एक सेठ का मकान ?"

"ट्रेन मे जान-पहचान हा गयी थी। उनका नाम है मदनचन्द।

कलकत्ते से आ रहे थे। उन्होंने ही ।'

"ओ हो, फिर तो बड़े सौभाग्यशाली हैं आप। दिल्ली पहुंचते ही *मकान मिल गया। भाभी जी बड़ी सुलक्षिणी हैं।"*

"नहीं-नहीं, यह तो अस्थायी व्यवस्था है।" विवेकानन्द स्पष्ट करना चाहता था कि वह अपनी पत्नी के साथ नहीं आया। लेकिन वह कह नहीं पाया और त्रिवेदी जी बार-बार भाभी भाभी की रट लगाते रहे। वह कोशिश करके भी सच्ची बात नहीं कह पा रहा था कि उसके साथ उसकी पत्नी नहीं, बल्कि विधवा भाभी है। विवेकानन्द के अचेतन मन में भय समा गया था। छाया की कहानी पर किसे विश्वास होगा। कोई नहीं स्वीकार करेगा कि विवेकानन्द सहज सहानुभूति और मानवीय करुणा से प्रेरित होकर ही अपनी भाभी को घर से निकाल ले आया है। जब छाया ने ही यह स्थिति स्वीकार नहीं की, तो भला अनजान लोग किस प्रकार स्वीकार करेंगे? लोग तो यही कहेंगे कि वह अपनी खूबसूरत विधवा भाभी को घर से भगाकर ले आया है।

दैनिक 'बन्धु' के कार्यालय से बाहर निकलकर उसने देखा, बाहर चहल-पहल अप्रत्याशित ढंग से काफी बढ़ गयी थी। बरामदे पर आने जाने वालों ने भीड़ लगा रखी थी और सड़कों पर बसें, मोटर कारें और आटो रिक्शा की भरमार लग गयी थी। वह जल्दबाजी में था। इसलिए नहा धोकर कुछ नाश्ता नहीं कर पाया। त्रिवेदी जी से मिलकर निकलने के बाद उसे भूख लग आई। वह किसी रेस्तरां की तलाश में निकल पड़ा, जहां सस्ते में टोस्ट चाय मिल सके।

बरामदे पर आने जाने वाला में पुरुष ही नहीं, नारियों ने भी होड़ लगा रखी थी। विवेकानन्द उन सजी बजी रूपवती युवतियों को विस्फारित आंखों से देखता जा रहा था। समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर या पटने में सौन्दर्य की ऐसी चकाचौंध उसने देखी नहीं थी। कमसिन किशोरियां कसी हुई कमीजों में अपने अंग प्रत्यंग के उठान को समेट सकने में असमर्थ होकर इस प्रकार चल रही थीं, जैसे वे जमीन पर नहीं हवा में उड़ती फिर रही हों। जो तरुणियां साड़ियों में सुसज्जित थीं उनके आंचल मात्र शृंगार साधन बने हुए थे क्योंकि उन्नत पीन पयोधरों को ढांकने की बजाय वे

उन्हे उजागर करने मे ही सक्षम थे।

विवेकानन्द कनाट प्लेस के भीतरी भाग के बरामदे से होता हुआ चलता रहा। उसे कही कोई ऐसा रेस्तरा नजर नही आया जिसमे घुसने की वह हिम्मत कर सके। चारो ओर बडे-बडे ठोस आलीशान मकानो का वृत्ताकार घेरा, चौडी और साफ सुथरी सडकें, सरसराती हुई जाने वाली कारें, बने-ठने सूट पहने तेजी से निकल जाने वाले हिन्दुस्तानी साहब, रेशमी सलवार और बदन पर दुपट्टा लटकाए पाउडर लिपस्टिक लगाये, सुगध की अदृश्य रेखा खीचती चली जाती तितलिया विवेकानन्द के मन मे भय और रोमाच का भाव उत्पन्न कर रही थी। पता नही, उसके इस भाव के मूल मे क्या था, लेकिन वह सोच रहा था कि दुनिया कितनी बडी है। इसमे न जाने कैसे कैसे लोग और कैसी-कैसी चीजें समाई पडी हैं, और वह स्वय कितना छोटा है और कितना दीन। कनाट प्लेस की इस सम्पन्नता को देखकर विवेकानन्द को अपने आपपर शका हुई कि क्या वह अपने ही देश मे है या विदेश मे चला आया है? उसने तो गावो मे देखा है—भूख, गरीबी और विपन्नता। उसने देखा है, छोटे छोटे असख्य नग धडग बच्चो को जिन्हें पहनने के लिए चिथडे, गारवीन का लगोट तो दूर, खाने को सूखी रोटी तक नसीब नही होती है। पढ़ने लिखने की बात व स्वप्न मे भी नही सोच सकते। बीमार होते हैं तो झाड फूक और मन्त्र-तन्त्र का जाप करने वाले भगतो की शरण मे जाकर दम तोड देते है। फूस की छोटी सी झोपडी मे दजन भर लोग सूअरो की तरह रात काटते हैं। उन झोपडियो मे जहा दो-तीन खाट भी मुश्किल से आ पाती है वही रसोई घर, शयन कक्ष और बैठकी बनी रहती है।

विवेकानन्द चक्कर लगाता हुआ एक जगह पहुचकर रुक गया। दरवाजे के ऊपर बोर्ड लगा हुआ था, यूनाइटेड काफी हाउस। दरवाजो मे शीशा चढा हुआ था। उसने झाककर भीतर देखा, यह रेस्तरा ही था। हिम्मत बटोरकर वह भीतर पहुचा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। दाहिनी ओर दूसरे छोर पर मास्टर धर्मेन्द्र एक सभ्रान्त और आकर्षक लडकी के साथ बैठे हुए थे। विवेकानन्द घबराकर वापस लौटना ही चाहता था कि धर्मेन्द्र की नजर उसपर पड गयी। धर्मेन्द्र पहले तो अचकचा-से गए,

फिर प्रसन्नता से उठ खड़े हुए और तेज कदमो से उसकी ओर आते हुए बोले

"अरे विवेका तुम ?"

"प्रणाम मास्टर जी ।" विवेकानन्द ने अपने दानो हाथ जोड दिए।

"अरे मास्टर जी की ऐसी की तैसी ।" धर्मेन्द्र उत्साह के साथ विवेकानन्द के दोनो हाथ अपने हाथ मे लेते हुए बाले, "नाऊ वी आर फ्रेण्ड्स। अब हम लोग दोस्त ह। गाव की बातो को भूल जाओ। अब मैं मास्टर नही, व्यापारी हू। एक्सपोट इम्पोट निर्यात आयात का काम करता हू । आओ, मैं तुम्हें अपनी गल फ्रेण्ड्स से मिलाऊ ।" यह कह कर धर्मेन्द्र उसकी बाह पकडकर उस लडकी के पास पहुचे, "यह है मेरे पुराने दोस्त विवेकानन्द और यह है कुमारी रमा।"

'नमस्ते ।" रमा ने दोनो हाथ जोड दिए। नमस्ते कहकर विवेकानन्द शरमाता सकुचाता सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया।

"क्या पियोगे—काफी, ओवलटीन, कोको या कोल्ड ड्रिंक ?'

'पीने को तो कोई चीज पी लूगा। लेकिन, मुझे भूख भी लगी है।" विवेकानन्द ने किंचित शरमाते हुए हसकर कहा।

सैण्डविच, कटलेट और चाय का आडर देकर धर्मेन्द्र पटन और गाव का समाचार पूछने लगे। उस लडकी के सामने गाव की घटनाओ का जिक्र करना विवेकानन्द ने ठीक नही समझा। इसलिए 'सब ठीक ही है कहकर चुप हो गया।

"दिल्ली कब आए ?"

'आज ही, सुबह की गाडी से।"

"आज ही ? कैसे आना हुआ ?"

"दैनिक 'बन्धु मे सहायक सम्पादक की नौकरी मिल गयी है।"

"काग्रेचुलशन—बधाई। ठहरे कहा हो ?'

"यह पहली परेशानी है। जब से सुना है कि दिल्ली म मकान मिलना कठिन है, तब से यह सोच रहा हू कि दिल्ली बेकार ही आया।'

"दूसरी परेशानी क्या है ?'

"दैनिक 'बन्धु मे हडताल चल रही है। यह बात मुझे पटने मे ही

मालूम हो गयी थी। लेकिन, कुछ ऐसी मजबूरी थी कि मैं चुपचाप यहा चला आया। अब लगता है कि मै दैनिक 'बन्धु' मे काम नही कर पाऊगा।"

"क्या ? तुम्हें तुरत काम पर आ जाना चाहिए। दैनिक 'बन्धु' मे सीधे सहायक सम्पादक बन पाना बडा कठिन काम है। ऐसी गलती मत करना। आजकल दिल्ली मे मकान तो नहीं ही मिलता है, नौकरी भी नही मिलती है। सरकार शरणार्थियो को हर जगह प्राथमिकता दे रही है।"

विवेकानन्द न एक बार रमा की ओर देखा और दूसरी बार धर्मेन्द्र को। उसके होठो पर ऐसी करुण मुस्कराहट काप रही थी, जिसका अर्थ समझते धर्मेन्द्र को देर नही लगी। उसने हसते हुए कहा

"अरे हा, मैं तो भूल ही गया था कि तुम स्वराजी कार्यकर्ता हो । लेकिन अब तो देश स्वाधीन हो गया। यह हडताल अब आउट आफ डेट है – समय के विरुद्ध है। अब हडताल कैसी ? उचित तो यह है कि सब लोग देश को समृद्ध बनाने मे तन मन से जुट जाए।"

'देश की किसे चिन्ता है ? सब लोग अपने आपको सम्पन्न बनाने मे जुट गए हैं। जब व्यक्ति अपने-आपको सम्पन्न बनाने के लिए गलत-सही तरीके इस्तेमाल करने लगता है, तब परोक्ष रूप से समाज और देश का शोषण होने लगता है। इस शोषण तन्त्र का मैं पुर्जा बनना नही चाहता।"

"लेकिन भाई तुम तो अग्रेजी हुकूमत को उखाड फेंकने में लगे हुए थे और तुम्हें सफलता भी मिल गयी है।"

"हा, आरभ म तो यही उद्देश्य था। सोचता था कि समाज की सभी बुराइया की जड म विदेशी हुकूमत है। उस जड को उखाड फेंकने के लिए मैं वर्षों तक पागल की तरह यहा वहा दौडता रहा। और सोचता रहा कि अग्रेजो के जाते ही सारी व्यवस्था बदल जाएगी। धरती पर स्वर्ग उतर आएगा । यह मेरा भ्रम था। अब देखता हू कि अग्रेजी हुकूमत की जगह एक नयी जाति, एक नया तबका उठ खडा हुआ है, जिसके दिमाग म देश और समाज नही, बल्कि अपना हित सर्वोपरि है। व्यर्थ ही जेल गया।"

"अच्छा, अच्छा। तो तुम जेल भी हो आए हो। फिर नौकरी की तलाश में क्यो भटकते हो ? तुम तो जन्मसिद्ध नेता हो। तुम्हें चाहिए कि तुम जवाहरलाल जी या सरदार पटेल से मिलो।"

"नही, मुझे कोई ऐसी महत्त्वाकाक्षा नही है। अन्याय और अत्याचार का विरोध करते रहना ही शायद मेरे भाग्य मे है आप यदि मुझे एक कमरा ही दिलवा सकें तो बडी कृपा होगी।"

अब तक रमा चुपचाप बैठी हुई विवेकानन्द की बातें सुन रही थी। साथ ही साथ वह भूखी नजरो से उसके चेहरे को सहलाती भी जा रही थी। उसने धर्मेन्द्र की ओर देखते हुए कहा

'मैं इनकी मदद कर सकती हू। लोदी रोड मे हमारे फ्लैट के सामने वाले फ्लैट म एक कमरा खाली है। आप तो जानते ही हैं कि बाबू लोग दो कमरो मे से एक कमरा किराये पर लगा देते है। ४० रु० महीना किराया देना पडेगा। कमरे के पीछे वाले बरामदे मे खाना पकाया जा सकता है। बाथ रूम और लैट्रिन कामन होगा।"

'ठीक है, ठीक है। मेरे लिए एक कमरा काफी है। मैं कब आपके पास आऊ ?" विवेकानन्द कृतज्ञता से भर उठा था। उसने पहली बार रमा को गौर से देखा। उसका रग गेहुआ था, आखें छोटी छोटी थी, जो पलको की आट मे अजीब तरह चोरो की तरह लुका छिपी कर रही थी। उसके चेहरे पर स्निग्धता नही, उत्तेजक तरलता छाती चली आ रही थी। उसने चेहरे पर स्नो की पूरी पुताई कर रखी थी। उसके होठ प्राय बन्द ही रहते थे, लेकिन उनपर आत्मसात करने वाली मुस्कराहट कापती रहती थी और उस कपन की लय मे रमा के नथुन भी बीच बीच मे हलके हलके फूलते पचकते रहते थे। उसकी देह दोहरी और गदराई हुई थी। कद भी बहुत लम्बा नही था। बाईस तेईस वष की वह प्रौढ लडकी धर्मेन्द्र की गल फ्रेण्ड कैसे बन गयी, यह बात विवेकानन्द की समझ मे नही आई। रमा ने विवेकानन्द को इस भाव से देखा, जसे वह अपनी आखो और होठो की राह उसे जीवित ही निगल जाएगी। विवेकानन्द उन आक्रामक नजरो को बर्दाश्त नही कर सका और उसने आखें झुका ली। रमा ने हसकर कहा, "मकान पाने के लिए आपको मेरी खुशामद करनी पडेगी। मैं देखती हू कि आप शरमाने म लडकियो को मात देते हैं।'

'नही, नही, ऐसी बात नही है। आप जहा बुलाइए, मैं आने को तैयार हू।"

"ठीक है। कल इसी समय यही आ जाइए । क्या तुम कल आ पाओगे ?" रमा ने अतिम वाक्य धर्मेंद्र को सबोधित करके कहा। धर्मेंद्र ने अपनी जेब से नोट बुक निकालकर कुछ पढते हुए जवाब दिया

"नही, कल मुझे जरूरी काम निपटाना है। तुम विवेका को लेकर मकान दिखा देना। क्या ठीक है न विवेका ?"

"हा, ठीक है। मुझे तो फुरसत ही फुरसत है।"

"तुम अकेले हो ?"

"ऍं ऍं हा नही, नही, मेरी भाभी मेरे साथ है।"

"तुम्हारी भाभी ?" धर्मेंद्र ने आश्चर्य से पूछा।

"हा, सुमन भाई का देहान्त हो गया, इसलिए मैं उन्ह अपने साथ ही ले आया हू। यही कोई काम उन्हें मिल जाए तो उनकी तबियत लग जाएगी ।" विवेकानन्द अनजाने ही अन्तिम वाक्य बोल गया जबकि पहले से ऐसे किसी विचार ने अब तक कोई स्वरूप नही लिया था।

"सुमन का स्वगवास हो गया ? च् च् च् च बहुत बुरी खबर सुनाई तुमने। क्या हो गया था उसे ? बडा होनहार लडका था। वह तो कविता भी लिखता था ?"

"हा इसीलिए तो दरअसल, वे भीतर से बहुत कमजोर थे। उनका शरीर पहले से ही कोमल था और जब बीमार हुए तो अचानक ही चल बसे।"

विवेकानन्द सच्ची बात कह नही पाया। वह जानता था कि सुमन भाई ने जीवन से तग आकर आत्महत्या कर ली थी। सुमन ने इतना भी नही सोचा कि उसके मरने के बाद काता का क्या होगा। वही काता अब विवेकानन्द के साथ घर छोडकर दिल्ली चली आयी थी। विवेकानन्द को लगा कि यहा भी तरह-तरह के किस्से चल पडेंगे। यही सोचकर वह यह नही कह सका कि सुमन एक कमजोर और कायर किस्म का व्यक्ति था। वह व्यावहारिक कठिनाइयो का सामना नही कर सका। कुछ देर चुप रहने के बाद धर्मेंद्र ने पूछा "तुम्हारी भाभी कहा तक पढी है ?"

"बी० ए० पास हैं।"

"हू देखो, कोशिश की जाएगी। काम तो बन जाना चाहिए ।'

धर्मेन्द्र ने अंतिम वाक्य इस ढग से कहा, जैसे वह विवेकानन्द का दुख देख कर अत्यधिक द्रवित हो गया हो। विवेकानन्द को यह मुद्रा अच्छी नही लगी। लेकिन दिल्ली जैसे अनजान शहर में उसे धर्मेन्द्र का सहारा मिल जाने पर मन ही मन बहुत भरोसा हो गया था। नाश्ता कर लेने के बाद तीनो कुछ देर तक बैठे रहे। धर्मेन्द्र ने रमा को आखो से कुछ इशारा किया। रमा ने भी इशारो इशारो मे कुछ जवाब दिया। विवेकानन्द से यह बात छिपी नही रही और वह बोला

"अच्छा, तो मैं कल इसी समय प्रतीक्षा करूगा।"

विवेकानन्द उठकर खडा हो गया। धर्मेन्द्र ने उसे रोका नही, वह बोले

"हम लोग अभी कुछ देर यहीं बैठेंगे। तुम्हारी भाभी इतजार कर रही होगी। इसलिए तुम्हे रोकेंगे नही।"

विवेकानन्द दोनो को नमस्कार करके वहा से बाहर निकल आया। बाहर की धूप विवेकानन्द को अच्छी लगने लगी। उसने सोचा, अब वह विवेकानन्द का चोला उतार फेंकेगा। घर के लोग उसे प्रमोद नाम से पुकारते हैं। कान्ता भी 'प्रमोद जी' कहकर बुलाती है। यही उसका नया सार्वजनिक नाम क्यो न रहे?

३५

प्रमोद अपनी भाभी के साथ लोदी रोड के कमरे मे आ गया। मकान मालिक मल्होत्रा जी अपनी पत्नी और तीन बच्चो के साथ रहते थे। वे रक्षा मत्रालय मे किरानी का काम करते थे। तनख्वाह से पाच व्यक्तियो के परिवार के भरण पोषण मे बडी कठिनाई होती थी। बडा लडका कालेज में आई० ए० मे पढता था और दो छोटे लडके अभी स्कूल मे ही शिक्षा ले रहे थे। लोदी रोड म अधिकतर मल्होत्रा जी के वर्ग के लोग ही रहते थे और लगभग सबने एक एक कमरा किराये पर उठा रखा था।

प्रमोद ने मल्होत्रा साहब से कह दिया था कि वह नौकरी करने के साथ साथ अपनी भाभी का इलाज करवाने के लिए उन्हे दिल्ली ले आया

है। बात सही होते हुए भी झूठ थी। किन्तु सच कह देने से मकान छिन जाने का खतरा तो था ही, कथोपकथन चल निकलने की भी गुंजाइश थी। अब प्रमोद निरर्थक सामाजिक नाटक का पात्र नही बनना चाहता था। उसने अपने-आपसे कहा, 'रे मन, वास्तविक जीवन की भूमिका तो अब मिली है। पहले रिहर्सल कर ले, तब मच पर उतर, वर्ना अण्डे, टमाटर ही नही जूते तक खाने पड़ेंगे।'

उस रात प्रमोद सो नही पाया। वह अपनी भावनाओ, विवेक और सिद्धान्त से लड़ता रहा। पटने मे जब उसे नियुक्ति-पत्र दिया गया था, उस समय भी उसके विवेक और सिद्धान्त उलझन बनकर उसके दिमाग मे तूफान उठाने लग गए थे, किन्तु वह किसी भी कीमत पर पटना छोड़ देना चाहता था।

उसके सामने एक ओर जीविका का प्रश्न था तो दूसरी ओर सिद्धान्त का। उसे लगा, जैसे कोई कह रहा हो, 'तुमने वह राह छोड़ दी, जिसपर चलने की तुमने शपथ ली थी ।' यह बात बार-बार उसके मन मे प्रश्न बनकर उठने लगी। वह सोचने लगा कि कौन सी राह थी, जिसपर चलकर वह मजिल पर पहुच पाता और वह मजिल कौन सी थी, जिस मजिल पर पहुचने के लिए वह दिन रात चक्कर लगाता रहा, बेंत की सजा भुगती, जेल गया? क्या वह मजिल उसे मिल गयी? क्या वह इसी मजिल पर पहुचना चाहता था? सच्चाई तो यह है कि वह इस मजिल की रूपरेखा तक नही जानता था। वह तो चलना चाहता था, इसलिए चल पड़ा था। उसके मन मे केवल एक ही भाव रहा करता था कि वह ऐसी राह पर चले, जिससे देश, समाज का कल्याण हो। इस उद्देश्य के लिए वह नयी राह तक बनाने को तैयार था। अब तक वह आजादी की लड़ाई लड़ता आया था। इस राह पर वह अकेला नही था। उसके जैसे सैकड़ो, हजारो, लाखो लोग थे। बहुत से लोगो ने तो उस राह पर चले बगैर ही चुपचाप अपनी कुर्बानी दे दी। वह किसान और उसकी बेटी पुष्पा, उसकी मा और उसके जैसे असख्य अनजाने लोगो ने अपने प्राणो की आहुति क्या सोचकर दे दी? आज उन्हे क्या मिल गया? क्या थी उनकी मजिल? मौत ही तो।

प्रमोद जितना ही सोचता, उसकी उलझनें उतनी ही बढ़ती जाती

थी। अंग्रेज जा चुके थे, लेकिन वह अपने पीछे खून की धारा और आग की लपटें छोड गए थे। नेताओ को कुर्सियों की चिंता थी। महात्मा गाधी लगभग अकेले बगाल मे भटक रहे थे। प्रमोद के मन मे प्रश्न उठा, गाधी जी की मजिल क्या थी ? क्या उन्ह वह सब कुछ मिल गया, जिसे पाने के लिए वह जीवन पर्यन्त सघर्ष करते रहे ? *सत्य, अहिंसा, निर्भीकता, त्याग और बलिदान का प्रतीक वह महात्मा आज अकेला क्यो है ? वह क्या* नही कुर्सी के इर्द गिर्द चक्कर काट रहा है ? क्या अंग्रेजो के चले जाने के बाद जनता का राज सचमुच आ गया है ? क्या उसे भूख से, रोटी से आजादी मिल गयी है ? अभाव से, बीमारी से, बेकारी से मुक्ति मिल गयी है ? यदि नही, तो फिर यह कैसी आजादी है ? दैनिक 'बन्धु' मे क्यो हडताल हो रही है ? *क्या ये हडताली देशद्रोही और बदमाश हैं ? क्या ये लोग भी* सुमन भाई की तरह आत्महत्या कर लें ? अपनी पत्नियो को कांता भाभी की तरह वैधव्य का दुख झेलने के लिए छोड जाए ?

प्रमोद को अपनी राह नजर आने लगी। एक कांता का भरण पोषण करने के लिए वह अनेक कांता को वैधव्य की राह पर खडा करने का भागीदार नही होगा। दैनिक 'बन्धु' के कर्मचारी अभावग्रस्त हैं दलित है। अखबार का मालिक उन मजदूर लोगो का शोषण करना चाहता है। इसीलिए ये लोग प्रमोद जैसे अनुभवहीन व्यक्ति को सहायक सम्पादक का ऊचा पद देकर यहा ले आए है। लेकिन, वह समाजद्रोही का काम नही करेगा। दिल्ली बहुत बडा शहर है। कोई न कोई काम मिल ही जाएगा। धर्मेन्द्र जैसे चतुर और धन व्यक्ति उसे मिल गए है। पुरानी जान पहचान होने के कारण व उसकी सहायता करेंगे।

धर्मेन्द्र का ध्यान आते ही, प्रमोद दुविधाग्रस्त हो गया। *क्या खूबी है,* धर्मेन्द्र म ? कमठ, साथ ही धूर्त है यह आदमी। पद, पैसा, ऐश, औरत, सब कुछ सुलभ है इसे। यह परले दर्जे का शैतान है, चरित्रहीन है और है नमकहराम। फिर भी लोग उसके प्रभाव मे आ जाते है। उसकी इज्जत करत हैं और यह सफलता के मार्ग पर इतनी तेजी से बढा चला जा रहा है। *एक राह इसकी भी है राजपथ की तरह प्रशस्त।*

प्रमोद के दिमाग मे राधा की तस्वीर उभर आयी थी। पाथर के पानी

म देर तक पडी रहने के बाद भी उसके मुखमडल पर कितना सलोनापन था। राधा अपने भोलेपन के चलते इस शैतान का शिकार बन गयी। लेकिन लेकिन राधा की हत्या के पीछे क्या धर्मेन्द्र का हाथ था ? राधा की हत्या के लिए तो सामाजिक व्यवस्था ही जिम्मेदार थी, जिस व्यवस्था के अधीन पुरुष और पैसे का ही प्रभुत्व है। नारी का न तो अपना कोई अस्तित्व होता है न महत्त्व और न कोई मूल्य। तभी तो रामेश्वर सिंह जैसे पागल के साथ राधा को ब्याह देने मे राधा के पिता ने थोडा भी सकोच नहीं किया। रामेश्वर सिंह पागल था, गवार था और पौरुष हीन भी था, किन्तु वह धनवान था।

क्या करती बेचारी राधा ? बचपन से वह इस नराधम धर्मेन्द्र को जानती थी। इसने राधा को शादी रचाने का भुलावा भी दिया था। राधा के साथ बार बार छल होता रहा। जब वह एक पागल, विवेकशून्य, बुद्धि और भाव से रहित जड पुरुष के पल्ले बाध दी गयी, तब उसके सामने रास्ता ही क्या रह गया था।

यह व्यवस्था त्रुटिपूर्ण है, तभी तो राधा जैसी भोली भाली युवतिया को अस्तित्वहीन बनकर जीना पडता है, तभी तो धर्मेन्द्र, विजय, भुवनेश्वर सिंह, विश्वश्वर प्रसाद सिंह जैसे कपटी, निष्क्रिय और धूर्त लोगो को सुख साधन से सम्पन्न होने का अवसर मिल जाता है। इसम दोष व्यक्ति का नही, व्यवस्था का है।

इसी धर्मेन्द्र से प्रमोद सहायता की अपेक्षा रखता है। जब तक यह समाज और इसकी व्यवस्था इस प्रकार दोषपूर्ण है, तब तक प्रमोद जैसे लोगो को भी धर्मेन्द्र जैसो की ओर आशा भरी नजरो से देखना पडेगा और उनकी मदद लेकर उन्हीके विरुद्ध लडना भी पडेगा। प्रमोद सोचते सोचते अचानक अपने-आपसे चिढ गया। वह इतना सोचता क्या है ? सोचने से लाभ क्या है ? ग्लानि, दुख और चिन्ता ही तो हाथ लगती है। धर्मेन्द्र कभी राधा के साथ प्रेम का स्वाग रचता था और आज रमा को लिए घूम रहा है। न जाने कितनी राधा और कितनी रमा की इज्जत यह लूट चुका होगा। फिर भी इसके चेहरे पर या आखो मे ग्लानि या पश्चात्ताप के भाव का आभास तक नही है। इस धर्मेन्द्र को किसी बात से चोट नही पहुची। इसके चरित्र मे

वह कौन-सी विशेषता है जो इसको इस तरह सतुलित, उदार और सम्पन्न बनाने मे योग देती है? इसके जीवन का उद्देश्य क्या है? शायद कुछ भी नही, और इसीलिए यह इतना सुखी है, इतना सहनशील है। उद्देश्य और आदश मनुष्य को चैन नही लेने देते। जिस किसीने अपने जीवन मे आदश उतारने की कोशिश की, वह जीवनपयन्त चिन्ता, परेशानी और वेदना की तीव्रता से तडपता रहता है।

इन्ही उलझनो में पडा पडा प्रमाद सफदरजग हवाई अड्डे पर नाचती हुई रोशनी को देखता-देखता सो गया। वह रोशनी आती थी और आकाश में वृत्त बनाती हुई चली जाती थी। दूर से आने वाले हवाइ जहाज इस रोशनी का सकेत समझ जाते थे। प्रमोद अपने विचारो की ऊचाई से नीचे उतरना नही चाहता था, इसलिए उसे यह चक्कर काटती हुई रोशनी अच्छी नही लगी। झल्लाकर उसने आखें बन्द कर ली।

प्रमोद की जब नींद टूटी तो काफी दिन चढ़ आया था। वह हडबडा कर उठ बैठा। सामने सडक पर लोग आने जाने लगे थे। इतनी देर तक बाहर बरामदे पर सोये रहना ठीक नही, यह सोचकर वह लपककर कमरे के भीतर पहुचा।

कमरा बहुत छोटा था। यदि उसम तीन खाट रख भी जाए तो पूरा कमरा भर जाए। एक दरवाजा बाहर बरामदे पर खुलता था और दूसरा पिछे बरामदे की तरफ। बाहरी बरामदे की तरफ एक खिडकी थी। कमरे के अन्दर दीवार मे लगी अलमारी थी। माता नहा धोकर उस अलमारी के पास बैठी सामने की अगीठी की ओर देख रही थी। अगीठी पर चाय की केतली चढी हुई थी, जिसमे से खौलते हुए पानी की भाप केतली के ढक्कन को उलट देना चाहती थी। लेकिन भाप का प्रहार सहकर भी ढक्कन उठ उठकर अपनी जगह आ गिरता था। प्रमोद की नजर एक साथ ही माता के शान्त, सौम्य चेहरे और केतली के ढक्कन—दोना पर पडी और वह मुस्कराता हुआ बोला

"कैसी अखड यह चिर समाधि, यतिवर, कैसा यह अमर ध्यान।"

माता चौंक पडी। प्रमोद हसने लगा। माता भी हसती हुई बोली

'तुम भी कविता करने लगे?" कहने को तो माता यह बात कह

गयी, लेकिन अचानक ही उसे अपनी बात का अथ मालूम हुआ और उसका चेहरा सफेद पड गया। प्रमोद ने विषय और स्थिति को हलका करन के विचार से कहा

"तुम ध्यान मे इस तरह डूबी रहोगी, तो मेरी सारी योजना ठप्प पड जाएगी। कितनी बार कहा है कि चितन छोडो और कम का पल्ला पकडो। समय भागा जा रहा है और समय का अथ है आयु, आयु का अथ है—जीवन।"

"कोई कम मिले तो करू? अगीठी पर केतली चढा रखी है। हम लोगो के लिए सबसे बडा कम यही है।"

"अरे नही, भाई। लक्ष्मणरेखा के भीतर जानकी के घिरे रहने के दिन लद गए। वैसे, यदि जानकी उन्ही दिनो, अगीठी कम से मुक्त हो गयी होती और राम के साथ ही शिकार पर निकल जाती तो राम रावण युद्ध नही होता।"

"नारी परिवार की मर्यादा होती है। और यदि मर्यादा स्वय अपने बधन तोड दे तो परिवार का क्या होगा?"

"नारी मर्यादा नही, पुरुष की छाया है, यानी पुरुष के सम्पूण व्यक्तित्व की पूरक है। दोनो का पारस्परिक प्रेम मयादा का निमाण करता है। प्रेम के अभाव मे मर्यादा की दीवार खडी नही हो सकती। और यह भी समझ लो कि पारस्परिकता, समझदारी, सहानुभूति और आदान प्रदान का सक्षिप्त नाम ही प्रेम है । अच्छा, जल्दी चाय बना दो। बहुत देर हो गयी, तुमने जगा भी नही दिया।"

"इसीलिए तो चाय बना रही थी। तुम्हे बेड टी की आदत है न।"

"अरे आदत क्या है? समय था जब आदत थी। जेल जाते ही यह आदत छूट गयी।"

"प्रेस कब जाओगे?" यह प्रश्न पूछते ही काता का चेहरा फिर मुरझा गया। उसकी आखें छलछला आयी। यह प्रश्न वह कभी अपने पति सुमन से किया करती थी। अजीब सयोग था कि बहुत दिना के बाद आज वह फिर वही प्रश्न प्रमोद से करने पर मजबूर हो गयी। काता का भयावह अतीत विकराल रूप धारण करके उसकी आखो के आगे तैर गया। 'ह

भगवान, अपने दुखी जीवन की पुनरावृत्ति तो मैंने मांगी नहीं थी !' कांता मन ही मन प्रार्थना करने लगी। अनायास ही उसकी आखें बन्द हो गयीं। प्रमोद स्थिति को भांप गया और हंसता हुआ बोला

"मैं प्रेस में काम नहीं करूंगा।"

"प्रेस में काम नहीं करोगे ? क्या हुआ ? फिर काम कैसे चलेगा ?" कांता ने लगातार कई प्रश्न कर दिए। प्रमोद ने सहज स्वर में कहा

"दूसरों के पेट पर लात मारकर अपना भरण पोषण करना मैंने सीखा नहीं। अतीत की पूंजी कभी कभी बोझ बन जाती है तो कभी वह पाथेय भी बन सकती है। अतीत की बुराइयों को त्याग देना और उसकी अच्छाइयों को आंखों का सुरमा बनाना लाभदायक रहता है। इससे भविष्य को दिशा निर्देश देने में सहायता मिलती है। दैनिक 'बन्धु' में यहां हड़ताल चल रही है। इसीलिए मुझे पटना से यहां भेजा गया है।"

"लेकिन, तुमने मुझे बतलाया नहीं।"

'तुम यहां आने से मना कर देती, इसीलिए नहीं बताया।'

"तो अब क्या करोगे ?"

"मुझसे तो बाद में प्रश्न करना। पहले यह बतलाओ कि तुम कोई काम करना पसन्द करोगी ?"

"क्यों नहीं ?" कांता उल्लास और गर्व से बोल उठी। उसके स्वर से ही यह भाव स्पष्ट हो जाता था कि वह जीना चाहती है। उसका भी अपना अस्तित्व है। अब तक वह जीवित रहकर भी एक मुर्दा की तरह निष्पन्द और निश्चेतन थी। अब वह किसीका बोझ बनकर रहना नहीं चाहती।

प्रमोद को कांता का प्रफुल्लित मुखमंडल देखकर बहुत खुशी हुई। उसने चाय पीते हुए कहा

"तब तो ठीक है। अंगीठी कर्म से मुक्ति भी मिल जाएगी। दो-तीन रोज में तुम्हारा कोई प्रबन्ध हो जाना चाहिए। फिर मैं अपनी गुत्थी सुलझाने की कोशिश करूंगा।"

"यह क्या ? उल्टी गंगा बहाना चाहते हो ? तुम्हारे सहारे आई हूं। उचित तो यह होगा कि पहले तुम्हें कोई काम धन्धा मिल जाए। ना

बाबा, ना। यह मुझसे नही होगा। जब तक तुम्हे काम नही मिलता, मैं घर मे ही ठीक हू।" कान्ता ने अगीठी पर डेगची चढाते हुए कहा। स्वर म दढता देखकर प्रमोद क्षण भर के लिए विचलित हो उठा। किन्तु यह सोच कर कि प्राचीनकाल से चली आ रही परम्परा अनायास ही टूट नहीं सकती, उसन हसते हुए कहा

"म तो गगा को अनुकूल दिशा मे प्रवाहित करने का भगीरथ प्रयत्न कर रहा हू। सच तो यह है कि अब तक गगा उल्टी दिशा मे बह रही थी। एक बात हमेशा ध्यान म रखो कि तुम मेरे सहारे नही आई हो, बल्कि मैं तुम्हारी प्रेरणा पाकर दिल्ली चला आया हू। अ यथा मेरे जैसे आदमी को रोटी, कपडे की चिन्ता कभी हो सकती थी भला? तुम्हारे लिए कोई न कोई काम पकड लेना आवश्यक ही नही, अनिवाय है। इसके बाद ही तुम सामाजिक अ याय का सामना कर पाओगी। यदि मेरे सहारे पडी रहोगी तो कई समस्याए उठ खडी होगी। तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाने लगेंगे कि तुम विधवा होकर मर साथ किस उद्देश्य से रहती हो, कि तुम घर छोडकर क्यो चली आइ, कि तुम्हारे पति ने आत्महत्या क्यो कर ली, कि तुम्हारा-हमारा सम्ब ध "

"यह प्रश्न तो लोग पूछने भी लगे हैं।" कान्ता ने प्रमोद की बातो को काटते हुए कहा, "कल ही श्रीमती मल्होत्रा अपने होठो पर उगलिया डालकर आश्चय प्रकट कर रही थी कि मैंने कुआरे देवर के साथ घर से इतनी दूर आकर रहने की हिम्मत कैसे की?"

"तभी तो कहता हू कि पाव रखने के लिए तुम्हे आधार चाहिए। दिल्ली हो या समस्तीपुर, नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण मे कोई अन्तर नही है। जब तुम अपने पाव पर खडी हो जाओगी और अन्य किसीके सहारे के बिना चल पडोगी, तभी यह दृष्टिकोण बदलेगा। अतीत से शिक्षा लो और भविष्य को सवारने की कोशिश करो।"

नितान्त दुनियावी सफलता हासिल करने के लिए दुनियादार व्यक्ति का सहारा लेना पडता है और जो दुनियादार है और सफल है, उसे किसी विचारक, चितक या आध्यात्मिक पुरुष के माग-दशन की आवश्यकता होती है, ताकि वह दुनियावी सफलता को ही जीवन का लक्ष्य न मान बैठे।

जीवित रहने के लिए रोटी चाहिए, किन्तु जीवन का उद्देश्य मात्र रोटी ही नही है। प्रमोद दुनियावी आदमी कतई नही था। उसका अब तक का जीवन समाज और देश के प्रति समर्पित जीवन था। उसके आदशवादी मन को पहली बार पटने मे आघात पहुचा, जब वह रोटी की तलाश मे उन जाने-माने व्यक्तियो के पास पहुचा जो राष्ट्रीय आदोलन के समय मे उसके सम्पर्क म आये थे। लेकिन, वे लोग तब तक अपनी राष्ट्रीयता और देश-भक्ति का सौदा करने मे व्यस्त हो गए थे। प्रमोद समझ गया कि ऐसे लोग अपने अतीत के सुकर्मों को पूजी बनाकर इससे मुनाफा कमाना चाहते हैं। दिल्ली पहुचने के बाद पहली बार जब उसने धर्मेंद्र से माला भाभी को काम दिलाने की बात कह दी, तब उसकी समझ मे यह रहस्य स्पष्ट हो उठा कि धर्मेंद्र जैसा दुनियावी आदमी ही इस काम म मदद कर सकता है।

धर्मेंद्र केवल धूर्त और ऐयाश आदमी ही नही था, बल्कि बहुत ही कुशल, नीति निपुण और जन सम्पर्क म माहिर व्यक्ति था। पिछले पाच छह वर्षो मे उसने दिल्ली के अभिजात वर्ग मे अपना प्रमुख स्थान बना लिया था। आरभ मे ही उसकी भेंट एक ऐसे व्यक्ति से हो गयी जो लक्ष्मी और सरस्वती दोनो ही देवियो का कृपापात्र था। उस व्यक्ति का नाम था शिव कपूर। शिव कपूर व्यापार की दुनिया का जाना माना व्यक्ति था। कनाट प्लेस मे उसकी तीन दुकान थी। एक विदेशी ऊन की, दूसरी ग्रामो फोन रिकाड और रेडियो की और उसके पास एक ऐसी दुकान भी थी जिसम घडी, साइकिल, कपडे, स्नो, क्रीम, साडिया आदि सभी वस्तुए मिलती थी।

शिव कपूर बडे बाप का बेटा था, इसलिए उसे पढने के लिए विलायत भेजा गया था। व्यापारी का पुत्र होने के बावजूद उसने अग्रेजी साहित्य म लन्दन से डिग्री ली। वही उसे शेक्सपियर के नाटको को मचित करने का भमकर शौक पैदा हो गया था। दिल्ली आने के बाद यह शौक प्रेरणा म बदल गया।

नयी दिल्ली मे पार्लियामेण्ट स्ट्रीट पर स्थित युवा ईसाई सघ के हाल मे शेक्सपियर के नाटक का मचन किया गया था, जिसके निर्देशक के लिए धर्मेंद्र

भी आया हुआ था। नाटक देखने के बाद वह शिव कपूर से मिला था। उसने शिव कपूर की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए कहा था

"मैं सोच नही सकता था कि भारतवर्ष मे भी कोई ऐसा लक्ष्मीपति होगा, जो इतनी निष्ठा के साथ सास्कृतिक कार्यक्रमो मे हिस्सा लेता हो। आप जैसे दस-बीस आदमी देश मे हो जायें तो हमारे देश का सास्कृतिक धरातल सचमुच ही ऊचा उठ जाएगा।'

धर्मेंद्र बातचीत मे कुशल था ही सो उसने शिव कपूर को ऐसा प्रभावित कर दिया कि दोनो की जान-पहचान मित्रता मे बदल गयी। देश मे तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था। धर्मेंद्र की सलाह मानकर शिव कपूर ने हिन्दी मच की भी स्थापना कर दी। शिव कपूर के माध्यम से धर्मेंद्र की जान-पहचान केन्द्रीय सचिवालय के ऊचे अधिकारियो से हो गई थी। धीरे धीरे धर्मेंद्र ने अपने लिए एक बडा और बढिया फ्लैट ले लिया। हर दूसरे तीसरे दिन वहा बडे बडे अधिकारी जुटने लगे। उनके मनोरजन और भौतिक सुख-भोग के विभिन्न साधन वहा सुलभ थे। वहा उन्हे मुफ्त की स्काच ह्विस्की मिलती थी। प्रौढ और वृद्ध अधिकारी की बगल मे कमसिन किशोरिया बैठकर जब उनके मृतवत स्पन्दनहीन अगो मे उद्वेलन पैदा कर देती तब वे अधिकारी धर्मेंद्र के इशारे पर थिरक उठते थे।

शिव कपूर विलायत का पढा हुआ धनपति था। उसकी दृष्टि मे मदिरा और मृगनयनी का उपभोग करना बुरा नही था। धर्मेंद्र की तीक्ष्ण बुद्धि, कार्य-कुशलता और नीति निपुणता देखकर शिव कपूर इतना प्रभावित हुआ कि उसे अपने एक नये आयात सगठन का हिस्सेदार बनाने पर राजी हो गया। स्वाधीनता के बाद बहुत से अधिकार मत्रियो के हाथो मे चले गये। निस्सन्देह, कुछ मत्री सत्यनिष्ठ और सही अर्थों मे देशभक्त होने के कारण धर्मेंद्र की पहुच के बाहर थे, किन्तु बहुत से ऐसे मत्री भी थे जो पद, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करने के लिए ही स्वाधीनता-सग्राम मे शामिल हुए थे। ऐसे लोगो के समक्ष उन दिनो भी रोटी कपडे की समस्या खडी नही हुई थी। ये लोग सम्पन्न, सामन्त परिवार के नीति निपुण और चतुर देशभक्त थे। कुर्सी मिलते ही इस प्रकार के लोग अपने सुख भोग का कोटा पूरा करने मे लग गये।

३६

रामनारायण बाबू दो भाई थे। बड़े भाई छोटू बाबू जमीदारी का काम देखते थे और रामनारायण बाबू मैट्रिक पास करने के बाद ही १६२१ के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े थे। तब से लेकर १९४२ तक वे तीन बार जेल यात्रा कर चुके थे। सम्पन्न जमीदार घराने का होने के कारण उन्हें जेल में भी प्रथम श्रेणी मिलती थी। वे बिहार के रहने वाले थे और ऊपर से नीचे तक खादी पहनते थे। लेकिन उनकी धोती खादी की होने के बावजूद ढाके के मलमल को भी मात देती थी। रहन-सहन और खान पान में रामनारायण बाबू को देखकर सौराष्ट्र के राजे महाराजे भी शरमाते थे। बचपन में ही उनकी शादी हो गयी थी। उनकी पत्नी उनसे उम्र में चार साल बड़ी थी। कहते हैं कि जिसकी पत्नी उम्र में बड़ी होती है, वह भाग्यशाली होता है। रामनारायण बाबू सचमुच ही भाग्यशाली व्यक्ति थे। दो बेटियाँ और एक बेटे को जन्म देकर उनकी पत्नी असमय में ही वृद्धा हो गयी और बिहार के अपने गाँव के मकान में रहकर ही पूजा-पाठ में जीवन के अंतिम दिन व्यतीत करने लगी। रामनारायण बाबू का स्वास्थ्य ईश्वर की कृपा से अभी भी बहुत अच्छा था। ४६ ४७ साल की आयु होने पर भी वे ३० वर्ष के नौजवान की तरह सज धजकर रहते थे।

स्वाधीनता मिलते ही केन्द्र में पहली सरकार बनी। रामनारायण बाबू को नेताओं ने मंत्री नियुक्त किया। उनकी शान के अनुरूप दो मंजिल का बहुत बड़ा सरकारी मकान उनका निवास स्थल बना।

धर्मेन्द्र के हौजखास स्थित मकान में चर्चा चल पड़ी कि अब क्या होगा? लाइसेन्स, परमिट और ठेका देने का अंतिम अधिकार तो मंत्रियों के हाथ में चला गया है? ये मंत्री गांधी जी के शिष्य थे। मन्त्रियों और मृगनयनी के माध्यम से इन्हें आकर्षित कर पाना कठिन होगा। फिर, ऊपर के कुछ वरिष्ठ मंत्री बड़े ही सख्त और सत्यनिष्ठ हैं। उन लोगों को फँसाने की बात तो दूर रही, उनके पास तक पहुँचना असम्भव है। इस चर्चा में भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्ति निराशा की बातें किया करते थे लेकिन धर्मेन्द्र उनमें ऐसा व्यक्ति था जो निराशा और असफलता को नहीं जानता था।

धर्मेन्द्र बिहार का रहने वाला था। इस नाते वह रामनारायण बाबू की सेवा में जा पहुंचा। पहली भेंट में ही उसने ताड लिया कि रामनारायण बाबू के मन में क्या है ? वह उनके यहां हफ्ते में दो-तीन बार आने जाने लगा। कभी इत्र लेकर जाता था, तो कभी कुर्ते और शेरवानी के लिए बशकीमती रेशमी कपडा लेकर। एक दिन ऐसा आया, जब रामनारायण बाबू हर हफ्ते, निश्चित दिन उसकी प्रतीक्षा में रहने लगे। रामनारायण बाबू के बगले का शायद ही कोई कमरा बचा हो जिसमे धर्मेन्द्र का तोहफा सुसज्जित न हो। एक दिन रामनारायण बाबू ने पीछे के लान मे टहलते-टहलते धर्मेन्द्र से कहा—

"१९२१ से लेकर अब तक लगभग अकेला ही रहता आया हू। कभी जेल मे, तो कभी कार्यालय के सगठन मे। गाधी जी का सदेश पहुचाने के लिए गाव गाव मे भटकता रहा, आज यहा तो कल वहा। लेकिन, अब अकेलापन काटने दौड रहा है। सुबह और शाम तो लोगो से मिलने जुलने म कट जाती है, लेकिन रात की तनहाई काटे नही कटती। तुम भी तो यहा अकेले ही रहते हो ?"

धर्मेन्द्र न तुरन्त ही इसका जवाब नही दिया। मन ही मन वह रामनारायण बाबू का आशय समझ गया। लेकिन, वह शब्दो के जरिये अपनी बात कहना नही चाहता था। उस दिन इतना ही कह सका था

"रहता तो हू अकेले ही, लेकिन तनहाई का दुख झेलने का मौका नही मिलता। हम लोगो ने एक सास्कृतिक सस्था बना रखी है। उसमे अच्छे अच्छे कलाकार है। कभी सगीत तो कभी नाटक का कार्यक्रम चलता रहता है। उसकी तैयारी भी करनी पडती है। बिहार मे तो लडकिया नाटको मे हिस्सा नही लेती। पटने जैसे शहर मे भी लडकिया को मच पर आने की अनुमति नही है। लेकिन दिल्ली मे इस तरह का 'टबू' नही है। यहा के लोग बडे उदार, मुक्त और तर्कशील हैं।"

कुछ दिनो के बाद ही धर्मेन्द्र ने एक नाटक का उद्घाटन करने के लिए रामनारायण बाबू को आमत्रित किया। ईसाई सघ के हाल मे ही वह नाटक मचित हुआ था। वही धर्मेन्द्र ने रामनारायण बाबू का परिचय अपनी सस्था की सयुक्त सचिव कुमारी विमला से करवा दिया था।

कुमारी विमला शरणार्थी थी। वह अपने माता पिता और दो बहनों के साथ पंजाब का बटवारा होते ही, वहा से भागकर दिल्ली चली आई थी। विमला अद्वितीय सुन्दरी थी। ब्रह्मा ने उसे शायद अवकाश के समय बनाया था, क्योंकि उसके संगमरमर सरीखे सुकोमल मुखमडल की ओर कोई देखता तो देखता ही रह जाता था। बडी-बडी चचल आखें, भौहें ऐसी जैसे किसी कुशल चित्रकार ने अपने हाथो से रेखाए खीच दी हो। विमला के होठ बिना लिपस्टिक के ही लाल लगते थे। उसके स्त्रियोचित अगो की वर्तुल रेखाओ मे उन्मत्त लय थी। रामनारायण बाबू ने उसे देखा, तो बस देखते ही रह गये। धर्मेन्द्र ने जान बूझकर विमला को उनकी बगल मे ही बैठा दिया। रामनारायण बाबू गदगद हो उठे। बिना पीये ही उन्हें नशा आ गया। उनको उस दिन मालूम भी नही हुआ कि तीन घण्टे का समय किस तरह बीत गया।

दो हफ्ते तक धर्मेन्द्र जान-बूझकर रामनारायण बाबू की कोठी पर नही गया। इस बीच हर रोज दो दो, तीन-तीन बार रामनारायण बाबू के यहा से टेलीफोन आते रहे। धर्मेन्द्र ने अपने आदमियो से कह दिया था कि यदि औरगजेब रोड से टेलीफोन आये तो कह देना कि साहब दिल्ली से बाहर हैं। दरअसल धर्मेन्द्र मनुष्य के मनोविज्ञान से भली भाति परिचित था। वह जानता था कि रामनारायण बाबू की बेचैनी मे जितनी अधिक तीव्रता आएगी, उतनी आसानी से वह उनकी चुटिया अपनी मुट्ठी में रख पाएगा। अन्त म धर्मेन्द्र को दोहरी सफलता मिली। कुमारी विमला के माध्यम से वह बडे से बडा लाइसेन्स, परमिट और ठेका लेने मे सफल तो हुआ ही, अपने इस दलाली के पेशे म उसने रामनारायण बाबू को भी हिस्सेदार बना लिया।

रामनारायण बाबू का प्रभाव लगभग सभी मन्त्रालयो मे था। शान शौकत के साथ रहने की उनकी आदत थी। स्वाधीनता संग्राम के दिनो में उन्होंने अपनी जमीदारी का काफी हिस्सा बेच खाया था। मन्त्रालय से मिलने वाले वेतन से उनका काम चलता नही था। आधी तनख्वाह तो तीन बडे-बडे कुत्तो को पालने म ही खप जाती थी। खाने समय मेज पर आठ दस तरह की सब्जियो के अतिरिक्त मास और मछली भी होनी ही चाहिए।

दूध-दही और घी अलग से। पहनने का ऐसा शौक कि हर महीने एक शेर-वानी बननी ही चाहिए। उनके इत्र के शौक का इतना प्रचार हुआ कि इत्र बेचने वाले दूर दूर से चलकर उनकी कोठी पर आ जाते थे। विमला की सगत मे उनका खच कई गुना अधिक वढ गया था। कभी उसके लिए सोने के जेवर का सेट मगवाया जाता था, कभी हीरे या मोतियो की माला उसे अर्पित की जाती थी तो कभी बेशकीमती नगो से सुशोभित लाकेट के साथ दोहरी चेन। सयोग से उन्हें धर्मेन्द्र जैसा विश्वास पात्र मित्र मिल गया था, जो पैसे की कभी कमी नही होने देता था।

अब धर्मेन्द्र के हौजखास स्थित मकान मे चर्चा की धारा बदल गयी थी। ऊचे-ऊचे अधिकारी कहने लग गये थे, "आप यदि अपने मत्री का कृपापात्र बनना चाहते हो तो धर्मेन्द्र जी की शरण मे आ जाइए। जिस मत्री से जो काम करवाना चाहिए वह काम धर्मेन्द्र के हाथ मे सौंप दीजिए और निश्चित होकर सो जाइए।"

बात सही थी। नयी-नयी सरकार बनी थी। अफसर घबराते थे कि जिन लोगो ने इतनी बडी हुकूमत को उखाड फेंका, वे लोग मत्री के रूप मे न जाने क्या करने वाले हैं। प्रजातत्र की स्थापना होने जा रही है, फिर उनके तत्र का क्या होगा? नीति तो यही कहती है कि इन नये मत्रियो को अपने वश मे कर लो। धूल धूप मे बेचारे जीवन भर घूमते रहे हैं, जेलो की हवा खाते रहे हैं। अब इन्हें अच्छा सजा सजाया बगला, वातानुकूलित कमरा, मोटर, स्टाफ आदि के आरामदेह दलदल मे फसाओ।

यह नीति कारगर होने लगी। रामनारायण बाबू जैसे कई मत्री चक्कर मे आ गये। धर्मेन्द्र जैसे कई दलाल भी पैदा होने लगे। धर्मेन्द्र के प्रभाव से कान्ता को दो रोज के भीतर एक पब्लिक स्कूल मे नौकरी मिल गयी। वह पब्लिक स्कूल शिव कपूर का था। धर्मेन्द्र का प्रभाव देखकर प्रमोद चकित रह गया।

३७

दिल्ली के आसपास, खुली जगहो मे, देखते-देखते शरणार्थिया के अनेक शिविर लग गये। देश का बटवारा होते ही पजाब से उखडकर आने वाले लोहू-लुहान लोगो का जो अटूट ताता लगा वह महीनो महीनो तक जारी रहा। जो लोग होशियार थे वे लोग देश के विभाजन की खबर आते ही पूर्वी पजाब, जम्मू, हरियाणा और दिल्ली आ पहुचे थे। जिन लोगो ने *भाग्य और भगवान का भरोसा किया उनम से अधिकाश की लाशें उनके* अपने जलते घरो की चिता मे भस्म हो गयी और बची-खुची लाशें भारत आने वाली गाडियो मे लदकर इस पार आ पहुची।

प्रतिशोध बारूदी सुरग की तरह होता है, जो पल भर मे विस्फोटक स्थिति धारण करने और छोर म व्याप्त शाति और सन्नाटे को धूल के गुब्बार मे बदल देता है। पजाब मे ही नही, बगाल और बिहार मे भी साम्प्रदायिकता की आग मे आदमियत जल-जलकर *तडपने लगी।* यह आगजनी, लूट-पाट, हत्या और बलात्कार का सिलसिला महीनो, वर्षो तक जारी रहा। जो मर गये वे ईश्वर को प्यारे हो गए, किंतु अपने परिवार के जीवित सदस्यो के कलेजो मे घृणा और प्रतिहिंसा की ज्वाला भडका गये।

शिविरो मे रोज ही भारत सरकार और उसकी व्यवस्था के विरुद्ध प्रदशन चलने लगे। जो विभिन्न राजनीतिक दल स्वाधीनता के पूव एक जुट होकर विदेशी हुकूमत से लडे थे, उन दलो का अपना अपना स्वाथ आपस मे टकराने लगा। उनके सामने कोई ऊचा आदश अब रह नही गया था। सबके सब अपने स्वाथ के दायरो मे सिमटकर एक-दूसरे के विरुद्ध विष के बीज बोने लगे। शरणार्थिया ने अपनी आखो के सामने अपने पिता माता की हत्या होते देखा था, और देखा था कि किस तरह मनुष्य न दरिंदा *बनकर उसकी बेटी और बहन के आबरू को जिंदा मास समझकर नोच* नोचकर खा लिया। इस तरह के दृश्य आदमी को पशु बना देने के लिए काफी थे। पजाब से भागकर आये हुए शरणार्थी सरकार और उसकी व्यवस्था के प्रति नफरत से भरे हुए थे। वे यह सोच-सोचकर उबल पडते

थे कि इसी सरकार और व्यवस्था के चलते उनकी बेटी, बहन, भाई, बाप नर पशुओ के शिकार हुए।

कांता की नियुक्ति हो जाने के बाद ही विवेकानंद जीविकोपार्जन की चिंता से मुक्त हो गया था। नौकरी उसके संस्कार मे नही थी। कोई ऐसा काम करना चाहता था जिससे कि दोनो वक्त रोटी मिल जाए और स्वतंत्रतापूर्वक, अपने ढंग से, समाज सेवा का कोई काम भी कर सके। त्रिवेदी जी ने दैनिक 'बन्धु' के लिए एक स्थायी कालम लिखने का काम दे दिया था। उस कालम का नाम था—अग्नि रेखा। इस कालम के अधीन हफ्ते मे वह कम से कम तीन दिन शरणार्थियो की समस्याओ पर रिपोर्ताज लिख दिया करता था। इसी सिलसिले मे उसे दिल्ली के आसपास बने शरणार्थी-शिविरो मे आने-जाने का मौका मिला। उसने देखा, किस प्रकार साम्प्रदायिक तत्त्व नफरत की आग को कुरेद कुरेदकर उससे लपटें पैदा करने मे लगे हुए हैं। उन्हे इस बात की इतनी भी चिंता नही थी कि इन लपटो मे *सरकार और व्यवस्था ही नहीं, बल्कि उनकी आत्मा भी जल जाएगी।*

प्रमोद ने कुछ विवेकी प्रबुद्ध और प्रगतिशील नौजवानो का एक संगठन बना लिया। दैनिक 'बन्धु' मे लिखने के साथ साथ उसने इश्तहारो और छोटी छोटी पुस्तिकाओ के जरिये शरणार्थियो मे इस मत का प्रचार करना शुरू किया कि साम्प्रदायिकता ने देश को दो टुकडो मे बाट दिया है। साम्प्रदायिकता के चलते हजारो बेकसूर नागरिक मौत के घाट उतार दिए गये। साम्प्रदायिकता ही वह जहर है जिसने आदमी को पशु बना दिया और वह भूल गया कि कौन उसकी बेटी है और कौन उसकी बहन। यदि अब देशवासियो ने इस हत्याकाड से शिक्षा नही ली तो हजारो वर्ष की हमारी संस्कृति-विरासत धूल में मिल जाएगी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का हमारा आदर्श, समत्व की हमारी भावना और मानवीय मूल्यो की हमारी परम्परा धार्मिक कट्टुता और अन्ध विश्वास के अंधे और अगम कूप मे गिरकर सदा-सर्वदा के लिए लुप्त हो जाएगी।

प्रमोद सुबह से शाम तक, कभी-कभी आधी रात तक, एक शिविर से दूसरे शिविर मे घूमता रहता था। यथासम्भव वह शरणार्थियो की सक्रिय *सहायता भी किया करता था* और उन्हे विवेक से काम करने की सलाह

देता था। उन दिनो गाधी जी दिल्ली के विरला भवन मे रहते थे और रोज प्राथना सभा किया करते थे। उन्ही दिनो गाधी जी की प्राथना सभा मे बम का विस्फोट हुआ। प्रमोद समझ गया कि इस विस्फोट के पीछे इन्हीं साम्प्रदायिक तत्वो का हाथ है, जो फिर से धम और सम्प्रदाय के नाम पर खून की नदिया बहाना चाहते ह। वह और अधिक सक्रिय होकर अपने काम मे जुट गया।

उस दिन शाम के समय वह एक शरणार्थी शिविर म चक्कर काट रहा था कि अचानक शोरगुल सुनकर एक टेंट के पास जा पहुचा। वहा दस पद्रह आदमी खडे थे और रेडियो बज रहा था। रेडियो से समाचार सुनते ही प्रमोद को काठ मार गया। किसीने उस दिन गाधीजी को गोली मार दी थी। गोली मारने वाला हिंदू था और उसका नाम था नाथूराम गोडस। कुछ देर क लिए प्रमोद सज्ञाशून्य होकर खडा रहा। उसे लगा, उसका सिर चक्कर खा रहा है। उसकी आखो के आगे अधेरा छा गया और उसनेअपने आपको गिरने से बचाने के लिए पासही खडेआदमी का कधा पकड लिया। उस आदमी न प्रमोद को सहारा तो दिया, लेकिन ज्यो ही वह सभलकर खडा हुआ कि वह आदमी बोला

"इस मुसलमानो के दोस्त गाधी की हत्या की खबर सुनत ही तुम्हे मूछा आ गयी? गाधी के बहुत बडे भक्त हो तो क्यो नही अपने मसीहा को उस समय पजाब भेजा था जिस समय हमारी बेटी बहनो की इज्जत लूटी जा रही थी और भाई-बाप को जिंदा जलाया जा रहा था?"

प्रमोद उस व्यक्ति का मुह टकर टकर ताकता रहा। उसकी जीभ तालू से चिपक गयी थी। उसके भीतर क्रोध का ज्वार उठ रहा था। इच्छा हुई कि वह उस व्यक्ति के मुह पर कसकर एक तमाचा मारे और कहे, गाधी ने कब कहा था कि आजादी पाने के लिए देश का बटवारा कर लो। वह तो प्रेम से सत्य, अहिंसा और निर्भीकता की सुरभि फैलाता फिर रहा था। लेकिन प्रमोद न कुछ नही कहा। उसका मन उचट गया। अब वह वहा एक पल भी रुक नही सका।

गाधी की हत्या की खबर आग की तरह चारो ओर फैल चुकी थी। बस्ती म इसी बात की चर्चा थी। सडको पर लोग इधर स उधर भागे जा

रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे कहीं से भयंकर भूचाल आने का आतंक कारी समाचार मिल गया हो। जैसे जैसे वह लोदी रोड के करीब पहुंचता गया, वैसे वैसे ही लोगों की चर्चा और बातचीत के भाव बदलते गये। आक्रोश और घृणा की जगह स्नेह और सहानुभूति से भरे शब्द सुनाई पड़ने लगे।

कांता बरामदे पर बैठी सड़क की ओर देख रही थी। प्रमोद के वहां पहुंचते ही कांता कमरे में चली आई। प्रमोद भी उसके पीछे पीछे वहां पहुंचा और कांता की सूजी हुई आंखें देखते ही उसके धीरज का बांध टूट गया। वह अपने आपपर नियंत्रण नहीं रख सका, और धम्म से खाट पर बैठते ही फफक फफककर रोने लगा। कांता उसके पास चली आयी। उसने प्रमोद का सिर अपने अंगों में सिमट लिया। कुछ देर तक दोनों चुपचाप आंसू बहाते रहे। पता नहीं, वे कब तक इसी स्थिति में जड़ बने रहते, यदि मकान मालिक श्री मल्होत्रा उस बीच वहां न पहुंचे होते। मल्होत्रा जी ने उन दोनों को उस हालत में देखते ही स्थिति भांप ली और दुखी स्वर में कहा, "कितने कृतघ्न है हम लोग। जिस एक व्यक्ति ने हमें निर्भीक बनाया, जिसके मार्ग-दर्शन में हम स्वाधीनता के दरवाजे तक आ पहुंचे और जो महापुरुष जीवन भर हम सत्य की राह पर चलकर अहिंसा धर्म के निर्वाह की शिक्षा देता रहा, उस व्यक्ति की कीमत हमने पिस्तौल की एक गोली से अदा कर दी।'

कांता अलग हटकर आंचल से अपने आंसू पोंछने लगी। प्रमोद आश्वस्त होकर उठ खड़ा हुआ और बोला

'आप ठीक कहते हैं मल्होत्रा जी। हम व्यर्थ ही अपनी उदात्त भावनाओं प्राचीन परम्पराओं और मूल्यों की दुहाई देते फिरते हैं। अपने स्वार्थ के अतिरिक्त हमें कुछ नहीं सूझता। हमें अपना खून बहुत प्यारा है, इसीलिए दूसरों के खून के प्यासे बन बैठे हैं। सच पूछिए, तो बन्दर के हाथ तलवार आ पड़ी है। हम स्वाधीनता के योग्य नहीं थे।"

"लेकिन अब क्या होगा ? एक रोशनी थी वह भी बुझ गयी। अब तो हम अंधेरे में भटकते रह जाएंगे।"

"इस रोशनी को तो हमने उसी दिन ताक पर रख दिया था, जिस

दिन हमारे नेताओं ने, सत्ता की भूख में अधे होकर, देश के बटवारे की योजना स्वीकार कर ली थी। वे सोचते थे कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान बन जाने के बाद साम्प्रदायिक झगडे समाप्त हो जायेंगे, ऐसी समस्याओ का समाधान हो जाएगा। मल्होत्रा जी, यह तो शुरुआत है। आज हमने सत्य और अहिंसा की हत्या की है। कल हम आत्महत्या करेंगे, क्योंकि हमारे सामने न कोई आदर्श होगा, न विचार और न सिद्धात। जो सत्ता समाज और देश के कल्याण के नाम पर स्थापित की गयी है, उसी सत्ता का उपयोग हम अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए करने लग गए हैं।"

उस रात प्रमोद और कांता को खाने पीने की इच्छा नही हुई। प्रमोद बरामदे मे आकर सोने की कोशिश करने लगा। लेकिन, उसे नीद नही आयी। वह इस बात से परेशान था कि जिस गाधीवाद को उसने अब तक स्वीकार नही किया था उसी वाद के जनक की हत्या होने पर वह इतना विचलित क्या हो गया ? जितना ही वह विचार करता, उतना ही उसे लगता, जैसे उसके देश में आस्था, निष्ठा और विश्वास नाम की कोई चीज नही रह गयी है। यह देश आत्मघातियो का देश है। तभी तो १९४२ में बगाल मे इतना भयकर अकाल पडा था, लाखो लोग भूख से तडप-तडप कर मर गये। बाप ने पेट भरने के लिए अपनी बेटी को बेचा। मुनाफाखोरो के गोदाम अनाज से भरे रहे लेकिन कोई माई का लाल सामने नहीं आया जो उन गोदामो को लूट ले। गाधी निहत्था था। वह सत्य और शांति का पुजारी था। अहिंसा उसका धर्म था। इसीलिए वह देश की घातक कायरता का शिकार हो गया।

सार्वजनिक छुट्टी की घोषणा की जा चुकी थी। कांता ने सोचा, शायद उसके स्कूल मे शोक-सभा जैसा कोई कार्यक्रम आयोजित किया जाए, इसलिए प्रमोद को चाय पिलाकर वह स्कूल चली गयी। प्रमोद कमरे मे ही बैठा रहा। रात भर वह सो नही पाया था। उसकी आखो मे चुभन हो रही थी और सिर मे दर्द भी हो रहा था। कई बार इच्छा हुई कि उठकर नहा ले। शायद नहाने के बाद उसमे स्फूर्ति और ताजगी आ जाए, लेकिन वह उठ नही पाया और कोठरी में रखी हुई कुर्सी पर पांव फैलाए बैठा रहा।

स्वाधीनता आंदोलन के दिनो मे वह सोचा करता था कि आजादी

मिलते ही उसके गाव और आस-पास के क्षेत्र के लोग उसे हाथो हाथ उठा लेंगे। जय-जयकार करेंगे। सब लोग सम्मानपूर्वक उसका नाम लेंगे। लेकिन जेल से छूटते ही वह अपने गाव और इलाके से ही नही परिवार तक से विच्छिन्न हो गया। यह बात दर्द बनकर कभी-कभी उसके मन को तड़पा जाती थी। आज वह अस्वस्थ था। अब उसे किसी तरह का दर्द कभी नही होगा। जब उसी देश के एक निवासी ने गाधी जैसे महात्मा की हत्या कर दी तब वह किस खेत की मूली है। अब तो यह देश आस्थाहीन और मूल्य-हीन बनकर ही प्रतिदिन बिखरता चला जाएगा।

क्या मैं अदर आ सकती हू ?"

प्रमोद धम्म से धरती पर आ गिरा। उसने चौंककर देखा, सामने कुमारी रमा खड़ी थी। रमा का उसपर एहसान था। इसके अतिरिक्त रमा धर्मेंद्र की मित्र थी, जिस धर्मेन्द्र ने काता को नौकरी दिलाई थी। प्रमोद उसे आदर देने के लिए घबराकर उठ खड़ा हुआ और बोला

'आइए, आइए। बैठिए।

रमा मुस्कराती हुई कुर्सी पर आकर बैठ गयी। प्रमोद, क्षण भर के लिए, गाधी जी की हत्या की बात भूल गया। कुर्सी पर बैठते-बैठते उसने रमा को ऊपर से नीचे तक देख लिया था। रमा की देह पर बैंगनी रंग का कमीज और उसी रंग की सलवार थी। कमीज इतनी कसी हुई थी कि लगता था, रमा के अगो की गोलाइयो के दबाव मे फट पड़ेगी। रमा बैठते ही बोल उठी

'बैठे-बैठे क्या सोच रहे थे ? आज तो सब जगह छुट्टी हो गयी। पर भाभी जी कहा चली गयी ?'

"उन्होंने सोचा शायद उनके स्कूल मे शोक-सभा करनी पड़े, इसलिए वे चली गयी हैं।'

"आहो फिर तो आप बिलकुल अकेले पड़ गए। मैं जानती थी इसीलिए चली आयी। चाय बना दू ?' यह कहकर रमा केतली उठाकर पानी लाने के लिए पिछले बरामदे मे चली गयी जैसे यह उसीका घर हो। कुछ ही देर बाद वह अगीठी पर केतली रखती हुई बोली

"मुझे दो चीजो का बहुत शौक है—चाय बनाने का और गीत गाने

का।" रमा अपनी कमीज को घुटना के नीचे तानती हुई बोली । ऐसा करते समय कमर के ऊपर का हिस्सा उसने थोडा पाछे करके तान लिया। प्रमोद को उसकी यह भगिमा अच्छी नही लगी। वह अगीठी की दहकती हुई चिगारियो को एकटक देखता रहा। रमा उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हुई बोली

"आपको सगीत का शौक है?"

"जी? जी हा, है तो। लेकिन ।"

"जब है तब यह 'लेकिन क्या'? जिस चीज का स्वीकार कीजिए उसे पूरे मन से स्वीकार कीजिए। स्वीकृति मे 'लेकिन, परतु' का कही स्थान नही है। मैं बहुत अच्छा गा लेती हू। सुनेंगे आप?"

प्रमाद ने विस्फारित आखो से रमा की ओर देखा। कही यह लडकी पागल तो नही है। इतनी दु खद घटना घट गयी है, और इसके हृदय मे सगीत का तरग उठ रहा है? रमा उसकी ओर बुभुक्षित आखो से घूर रही थी। उसके होठो पर विचित्र मुस्कराहट काप रही थी, जैसे वह मन ही मन किसी स्वादिष्ट पदार्थ का स्वाद ले लेकर खा रही हो। प्रमोद का मन हुआ कि वह उसे कमरे से बाहर निकाल दे। लेकिन वह ऐसा कर नहीं सका। अपने आक्रोश पर नियत्रण रखते हुए बोला

"आप जानती ही हैं कि कल गाधी जी की हत्या हो गयी। इस समय मेरा मन आपका गीत सुनने के मूड मे नही है।"

"मरना जीना तो लगा ही रहता है। हम पाच बहनें थी और तीन भाई। बटवारे का एलान होते ही हमारा परिवार स्यालकोट से चल पडा था। लेकिन, रास्ते मे मेरी दो बडी बहनो को मुसलमान गुण्डो ने पकड लिया। मेरे बडे भाई से देखा नहीं गया। उन्होने मेरी बहनो को वहीं गोली मार दी। ऐसी असख्य घटनाए पजाब मे हुई।"

"मुझे खेद है कि आपके बहनो के साथ ऐसी दु खद घटना घटी, किन्तु गाधी जी व्यक्ति नही एक आदर्श थे। कल हमने अपने आदर्श की हत्या कर दी है।"

"आप गाना सुनने के मूड मे नहीं हैं तो समय कैसे कटेगा? मुझे तो कुछ देर यही रहना है। मेरा दादा हरधर्मेन्द्र जी ने कहा था कि वे यहीं आएगे।"

प्रमाद हक्का बक्का रह गया। वह जानता था कि रमा झूठ बोल रही है। धर्मेन्द्र को मालूम रहता है कि इस समय काता स्कूल चली जाती है और वह शरणार्थियों के शिविर मे। वैसे भी धर्मेन्द्र अब तक एक बार ही यहा आया था, वह भी उसे पहुचान के लिए। रमा ने दो कप चाय बनाई। एक कप उसकी ओर बढाते हुए बोली

"मैं तो आपको बहुत शानदार आदमी समझती थी। सोचती थी कि कभी अकेले मे आपसे मिलूगी तो खुलकर बातें हागी। लेकिन, आप तो कुछ बोलते ही नही । मैं भी कैसी बेशम हू कि बक-बक करती जा रही हू।"

'आप बेशर्म ही नहीं, बीभत्स भी है।' प्रमोद मन ही मन कह उठा, लेकिन खुलकर कुछ बोल नहीं सका। रमा न ही बात जारी रखी, "मैं किसीसे डरती या शरमाती नही। मरी बहुत-सी सहेलिया हैं और नौजवानो से बातें करते समय सकाच से भर जाती है। मैं समझ नही पाती हू कि आखिर डरने की बात ही क्या है। लडके कोई हौवा तो होते नहीं हैं। देखिए न, अभी सात आठ दिन पहले की बात है, मैं १६ नम्बर बस से लाल किले जा रही थी। बायी ओर की जगह खाली थी। मुझे पता भी नही चला कि एक नौजवान मेरी बगल मे आकर बैठ गया। मैं धर्मेन्द्र जी के ख्याल म खोई हुई थी। बहुत खुशदिल आदमी हैं धर्मेन्द्र जी। मैं उन्हीकी बातें सोच रही थी कि अनजाने ही मैंने अपना एक पैर उस नौजवान के पैर पर यो रख दिया ।" यह कहकर रमा न अपना एक पाव उसके पाव पर रख दिया। प्रमोद को काटो तो खून नही। वह अवाक् और निश्चल होकर रमा का मुख देखता रह गया। रमा जल्दी जल्दी बोलती जा रही थी, "वह नौजवान मेरी ओर देख लेता था। मैं समझ नही पा रही थी कि वह घूर क्यो रहा है? अचानक मरा ध्यान अपने पैर की आर गया। मैं खिलखिलाकर हस पडी। उल्टे वह नौजवान शरम से पानी पानी हो गया ।" यह कहकर भी रमा ने अपना पाव प्रमोद के पाव पर से नही हटाया। वह विचित्र नजरो से प्रमोद का देखती रही। मजबूर होकर प्रमोद न ही अपना पाव खीच लिया और उठकर बोला

"अभी मेरी तबियत ठीक नहीं है। स्नान भी नही कर पाया। यदि आप बुरा न मानें ।"

'अरे जल्दी क्या है। पूरा दिन पडा हुआ है और जाडे के एक दिन स्नान नही कीजिएगा तो क्या बिगड जाएगा। मैं ता जाडे म पाच-पाच दिन सिर पर पानी नही डालती।'

प्रमोद चुपचाप खडा रहा। उससे न बैठते बनता था और न वहा स जाते ही बनता था। वह समझ नही पा रहा था कि तभी अचानक रमा न उसका हाथ पकडकर कुर्सी पर बैठा दिया। प्रमोद ने गौर से रमा की तरफ देखा। रमा की आखो मे भयकर भूख झलक आई थी। प्रमोद का मन न जाने कैसा करने लगा। वह फिर उठ खडा हुआ। उसका चेहरा तमतमा उठा था। उसकी आखो मे क्रोध की चिनगारिया सुलगने लगी। फिर भी वह अपने आपपर नियत्रण रखता हुआ बोला

"रमा जी, मैंन कहा न कि मेरी तबीयत ठीक नही है। आपसे फिर भेंट होगी, तब गीत भी सुनूगा। अभी जाइए।"

रमा उठ खडी हुई। वह मुस्कराती हुई प्रमोद के बिलकुल समीप आ आ गयी। उसकी आखो मे आखें डालकर बोली

"कई रोज से आना चाहती थी, लेकिन आप सुबह के गए रात को लौटते है। छुट्टी के दिन आप यहा रहते हैं तो साथ मे आपकी भाभी भी यही रहती हैं। फिर मैं कसे यहा आ सकती थी? सामन के कमरे में बैठी-बैठी आपके कमरे की सारी गतिविधि देखती रहती हू।'

यह कहकर रमा न प्रमोद के कधे पर अपन दानो हाथ रख दिए। प्रमोद पीछे हटता हुआ चीख पडा

"निकल जाइए यहा से!"

उसी समय काता वहा आ पहुची थी। वहा का दृश्य देखकर वह शुरु मे कुछ भी समझ नही पाई। काता पर नजर पडते ही रमा वही तेजी स उसकी बगल से निकल गयी। काता कुछ देर तक उस ओर देखती रही जिस ओर रमा गयी थी। अब बात उसकी समझ मे आने लगी। वह मुस्कराती हुई प्रमोद से कहन लगी 'क्या निकाल दिया बेचारी को। तुम्हारे जैसा कठोर व्यक्ति मैंन नही देखा।"

यह तो काता मजाक मे कह गयी लेकिन जब उसकी नजर प्रमोद की आखो पर पडी, तब वह स्वय करुणार्द्र हो उठी। प्रमोद डबडबाई आखो

से काता की ओर देख रहा था। उसके हाथ-पाव काप रहे थे। काता समझ नही पायी कि अचानक प्रमोद को क्या हो गया है। वह लपककर उसके पास आ पहुची और उसके दोनो हाथ पकडकर भाव विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। प्रमोद ने अपनी आखें बन्द कर ली। पलको के बन्द होते ही दो-तीन बूद आसू उसके गाल पर लुढक गए। काता ने विह्वल स्वर मे कहा, "यह क्या ? तुम रोते हो ? क्या हो गया है तुम्हें ? एक लडकी ही तो आई थी।"

प्रमोद आखें बन्द किए ही बोला

"भाभी काता मेरे जीवन मे अब कोई लडकी नही आ सकती। अब किसीके आने की गुजाइश नही रह गयी है। ये लडकिया इस तरह अपनी गरिमा क्या खाती जा रही हैं ?"

ऐसा कहते-कहते प्रमोद के हाथ-पाव अनायास ही ठडे पड गए थे। काता ने सहारा देकर उसे कुर्सी पर बिठा दिया था। वह चुपचाप निढाल आखें बन्द किए हुए देर तक निष्प्राण सा बैठा रहा।

३८

प्रमोद की रिपोर्ताज इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि दिल्ली के ही नही, लखनऊ, कलकत्ता और बम्बई के महत्वपूर्ण समाचारपत्रो ने भी अपना-अपना अश-कालिक सवाददाता नियुक्त कर दिया। इन समाचारपत्रो मे लेख तैयार करने के लिए वह अपना अधिकाश समय घर मे ही बिताने लगा। दोपहर तीन बजे वह घर से निकल जाता था और रात १०-११ बजे तक वापस लौटता था। काता भोजन तैयार करके सुबह साढे सात आठ बजे चली जाती थी और शाम को वापस लौटती थी। उसने स्कूल मे काम करने के साथ साथ एम०ए० की तैयारी भी शुरू कर दी।

प्रमोद और काता के लिए लोदी रोड का फ्लैट छोटा पड रहा था। प्रमोद के तो कम परतु काता की सहेलिया अधिक वहा आने लगी थी। चार चार समाचारपत्रो के लिए सामग्री जुटाकर लाना, सन्दर्भ के लिए

अखबारों और समाचारपत्रों की फाइल रखना और फिर एकाग्र चित्त होकर लेख तैयार करना न केवल श्रम साध्य काय था, बल्कि इसके लिए एकान्त और समुचित स्थान की भी अपेक्षा थी। प्रमोद न धर्मेंद्र से कह भी रखा था कि यदि सम्भव हो तो उसके लिए दो-तीन कमरे का पूरा मकान ढूढ़ने मे मदद कर दे। प्रमोद सौ सवा सौ रुपये माहवार देने को तैयार था। नौकरी नही करते हुए भी अब वह अखबारो के लिए लिखकर पाच छह सौ रुपये प्रति माह कमा लेता था। बेशक, उसके लिए हर रोज उसे कम से कम चौदह घण्टे काम करना पडता था। कान्ता को तीन सौ रुपये माहवार मिल जाते थे।

कान्ता के दृष्टिकोण मे थोडा थोडा अन्तर आने लग गया था। अब वह अपने-आपको कोसती नही थी, कुलक्षिणी भी नही समझती थी। उसे एह सास होने लगा था कि उसका अपना अलग से भी अस्तित्व है। भाग्य और दुर्भाग्य भी उसका अपना ही है। इस नाते अपने दुर्भाग्य को भाग्य मे बदलने का प्रयत्न और प्रयास भी उसे स्वय करना होगा। जीवन इतना तुच्छ नही है, इतना अर्थहीन भी नही है कि उसे सामाजिक कुरीतियो से डरकर मिट्टी के खिलौने की तरह तोड दिया जाए। प्रत्येक जीवन का एक उद्देश्य होता है। उद्देश्य के अनुरूप ही व्यक्ति को अपने कर्म और आचरण का समजन करना होता है। जिस प्रकार भविष्य निश्चित नही है, उसी प्रकार अतीत की घटनाए भी निश्चित नही थी। चलते चलते गिर जाना या अनवरत चलते रहकर लक्ष्य पर पहुच जाना मनुष्य के सकल्प, साहस और प्रयत्न की गभीरता और क्षमता पर निर्भर करता है। यदि उसमे सकल्प शक्ति है, क्षमता है, तो वह अपने जीवन को यानी भविष्य को सवार सकता है।

कान्ता अब प्रसन्न रहने लगी थी। उसके अग प्रत्यग मे चुस्ती और गति आ गयी थी। आयु के अनुरूप उसके मुखमडल पर आकर्षक कान्ति की आभा दप दप करने लगी थी। उत्साह मे आकर उसने कठोर परिश्रम शुरू कर दिया था। जीवन को उसने व्रत का रूप दे दिया था। नाश्ता और दोनो वक्त का भोजन बनाने के अतिरिक्त वह एक स्कूल मे पढाने जाती थी और साथ ही तीन चार घण्टे रोज एम० ए० की पढाई मे बिताया करती

थी। कठोर परिश्रम के कारण उसे कभी-कभी ज्वर भी आ जाता था। लेकिन इस ओर उसने ध्यान नहीं दिया था।

उस दिन प्रमोद को तीन लेख तैयार करने थे। इसलिए काता के स्कूल जाते ही वह जमकर काम करने बैठ गया। अभी उसने एक लेख पूरा ही किया था कि दरवाजे पर दस्तक हुई। प्रमोद ने उठकर दरवाजा खोला तो कुछ देर तक हक्का-बक्का खडा रह गया। उसके चेहरे पर शिष्टाचार और खीझ की मिश्रित प्रतिक्रिया उभर आई। सामने जो लडकी खडी थी, उसका नाम था धम। वह लडकी प्रमाद को हाथ से हटाती हुई भीतर चली आई और प्रमाद के मुह से स्वागत-सत्कार के शब्द सुनने की प्रतीक्षा न करके कुर्सी पर पसरकर बैठ गयी।

धम असामान्य रूप से लम्बी लडकी थी। उसकी ऊचाई छह फुट के लगभग होगी। उसका शरीर छरहरा था, किन्तु उसके स्त्रियोचित अगो की उठान सुपुष्ट और मादक थी। उसके शरीर का रग साफ गेहुआ था, किन्तु उसमे अनोखी चमक और कोमलता थी। धम केवल एक बार रमा और धर्मेन्द्र के साथ रेस्तरा मे प्रमोद से मिली थी।

उस दिन रमा को अपने कमरे से निकाल बाहर करके वह थोडी देर के लिए आश्वस्त हो गया था। लेकिन बाद मे उसे अपने-आपपर बहुत ग्लानि हुई थी। उसने अपने आवेश और क्रोध के पीछे अपनी ही दुबलता का अनुभव किया था। यदि वह अच्छे चरित्र और ऊचे आदर्श का व्यक्ति था, तो उसे रमा जैसी लडकी से डरने की क्या आवश्यकता थी? चूकि उसमे चारित्रिक दृढता और आत्मबल का अभाव था, इसलिए वह अपना आपा खो बैठा था। रमा को अपमानित करके इस प्रकार बाहर निकाल देना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। आखिर उसका नैतिक और सामाजिक दायित्व भी तो है। रमा उसके घर से निकलकर क्या सही राह पर चलती हुई अपने घर वापस जा पहुची होगी? आखिर रमा भी तो एक कमजोर लडकी थी। वह स्वत तो गुमराह हुई नहीं होगी। आरम्भ मे, किसी न किसीने उसके भोलेपन का नाजायज फायदा उठाया होगा।

रमा निम्नतम मध्यम वर्ग की लडकी थी। बहुत बडे परिवार का बोझा उठाने वाला एकमात्र व्यक्ति उसका पिता था। वह किसी प्रकार

अपने बच्चों का भरण पोषण कर पाता होगा। रमा देखती होगी कि ससार म सुख की, ऐश्वय की, मनोरजन की कमी नही है। स्नो लिपस्टिक, पाउडर लगाये और बेशकीमती साडी, ब्लाउज या कमीज, सलवार पहने अनगिनत स्त्रियो को वह देखती होगी। वह देखती होगी कि उनके नाक, कान, गले और पहुची मे तरह-तरह के मूल्यवान आभूषण चकमक कर रहे ह। यह सब देखकर क्या उसका मन ललचता नही होगा ?

यह सब सोचते सोचते प्रमोद इस नतीजे पर पहुचा था कि गलती रमा की नही है, बल्कि गलती है समाज की अव्यवस्था की। सामाजिक प्राणी होने के नाते इन विषमताओ के लिए वह भी जिम्मेदार है। उचित तो यह होता कि वह रमा को सात्त्विक स्नेह देकर सही राह पर चलने की प्रेरणा देता। इसके विपरीत उसने उसे अपमानित करके निकाल दिया। रमा पर इसकी उल्टी प्रतिक्रिया हुई होगी। यही सब सोच समझकर प्रमोद ने रमा को स्नेह देना शुरू कर दिया था। उस घटना के बाद रमा से एकात मे अकेले मिलने का काई सयोग नही आया। वह जब भी मिला, धर्मेन्द्र के साथ ही मिला। रमा ने उसी चिर परिचित मुस्कराहट के साथ उसका स्वागत किया था। उसकी आखो मे कटुता का आभास तक नही था। प्रमोद ने भी उससे बडे स्नेह के साथ पूछा था

"कैसी है आप ? नाराज तो नही है।" —धर्मेन्द्र से आख बचाकर उसने धीरे से माफी भी माग ली थी।

पहली बार जब उसने रमा और धर्मेन्द्र के साथ धम को देखा था, तब उसके अत्यधिक आकर्षक और मादक रूप को देखकर वह क्षण भर के लिए विचलित भी हो गया था। कितनी सुन्दर और स्वप्निल आखें हैं धम की ? उसके उरोज कितने सुपुष्ट और उन्नत है ? किस प्रकार सुचिक्कण ग्रीवा और कितनी मुलायम उगलिया हैं ? इस तरह के प्रश्न धम से मिलने के बाद प्रमोद के मन मे उठते रहे थे, किन्तु उसने अपने मन पर नियत्रण कर लिया था। इस तरह की इच्छाओ को पालना उसके वश की बात नही थी।

दूसरी बार धम के साथ उसकी भेंट गलाड मे हुई थी। वह वहा पहले से बैठी थी जब प्रमोद धर्मेन्द्र के साथ वहा पहुचा था। उस दिन धम न

मजाक में कहा था

' आप तो लेखन है। एक लेख मुझपर भी लिख दीजिए।"

उसी घम को अपने एकात कमरे में कुर्सी पर निश्चित बैठा देखकर प्रमोद का मन कैसा करने लगा। वह समझ नही पाया कि इस स्त्री से भय करे या अवसर मिला है तो इत्मीनान स बैठकर इसके सौदय रस का पान करे। वह दुविधाग्रस्त होकर बैठ भी नही पाया था कि धम न कहा, "कहा खो गये आप ? मैं तो यही बैठी हू।"

प्रमोद को लगा, जैसे वह चोरी करते पकडा गया हो। इन लडकियो की दृष्टि कितनी पैनी होती है। प्रमाद ने मन ही मन सोचा। वह झेंपकर बैठता हुआ बोला

"कही नही आप अचानक कसे यहा आ गयी ?"

धम खिलखिलाकर हस पडी। उसके मोती जैसे दात चमक उठे। स्निग्धता और भालेपन बिखेरती हुई वह बोली

"अचानक नही आई। सोच-समझकर और कायक्रम बनाकर आज आपके पास आई हू।'

प्रमोद न कौतूहलपूण दप्टि से धम की तरफ देखा। धम भी उसे ही देख रही थी। उसकी ओर इस प्रकार देखन म प्रमोद को बहुत सुखद लगा। रमा की दप्टि मे और उसक होठो पर एक भूख रहती थी, किन्तु धम की दप्टि म और उसके होठा पर तटस्थ भोलापन था, मासूमियत थी। धम न इस तरह देखते देखते सहज स्वर म कहा, ' आपको मेरे साथ चलना है।"

'कहा ? अभी तो मुझे बहुत सारा काम पूरा करना है। '

"क्या आप समझते हैं कि मैं बिलकुल बेकार आदमी हू।"

"नही, नही मैं तो अपनी बात कह रहा था। यदि मैं सभी लेख आज ही पूरा नही कर लूगा तो बडा नुकसान हो जाएगा। यह बहुत ही महत्वपूण काम है।"

"महत्वपूण तो आप स्वय हैं। सभी पुरुष अपन आपको केवल महत्व-पूण ही नही महान भी समझते हैं। वे सोचते ही नही है बल्कि कहते भी है कि अगर हम नही रहे तो दुनिया नही रहगी। उन्ही पुरुषा मे आप भी हैं।"

यह कहते कहते धर्म का मुखमण्डल विचित्र आक्रोश से आरक्त हो उठा। प्रमोद उसका यह रूप देखकर विस्मित रह गया। वह अपनी कही हुई बातो को याद करता हुआ बोला

"आप तो व्यर्थ ही बुरा मान गयी। मैंने दु ख पहुचाने वाली बात तो कही नही।"

"मैं आपके घर बिना बताये आ गयी। दोनो बार जब मैं आपसे मिली तो धर्मेन्द्र जी साथ थे। मैं आपसे कोई बात नही कर पाई, लेकिन मुझे लगा, जैसे आपकी आखें कुछ कह रही हैं। सच पूछिए, तो आप मुझे बहुत अच्छे लगे थे। इसलिए आज आपके पास चली आई हू। लेकिन, आप का यह व्यवहार मेरे लिए नया नही है। उनका व्यवहार भी मेरे साथ ऐसा ही होता था।" धर्म ने रुआसा होकर कहा। प्रमोद विस्फारित आखो से धर्म को देखता जा रहा था और उसके भावावेश को समझ न सकने के कारण उलझन मे फसता जा रहा था। उसे शका होने लग गयी थी कि इस लडकी का दिमाग कही खराब तो नही है। अन्त मे प्रमोद ने जिज्ञासा की "किनका व्यवहार ऐसा ही होता था।'

"यह सब सुनकर क्या कीजिएगा। मैंने एक स्वप्न देखा था। हा, वह स्वप्न ही था। जो भाग्य मे न हो, उसे क्या कहा जाएगा ?"

कुछ देर तक धर्म चुप रही। फिर नाटकीय ढग से प्रमोद की ओर रुख करती हुई बोली

"उनकी शक्ल आपसे बहुत मिलती जुलती है। एसी ही आवाज, उसी तरह की बातें और वही अन्दाज। हा, उनका स्वास्थ्य थोडा कमजोर था। पहली बार जब मैंने देखा, तब अपनी आखो पर मुझे विश्वास नही हुआ था। वैसी ही आखें, वैसे ही होठ और मुखाकृति भी मिलती-जुलती हुई।"

धर्म छत की ओर देखती देखती बोलती जा रही थी और उसकी आखो से आसू की बूदें टपक रही थीं। प्रमोद हैरान था, परेशान था। वह साच सोचकर घबरा रहा था कि अगर इसी समय कोई आ जाए तो क्या सोचेगा ? वह कैसे उस लडकी को भरोसा दिलाए कि वह निश्चय ही वह नही है, जिसकी कल्पना मे वह पागल होती जा रही है। कई बार प्रमोद की इच्छा

हुई कि उसकी आखो के आसू पोछ दे। लेकिन, ऐसा करने की हिम्मत नही हुई। अत मे प्रमोद ने हिम्मत करके कहा

"सुनिए आप आपको क्या तकलीफ है मेरा मतलब है कि आप रो क्यो रही है ? अगर मैं आपकी मेरा मतलब है कि यदि मैं आपके किसी काम आ सका तो मुझे बहुत खुशी होगी।"

"आप ठीक कहते हैं ? मुकर तो नही जाइएगा ?"

"नही, नही, कहिए तो। ' प्रमोद कह तो गया, लेकिन तुरत उसे शका हुई और उसने अपना बचाव करते हुए कहा "यदि मेरे वश की बात हुई तो अवश्य करूगा।"

"आपके वश की बात है। आज अभी मेरे साथ पिक्चर देखने चलिए। ओडियन म महल' चित्र लगा हुआ है। मेरे जीवन मे कुछ ऐसी घटना घटित हुई है, इसलिए आपके साथ पिक्चर देखने की इच्छा है।'

"लेकिन लेकिन लेकिन मुझे यह काम आज ही पूरा करना है।"

'फिर वही बात। दरअसल आप लोगो की बात का कोई भरोसा नही।

"अच्छा, अच्छा चलिए।"

प्रमोद ने धम की बात काटते हुए बोला। वह झटपट तैयार हो गया। दोनो लादी रोड के बस स्टाप पर जा पहुचे। धम ने प्रमोद के कान के पास अपना मुह ले जाकर कहा, "धन्य भाग्य मेरे।"

"अगर मेरे साथ सिनमा चलने से ही आप इतनी खुश हैं तो मैं अभी चलता हू। लेख पूरा करने की चिंता है सो लौटकर रात मे पूरा कर लूगा।"

"आप लोगो मे यही खराब आदत है। कोई काम पूरे मन से नही, आधे मन से करते है। चल रहे ह सिनेमा देखने और ध्यान कर रहे है लेख का।"

सिनेमा हाल मे अधेरा था। सिर से ऊपर के प्रकाश की तेज धाराए बिखरकर रजत पट पर पड रही थी। हाल मे बैठे सभी लाग कौतूहल से 'महल' के महल का तिलस्म देख रह थे। प्रमोद की बगल मे धम बैठी थी। जब कभी रोमाचकारी दृश्य आता तो धम घबराकर प्रमोद के कधे पर झुक जाती थी। वह सिहर उठता था। सामने रजतपट पर तरह-तरह के

पात्र और दृश्य बनते बिगड़ते रहे। किंतु प्रमोद उन्हें देख नहीं पा रहा था, उसकी आखें अवश्य रजतपट पर लगी हुई थी, और उसका मन भीतर भीतर ही उद्वेलित हो रहा था उसे छाया के साथ उठने-बैठने और चलने फिरने का कई बार अवसर मिला था। वह छाया को प्यार करता था। उसके साथ जीवन यापन करने के वह स्वप्न देखा करता था। लेकिन उसने कभी छाया को स्पर्श तक नही किया था। आज पहली बार एक ऐसी *लड़की उसकी बाहों और कन्धों से बार-बार सट जाती थी जो अनजान* होती हुई भी सुंदर थी, स्निग्ध थी और थी नवयौवना। प्रमोद के मन ने उस लड़की के रूप की सराहना भी की थी।

कुछ देर तक यही क्रम चलता रहा कि अचानक ही प्रमोद ने महसूस किया कि उसकी बायी जांघ पर मुलायम सी चीज आ पड़ी है। उसे विश्वास नही हुआ, उसकी हिम्मत भी नहीं हुई कि वह अपने हाथ से टटोल कर देख ले कि जांघ पर धम की ही हथेली है या और कुछ। उसके कंप-*कंपी छूटने लगी। उसके नाभि स्थल से कोई तेज चीज सनसनाती हुई* मस्तिष्क मे जा पहुंची। क्षण भर बाद ही वह चीज उसके अन्तरतम को हिलाती और झकझोरती हुई नीचे उतर पड़ी। इस सनसनाहट ने उसके कर्मेन्द्रियो मे तीव्रतम उद्वेलन भर दिया। उसके नाक और सिर उष्णता से झनझना उठे। दायी जेब से रूमाल निकालकर उसने अपने भाल पर आए पसीने को पोछा। उसकी जांघ पर धम की हथेली धीरे धीरे फिसलती रही। गुदगुदी, उद्वेलन और आतंक की मिली जुली अव्यक्त खीझ उसके मस्तिष्क मे बढ़ने लगी। उसकी सांस जोर-जोर से चलने लगी। कलेजे की धड़कन इतनी तेज हो गयी कि उसे लगा जैसे वह मूर्च्छित हो रहा है। वह चौंककर अचानक ही उठ खड़ा हुआ, क्योंकि उसके भीतर की दुर्बलता अट्टहास करने लगी थी, क्योंकि उसका बायां हाथ उठकर धम को आलिंगन बद्ध करने के लिए बेचैन हो गया था।

प्रमोद उठकर तेजी से हाल के बाहर चला आया। बाहर आते ही उसकी जान मे जान आ गयी। तेज हवा का झोंका लगते ही वह अपनी सामान्य स्थिति मे आ गया। उसे लगने लगा, जैसे जलते हुए तवा से कूद कर भाग रहा हो जैसे नरभक्षी के पंजे से छूटकर बच निकला हो। कभी

कभी वह पीछे घूमकर देख लेता था और जब उसे धम की आकृति दिखाई नही पडती थी तब आश्वस्त होकर वह अपना कदम और तेज कर देता था।

यूनाइटेड काफी हाउस सामने देखकर बिना कुछ सोचे समझे वह जल्दी से भीतर दाखिल हो गया और दरवाजे के बाहर दाहिनी ओर की सीट पर धम्म से बैठ गया।

"एक गिलास ठडा पानी।" वह वेटर को सामन खडा देखकर उससे कहा और फिर आश्वस्त होकर बैठ गया। अब तक उसके दिमाग से अट्टहास की खीझ पूरी तरह मिटी नही थी। वह कुछ देर तक आखें ब द करके बैठा रहा।

"अरे प्रमोद तुम, यहा इस समय ?" प्रमोद ने आखें खोलकर देखा, सामने धर्मेन्द्र अपन मित्र शिव कपूर के साथ खडा था। प्रमोद नही चाहता था कि उसकी मन स्थिति का भेद धर्मेन्द्र और उसके मित्र के सामन खुल जाए, इसलिए वह सामा य बनने की कोशिश म अचकचाता हुआ बोला, "ऐसे ही आज आज इच्छा हुई कि सिनमा।"

'लेकिन, सिनेमा का समय तो खत्म हो गया और अभी तक तुम यहीं बैठे हो ?' धर्मेन्द्र ने बैठते हुए कहा। उसने अपने सहयोगी शिव कपूर को भी सम्मानपूवक वहीं बगल में बिठा लिया। प्रमोद ने झेंपत हुए कहा

"हा, सिनेमा देख नही सका। अचानक तबीयत खराब हो गयी तो हाल से उठकर चला आ रहा हू।"

"अजीब बात है, आज एक के बाद एक करके कई बीमार मिलते जा रहे हैं। विश्वविद्यालय के समारोह मे विजय से भेंट हो गयी। उसन अपनी श्रीमती जी से परिचय कराया। वहा अचानक ही उनकी तबीयत खराब हो गयी और जब वहा से हम लोग बाहर निकले, तब बस स्टाप पर तुम्हारी भाभी से भेंट हो गयी। उनकी तबीयत भी खराब थी। उ हे हम लोग तुम्हारे घर पहुचाकर आ रहे हैं।"

एकसाथ ऐसी कई सूचनाए प्रमोद को मिल गयी जो उसे चौका देन के लिए काफी थी विजय दिल्ली मे और वह भी अपनी पत्नी के साथ! इत ा वर्षों से वह दिल्ली मे है। उसने जान बूझकर धर्मेन्द्र को अपने डेरे पर कभी आमन्त्रित नही किया था। वह धर्मेन्द्र के चरित्र से भली भाति

परिचित था। वह जानता था कि धर्मेंद्र की दृष्टि मे कोई भी औरत केवल औरत है भोग्या है। जब नौकरी दिलाने की बात थी, प्रमोद अपनी भाभी को लेकर सीधे स्कूल मे पहुचा था। वही प्रिंसिपल के कमरे मे धर्मेंद्र और शिव कपूर जी मौजूद थे। इसके बाद एक बार और यूनाइटेड काफी हाउस मे वह अपनी भाभी के साथ बैठा काफी पी रहा था। धर्मेंद्र वहा आ पहुचा था, लेकिन उसने उसके व्यवहार में कोई बुराई नही देखी थी। उसकी आखो तक मे वह सहानुभूति के अतिरिक्त कोई भाव पढ नही पाया था। लेकिन आज यह सूचना पाकर कि धर्मेंद्र उसकी भाभी कांता को घर तक छोड आया है, प्रमोद अत्यधिक उद्विग्न हो उठा। उसने मन ही मन तय कर लिया कि यदि धर्मेंद्र न उसकी भाभी के साथ कोई बदतमीजी की होगी या अपने हाव भाव तक से दुश्चरित्रता का सकेत दिया होगा, तो वह धर्मेंद्र को जिंदा नही छोडेगा। अचानक ही प्रमोद का चेहरा तमतमा उठा। वह धम वाली घटना को भी भूल गया। उसने आग्नेय नेत्रो से धर्मेंद्र की ओर देखा, किंतु शिव कपूर के सामने वह अपने मन का भाव प्रकट करना नही चाहता था। इसलिए तत्क्षण ही उसने अपनी आखें और सिर झुका लिया।

धर्मेंद्र शायद प्रमोद की मन स्थिति को भाप गया था। उसने सहज स्वर मे, किंतु कुछ शब्दा पर साथक ढग से जोर देते हुए कहा, "तुम्हारी भाभी कांता सचमुच अस्वस्थ हैं। वह इसके पहले भी दो बार इस घातक रोग का शिकार हो चुकी है। यह सब जानते हुए भी तुमने उन्हें नौकरी करने के साथ-साथ पढाई मे भी लगा दिया, यह ठीक नही किया। मैं जानता हू कि तुम उन्हे नयी जिंदगी देना चाहते हो, अपने पाव पर खडा करना चाहते हो, किंतु शारीरिक शक्ति की भी सीमा होती है ।"

प्रमोद ने फिर अयपूण दष्टि से धर्मेंद्र की ओर देखा, जैसे वह उसके स्वर को नही, आखो की भाषा को पढना चाहता हो। धर्मेंद्र ने मुस्कराकर अपनी बात जारी रखी, "मैं ठीक कहता हू प्रमोद। मुझे गलत मत समझो। मेरी नजर मे कांता तुम्हारी भाभी है और तुम मेरी नजर में मेरे छोटे भाई के समान हो। विश्वविद्यालय मे कुछ मंत्रियो और नये ससद सदस्या के स्वागत अभिनन्दन के सिलसिले मे एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया

गया था। रामनारायण बाबू मुख्य वक्ता थे। इसीलिए, हम लोग वहा गए थे। वहीं विजय से भेंट हो गयी। मुझे तो मालूम भी नही था कि उसने शादी कर ली है और वह ससद सदस्य बन गया है। लौटते समय बस स्टाप पर कांता को देखा। यह तो खरियत हुई कि हम लोगो ने अपनी गाड़ी मे बिठाकर उन्हें घर पहुचा दिया। उनम न तो चल फिर सकने की ताकत थी और न खडी रहने की। शिव कपूर जी न अपने डाक्टर को फोन कर दिया है। तुम्हारे घर का पता भी बता दिया है। वह बहुत बड़े डाक्टर हैं।"

'हा, डाक्टर रिजवी बहुत बडे फिजिशियन हैं। मैंने उनके क्लिनिक और घर पर मेसेज छोड दिया है। वह कही बाहर गए हुए थे मैं यह करता हू कि यहा से जाते समय उनस कहता जाऊगा अच्छा मिस्टर धर्मेन्द्र, अब मैं चलूगा।" शिव कपूर न उठते हुए कहा। उसी समय काफी लेकर बैरा आया। धर्मेन्द्र ने शिव कपूर की बाह पकडकर बिठाते हुए आग्रह किया कि एक कप काफी पी ही लीजिए।

शिव कपूर के चले जाने के बाद धर्मेन्द्र ने चैन की सास लेते हुए कहा, "देखो भाई प्रमोद, शायद तुमने गलत समझा। तुम्हारे चेहरे को देखकर ही मैं भाप गया था। तुम्हारी भाभी को हम लोगो ने जो घर पहुचा दिया, यह तुम्हें अच्छा नही लगा। है कि नही! लेकिन मेरे दोस्त मैं चारित्रिक दृष्टि से कितना ही गिरा हुआ क्या न हू, किन्तु डायन भी ढाई घर छोड देती है। तुम मेरे शिष्य रह चुके हो। इस नाते तुम मेरे परिवार के अग हो। पारिवारिक सुखो की अनुभूति मुझे तुम्हें और विजय को देखकर ही मिलती रही है। मेरी नजर मे कांता मात्र तुम्हारी भाभी है और इस नाते एक पवित्र धरोहर भी। मैं गिरा हुआ आदमी जरूर हू, किन्तु इतना गिरा हुआ नही कि अपने और पराये के बीच भेद न कर पाऊ। तुम भी तो मुझे जाने-अनजाने अपना समझते ही हो, तभी तो तुमने शिव कपूर साहब के सामने अपने आपपर नियत्रण रखा। तुम्हारी आखें देखकर तो मैं घबरा ही गया था। खैर, मेरे बारे मे तुम्हारी धारणा कुछ और नही हो सकती थी अब तुम घर जाओ। शिव कपूर डाक्टर साहब को भेज देंगे। फीस की चिन्ता मत करना। अच्छा हो कि कुछ दिन के लिए कांता दोनो कामों मे से एक काम छोड दे। वह अधिक बोझ बर्दाश्त नही कर सकती।"

प्रमोद को अपने आपपर ग्लानि हुई। सचमुच ही उसने अनुमान लगा लिया था कि धर्मेन्द्र ने उसकी कांता भाभी के साथ कोई बदतमीजी की होगी। वह सोच भी नही सकता था कि धर्मेन्द्र के चरित्र का कोई उज्ज्वल पक्ष भी हो सकता है। उसके मन म धर्मेन्द्र के प्रति पहली बार आदर का भाव जगा। उसने मन ही मन सोचा कि कोई भी आदमी अपने मूल रूप मे आदमी ही होता है। प्रमोद उस दिन पहली बार धर्मेन्द्र के प्रति स्नेह और कृतज्ञता के भाव से भर उठा।

३९

जिस बात की आशका थी, वह निराधार निकली। डाक्टर रिजवी ने पूरी जाच-पडताल के बाद एक सप्ताह के अन्दर अपना निदान दिया कि कांता को तपेदिक नही है। उनके अनुसार उसे तपेदिक हुआ था, किन्तु अब उस रोग से मुक्त हो चुकी है। इधर कांता ने क्षमता से अधिक शारीरिक और मानसिक श्रम करना शुरू कर दिया, लेकिन उसके अनुरूप वह भोजन नही करती थी। इसीलिए उसे रक्त का अभाव हो गया था और ठड लगने के कारण ज्वर आने लगा था।

बीस पच्चीस रोज मे कांता पूरी तरह स्वस्थ हो गयी। प्रमोद ने उसका लिखना पढना कुछ रोज के लिए बिल्कुल बन्द कर दिया। अब वह स्वय कांता के खाने पीने का ध्यान रखने लगा। न्यू राजेन्द्र नगर मे उसने दो कमरो का नया मकान भी ले लिया था, और यह नया मकान प्रमोद के लिए वरदान सिद्ध हुआ। इसी मकान मे आकर उसे कांता की आत्मा को पहचानने का अवसर मिला।

उस दिन प्रमोद एक साथ ही बहुत सारा फल सेब, मुसम्मी, केला अनार उठा लाया था। मेज पर फलो से भरे हुए टोकरे को रखते हुए उसने कहा, ' कांता, ये सभी फल तुम्हें कल इसी समय तक खा लेने होंगे। गज कि रोज दो सेब, दो अनार, चार केले और आठ मुसम्मियो का रस निश्चित रूप से तुम्हें ले लेना चाहिए।''

काता उस समय कमरे मे बैठी किताब पढ रही थी। प्रमोद का सम्बोधन सुनते ही वह चौक पडी थी। कमरे से बाहर आकर वह फलवाली मेज के पास खडी हो गयी और प्रमोद की ओर अवाक् देखती रही। आज तक वह उसे काता भाभी कहकर पुकारा करता था। उस दिन पहली बार वह भाभी कहना शायद भूल गया था। काता के मन के किसी कोने से यह प्रश्न उठा कि प्रमोद की दृष्टि मे उसका रूप कही बदल तो नही गया है ? न जाने क्या इस प्रश्न की अनुभूति से वह क्षण भर के लिए स्पदित हो उठी।

काता इधर कुछ दिनो से अपने मन पर बहुत बडा बोझ लिए जी रही थी। प्रमोद उसके लिए कब तक अकारण ही अपना जीवन नष्ट करता रहेगा ? उसकी खातिर घर, द्वार यहा तक कि अपने मा-बाप को भी छोडकर, वह यहा भटकता फिर रहा है। उसके जीवन में न कोई माधुय है, न कोई सपना। किसी चीज का आकपण भी नही है । काता कभी-कभी यह सब सोच सोचकर अपने-आपको कोसती कोसती अपने जीवन से ही ऊब जाती थी। कब तक वह इस तरह उसके भविष्य को अवरुद्ध किए रहेगी ? उसके रहते प्रमोद का जीवन क्या कभी मुक्त हो सकेगा ? क्या वह कभी ऐसा कोना पा सकेगा जहा बैठकर आराम कर सके, अपने दिल के घाव सहला सके और किसीसे अपने मन की बात कह सके ? नही, जब तक काता उसके जीवन मे वैधव्य की रिक्तता लिए बैठी रहेगी तब तक प्रमोद का जीवन स्वप्न से, माधुय से, मुक्ति से, प्रेम और उल्लास से वचित ही बना रहेगा।

इसलिए उस दिन प्रमोद के मुख से मात्र काता शब्द सुनकर वह रहस्यमय आल्हाद से विह्वल हो उठी थी, किन्तु अपने मन के ज्वार को दबाती हुई बोली, "इतना फल अकेले मैं ही खाऊगी ? मेरे पाप की गठरी क्या पहले से ही काफी भरी नही है, जो इसे और बोझिल बना डालना चाहते हो। नही, नही ।"

"यह क्या बकती हो। पाप की वह कौन सी गठरी है जिसे लिए तुम आज तक घूमती फिर रही हो ? म भी तो तुम्हें वर्षों से देखता आ रहा हू। मुझे तुमम कोई पाप नजर नही आया। हा, इस तरह की बातें सोचकर

और बोलकर तुम जरूर पाप कर रही हो।" प्रमोद ने प्यार से तड़पकर कहा। कांता प्रमोद के पास चली आई और बोली, "मेरे लिए तुमने सब कुछ त्याग दिया। दिन-रात काम के पीछे भागते रहते हो, अपने शरीर को शरीर नहीं समझते और मन तो तुम्हारा भर ही गया है। अब रोज इतने फल लाते हो और चाहते हो कि मैं बैठकर इन्हें निगलती रहूं। यह भला कैसे हो सकता है? तुमने अपना चेहरा इधर आइने में देखा है? कैसे हो गए हो।"

"अरे, मेरी बात छोड़ो। मेरा बचपन गांव के खेत, खलिहान में बीता है। आम के बगीचों में कबड्डी ही नहीं खेलता रहा हूं, वहां अखाड़ा खोदकर कुश्ती भी लड़ता रहा हूं। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में इधर उधर भटकते भटकते मेरा शरीर रूक्ष भोजन का अभ्यस्त बन गया है। इसे यदि मक्खन, मलाई और मेवा मिष्टान्न दूं तो यह स्वीकार नहीं करेगा। समझी?" प्रमोद ने यह कहकर कांता की आंखों में देखा। उन आंखों को देखते ही प्रमोद को लगा, जैसे पीते में पानी लग गया हो। उस समय कांता की आंखें ही नहीं, उसके सम्पूर्ण मुखमंडल पर अलौकिक सौंदर्य की छटा उद्भासित हो रही थी। कांता की आंखें प्रमोद को ऐसे देख रही थीं, जैसे कभी राधा ने कृष्ण को गोकुल से जाते समय देखा होगा। प्रमोद ने अचानक ही कांता के भाल पर अनायास लटक आए बाल को अपनी उंगलियों से हटाते हुए कहा, "आज तो बहुत सुन्दर लग रही हो।"

कांता ने शरमाकर सिर झुका लिया। उसका चेहरा लाज से लाल हो गया। प्रमोद ने उसकी ठुड्डी पकड़कर उठाते हुए कहा, "सच कहता हूं यह क्या? तुम्हारी आंखों में आंसू।"

'मैं कुलक्षणी विधवा हूं, प्रमोद बाबू। वैधव्य में सौंदर्य नहीं होता, जैसे बुझी हुई आग की राख में ताप नहीं होती।"

"आज तक तुम यही अनगल बातें गांठ में बांधे चल रही हो। तुम नहीं जानती कि तुम्हारे सौन्दर्य में चेतना है जीवन्त चेतना। आग तो जड़ पदार्थ है जिसे जलाया या बुझाया जा सकता है। जीवन और चेतना तो प्रकृति की देन है। यह सामाजिक नियमों के अधीन नहीं होता। अब न

तो तुम कुलक्षणी हो और न विधवा। भूल जाओ इन दकियानूसी बातो को। मेरे सामने फिर कभी जुबान पर भी ये शब्द न लाना।"

"नही लाऊगी, बशर्ते कि मेरे साथ तुम भी यह फल खाओ।"

"तुम्हारी इस मामूली शर्त को यदि मान लू तो तुम अपना दृष्टिकोण बदल लोगी ?"

"हा, बदल लूगी। तुम्हारे लिए यह शर्त मामूली हो सकती है, मेरे लिए नही। तुम्हारे स्वस्थ रहने पर ही मेरा जीवन निर्भर करता है।"

उस दिन के बाद सचमुच ही कान्ता का दृष्टिकोण बदल गया। उसकी दृष्टि मे प्रमोद का स्वरूप ही नही, रूप भी परिवर्तित हो गया। अब तक वह प्रमोद को तटस्थ भाव से देखा करती थी। वह सोचती थी कि प्रमोद एक प्रखर धार है जो तेजी से बहता चला जा रहा है और वह स्वय कगार पर खडे किसी वृक्ष के ठूठ के समान है। अनायास ही पेड के नीचे भयकर भवर पैदा हो गया, जिसके आघात ने उस कगार को काटकर गिरा दिया।

चन्द महीनो मे कान्ता पूरी तरह स्वस्थ हो गयी। उसका वजन नौ पौंड बढ गया। उसके अग प्रत्यग की ताजगी लौट आई। कोई उसे देखकर कह नही सकता था कि वह एक बच्चे की मा है या उसकी शादी भी हो चुकी है। कान्ता के स्वास्थ्य मे अभूतपूर्व सुधार देखकर प्रमोद को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अब वह कान्ता को देखता तो नयी अनुभूति से सिहर उठता था। उसे अपनी आखो पर विश्वास नही होता था। इतना सौन्दर्य, ऐसी अनाखी छटा उसने किसी नारी मे नही देखी थी। कभी-कभी प्रमोद कान्ता के रूप माधुर्य को देखकर शकाग्रस्त हो जाया करता था। कही उसकी दृष्टि बदल तो नही गयी है। उसके मन मे कही कोई खोट तो नही है। क्या वह अमानत मे खयानत करना तो नही चाहता ।

किसकी अमानत है कान्ता ? क्या सुमन भाई की ? वह तो इसे वैधव्य का कलक देकर, कायर की तरह, सदा सर्वदा के लिए भाग खडे हुए। इस कलक ने कान्ता का कही का नही रखा। फिर क्या कान्ता नये सिरे से अपना जीवन सवार पाएगी ? आज कौन इसे ऐसा करने देगा ? पाच-साढे पाच वर्ष बीत गए लेकिन कान्ता के जीवन मे कोई नयी किरण फूटती नजर नही आई । वह स्वय भी तो कान्ता का आन्तरिक सौन्दर्य अब तक

देख नहीं पाया था। बाहरी सौंदय देखने की दृष्टि भी उसमे पैदा नही हुई थी। इतने वष बीत गए और वह अपनी ही धुन मे मस्त होकर चलता रहा। छाया के व्यवहार ने उसमे प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी थी। वह छाया की खोज-खबर भी नही ले सका। छाया न भी तो उसकी कोई खोज खबर नही ली। कहा होगी छाया ? क्या वह भी उसकी प्रतीक्षा मे बैठी होगी । बाट देख रही होगी ?

कान्ता की अस्वस्थता ने प्रमोद को मानसिक और शारीरिक दृष्टि से अत्यधिक व्यग्र बना दिया था। वह बिल्कुल ही भूल गया कि विजय ससद सदस्य बन चुका है। आज अचानक उसे धर्मेन्द्र की बात याद आई। धर्मेन्द्र ने उस दिन कहा था कि विश्वविद्यालय के समारोह मे उसकी भेंट विजय से हुई थी। उसे अचानक ख्याल आया कि क्यो न वह और विजय से मिलकर छाया की जानकारी हासिल करे।

धर्मेन्द्र की कोठी पर कोई बठक चल रही थी। कोठी के बाहर पच्चीस तीस मोटरगाडिया खडी थी। प्रमोद को ऐसी स्थिति मे भीतर जान म सकोच हुआ, लेकिन उसके मन की जिज्ञासा प्रबल हो उठी। इसलिए वह हिम्मत करके भीतर जा पहुचा। प्रमोद को देखते ही धर्मेन्द्र ने बडे तपाक से उसे बुलाकर अपने पास बिठाया और कहा

"बहुत अच्छे समय पर तुम भी आ गए। तुम थोडी सहायता कर दो तो हम लोगो का काम बन जाए।"

प्रमोद ने ऐसी दृष्टि से धर्मेन्द्र को देखा, जैसे वह पूछ रहा हो कि पहले समस्या तो बताइए। उसकी आखो का भाव पढता हुआ बोला, "शिव कपूर जी को तुम जानते ही हो। कितने पढे लिखे, प्रबुद्ध और उदार व्यक्ति हैं। इन्होने दिल्ली के समाज को सास्कृतिक दृष्टि से ही सम्पन्न नही बनाया, बल्कि स्कूल, कालेज और अस्पताल खोलकर यहा के नागरिको की अपूव सेवा की है। इस शहर म एक से एक बडे व्यापारी हैं, लेकिन इनके जसा परोपकारी, दानवीर और सास्कृतिक चेतना का धनी व्यक्ति शायद ही कोई हो। मरी यह बात मानते हो या नही ?

प्रमोद के मन म आया कि वह धर्मेन्द्र की बात मानने से इन्कार कर दे। वह जानता था कि शिव कपूर शहर अपना शौक पूरा करने क लिए

सतही किस्म के नाटक या तो खुद लिखते हैं, या ऐसे लोगों से लिखवाते हैं, जो गांठ के धनी हैं, लेकिन साहित्य और भाषा से जिनका दूर का भी रिश्ता नहीं है। इसी प्रकार के सतही नाटकों का मंचन करवाकर शिव कपूर साहब संस्कृति और साहित्य की कतई सेवा नहीं करते, बल्कि उन्होंने तो रंगमंच को अधिकारियों और मन्त्रियों से सम्पर्क स्थापित करने का एक साधन बना रखा है। फिर भी प्रमोद ने स्पष्टोक्ति से बचते हुए कहा, "मेरे मानने और न मानने से कुछ बनने बिगड़ने वाला नहीं है।"

"बनने वाला है, तभी तो कह रहा हूं। तुम पत्रकार हो। शायद तुम्हें पता होगा कि दिल्ली से राज्यसभा के लिए सदस्य नामित किया जाना है। यदि तुम दो तीन बार अपने लेखों में इस बात का जिक्र कर दो तो जनमत तैयार करने में बहुत बड़ी मदद मिल जाएगी।"

"जनमत तो तैयार ही है। यदि ऐसा नहीं होता तो यहां इतने लोग इकट्ठे क्या होते? हम लोग हजारों, लाखों के प्रतिनिधि के रूप में यहां क्या बैठे हैं।" प्रमोद ने उस ओर चौंककर देखा, जिधर से यह स्वर सुनाई पड़ा था। वक्ता महोदय को देखकर वह चौंक पड़ा। अचानक वह वक्ता महोदय को पहचान नहीं पाया था। उसने गौर से देखा, सिर पर कलफ लगी दप दप सफेद गांधी टोपी, लम्बा पतला, गौर वर्ण चेहरा, दुबली-पतली देह पर रेशम की शेरवानी और नीचे चूड़ीदार पाजामा पहने विश्वेश्वर नारायण सिंह बैठे थे। प्रमोद ने धर्मेन्द्र के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से पूछा, "ये नेताजी कौन हैं?"

"अरे, विश्वेश्वर बाबू को तुम नहीं जानते? तुम्हारे इलाके के मशहूर जमींदार हैं। स्वाधीन भारत की पहली संसद के सदस्य हैं।"

प्रमोद का मन खट्टा हो गया। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दिनों में यही विश्वेश्वर बाबू गांधी टोपी फेंककर काला बाजार के धन्धे में डूबे हुए थे। अब यह संसद सदस्य हो गए हैं। क्या ऐसे लोगों के हाथ में देश की बागडोर देने के लिए ही उसने या उस जैसे हजारों लोगों ने अपने जीवन की आहुति देने का संकल्प लिया था? अब तो विजय भी संसद सदस्य बन गया है, जो विजय उदार और संवेदनशील व्यक्ति तो था, लेकिन उसके दिल में देशभक्ति नाम की कोई चीज नहीं थी। प्रमोद को वहां बैठना नागवार

गुजरने लगा। उसने धीरे से पूछा, "मुझे विजय का पता चाहिए।"

"वह भी यहा आने वाला था, लेकिन लगता है किसी जरूरी काम मे जा फसा। वह एडवर्ड रोड पर रहता है। वहा टेलीफोन के पास टेलीफोन डाइरेक्टरी रखी है, शुरू मे ही उसका नाम पता लिखा है।"

टेलीफोन डाइरेक्टरी, कमरे के बाहर गलियारे मे, टेलीफोन के पास रखी थी। प्रमोद को उठ भागने का अच्छा बहाना मिल गया। उसने वहा से उठकर विजय का पता नोट कर लिया और फिर दुबारा भीतर की बैठक मे जाकर शामिल होने की बजाय बाहर सडक पर आकर बस स्टैण्ड की राह पकडी। उसके मस्तिष्क मे झझावात उठ खडा हुआ। उसने महसूस किया कि वह तिनके की नाईं उस झझावात मे स्वय झटके खाता फिर रहा है।

यह सब क्या हो गया। विश्वेश्वर और विजय जैसे लोग सत्ता सभालकर बैठ गए। रामानन्दन, कृष्ण जी और यदुवश जैसे स्वाधीनता के दीवानो की कही कोई पूछ नही। पुष्पा और उसके भोले भाले बाप ने क्या इसी दिन के लिए अपनी जान दे दी थी? यह सही है कि उन तमाम लाखो लोगो के हाथो मे, जो जेलो मे ठूस दिए गए थे, सत्ता की बागडोर नही सौंपी जा सकती थी, लेकिन यह विश्वेश्वर कौन है विजय? किस आधार पर ससद सदस्य बन गया है और अब शिवकपूर के लिए माग प्रशस्त किया जा रहा है । प्रमोद जितना ही इस प्रश्न पर विचार करता उतनी ही तीव्रता के साथ वह अपने ही मस्तिष्क मे उपजे झझावात के चक्रव्यूह मे धक्के खाने लग जाता था। इसी क्रम म कभी कभी उसे आशा की किरण नजर आ जाती थी, "गाधी की हमने हत्या कर डाली। गनीमत है कि अभी जवाहर लाल नेहरू मौजूद हैं और मौजूद हैं राजेन्द्र प्रसाद और मौलाना आजाद। उन्ह तो सोचना चाहिए, देखना चाहिए कि कौन योग्य है और कौन अयोग्य। कब तक सत्य की हत्या होती रहेगी? यदि इसी प्रकार अच्छे लोग सलीब खाते रहे तो यह देश विकसित और सम्पन्न होने की जगह श्मशान बनता चला जाएगा । जो लोग विदेशी हुकूमत के दिनो म साधन-सम्पन्न थे, उसी वर्ग के चतुर लोगों ने, स्वाधीन भारत की सत्ता को अपनी व्यूह रचना का शिकार बना लिया है। इसका नतीजा क्या होगा ? शिव कपूर

जैसे लखपती अब करोडपती, अरबपती, खरबपती बनते चले जाएगे। किन्तु, जो शोषित हैं दलित हैं, असहाय हैं और निरुपाय हैं, वे दिन-ब दिन दीन-हीन बनते चले जाएगे। यह तो उचित नही हुआ ।"

यही सब सोचता हुआ प्रमोद बवीसवे बस स्टाप पर उतर पडा। विजय का मकान ढूढते-ढूढते शाम हो गयी। भटकते भटकते वह हैदराबाद हाउस जा पहुचा था। वहा से पूछताछ करने पर उसे वापस आना पडा। अन्त में उसे विजय का मकान मिल गया। मकान के बाहर दोनो तरफ बरामदा था। दोनो बरामदे के बीच मे भीतर जाने का दरवाजा था। उस समय बाहर कोई नही था। प्रमोद ने दरवाजे के चौखट मे लगी घण्टी बजाई। कुछ समय बीत जाने के बाद भी किसीने आकर दरवाजा नही खोला। प्रमोद फिर घण्टी बजाकर पीछे सडक की ओर देखने लग गया। उस समय उसकी पीठ दरवाजे की तरफ थी। दरवाजे की चिटकनी खुलने की आवाज सुनकर वह मुडा ही था कि उसे सामने खडी नारीमूर्ति को देखकर साप सूघ गया। यह क्या जिसकी जानकारी लेने के लिए वह बेचैन हो उठा था, जिसकी कल्पना में वह साधक का सा जीवन व्यतीत करता हुआ वर्षों गुजार चुका था, जिसकी छवि ने उसके अब तक के कटकाकीण माग को भी आनन्द और आह्लाद स परिपूण कर रखा था, वही छवि उसके सामने खडी थी ।

सामने खडी नारीमूर्ति भी अचानक अपने सामने प्रमोद को देखकर विचलित हो उठी। उसकी आखें फटी की फटी रह गयी। क्षण भर के लिए उसका चेहरा सफेद पड गया। उसके मुह से शब्द ध्वनि बनकर फूट पडे

"तुम पर प्रमाद !"

कुछ देर तक दानों किंकर्तव्यविमूढ बने एक-दूसरे को देखत रह। प्रमाद ने देखा और पहचाना, वह नारीमूर्ति छाया ही थी। किन्तु अब उसकी छाया नही थी, इस छाया की माग मे सिन्दूर पडा हुआ था। विषम शान्ति को भग करती हुई छाया बोली, "भीतर आ जाओ। ड्राइग रूम मे बायी तरफ, तुम्हारे मित्र को अचानक आज पटने जाना पडा।"

छाया ने पीछे हटकर बायी ओर का ड्राइग रूम दिखला दिया। प्रमोद सिर झुकाए ड्राइग रूम मे जाकर दीवान पर बैठ गया।

वह सन्नाशून्य हो चुका था। जिस बात की कल्पना उसने स्वप्न मे भी

नही की थी, आखिर वही बात घटित हो गयी। जीवन-सघर्ष न उसे कही का नही रखा। होश आते ही वह जिस राह पर चल पडा था वह राह सघर्ष की थी । केवल सघर्ष की। क्या उसने उस राह पर चलते हुए कभी कुछ पाने की इच्छा रखी थी ? क्या वह कभी सोचता था कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद वह भी सुखी और सम्पन्न जीवन-यापन करने का अधिकारी बन जाएगा ? क्या वह चाहता था कि उस सघर्षपूर्ण राह पर छाया को भी घसीट ले चले ? यदि नही, तो अब वह दिग्भ्रमित क्या हो उठा है ? वह कौन सी वस्तु थी, जो उसके हाथो मे कभी थी और आज नही है ? वह तो हमेशा से रिक्त और मुक्त रहा है। यदि वह चाहता तो जेल से निकलते ही सत्ता की दौड मे आगे निकल सकता था। यदि वह चाहता तो उसके बाद भी छाया को अपने अक मे भरकर सुख और आनन्द की अनुभूति पा सकता था किन्तु उसने चाहा ही कब ? वह तो एक लडाई से दूसरी लडाई और दूसरी से तीसरी लडाई मे कूदता चला गया । वह लडाई क्या खत्म हो चुकी है ?

प्रमोद को होश आया तो उसने देखा कि ड्राइग रूम मे कोई नही था। छाया शायद उसके लिए चाय लेने चली गई थी। प्रमोद समझ गया कि अब जानने के लिए कुछ शेष नही है। वह चुपचाप ड्राइग रूम से निकल कर बाहर सडक पर आ गया। उसने मुडकर यह देखने की कोशिश तक नही की कि छाया चाय लेकर दरवाजे पर उसकी प्रतीक्षा तो नही कर रही है ? कारण अब उसकी छाया रह कहा गयी थी ? वह तो निस्सग हो चुका था। बाहर सडक पर पहुचते ही, न जाने क्यो वह बहुत अधिक बेचैन हो गया। लगा, जैसे उसके सम्पूर्ण शरीर के सभी अग, नसें, रक्त, मास, मज्जा मस्तिष्क म आकर एकत्रित हो गए हो जैसे गदन के नीचे के सभी अगो में लकवा मार गया हो और वह चल नही पा रहा हो। तभी उसने सुना कि पीछे से कोई उसे पुकार रहा है। वह उस पुकार से बचने के लिए अपने पावो को घसीटता हुआ तेजी से बायी ओर फुटपाथ पर भागने लगा। उस समय उसके मन में भय समा गया था। निस्सगता का भय, एकाकीपन और सन्नाटे का भय। पीछे से आनेवाली आवाज किसी भय का प्रतीक बनकर उसके कलेजे और मन मस्तिष्क को विदीर्ण करने लगी। इस असह्य पीडा से बचने के लिए वह, सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भागने लगा कि अचानक ही

दाहिनी ओर श्वीसवे की ओर से तेज रफ्तार मे आने वाली एक मोटर कार की चपेट मे आ गया। मोटर कार मे अचानक लगी ब्रेक की तेज आवाज मे उसकी सारी इद्रिया डूब गयी।

४०

कहा दद हो रहा है? कसे, कैसे हुआ यह सब? क्यो हुआ? बहुत बडी दुनिया थी उसकी। सामने थी पगडडिया, कच्ची-पक्की सडकें, खेत-खलिहान, गाव गुहाल, खेतिहर मजूर, भूखे किसान, अधनगे, पिलपिलाते, बुलबुलाते कीडे मकोडो जैसे अनगिनत अधमरे बच्चे। अपमानित देश के प्रताडित नौजवान, परवश प्रौढ, वृद्ध, विगलित, वदिनी माताए, बहनें।

कैसा अनाचार, कितना अयाय! मनुष्य की यह दशा? मनुष्यत्व का इतना पतन? मूल्यो का ऐसा ह्रास?

नही-नही। यह नियम नही है। धरती, हवा, जल, प्रकाश सबके लिए है, सबका है।

सबको जीने का समान अवसर मिले।

यही तो चाहता था विवेकानन्द। यही तो चाहती थी छाया। इसीलिए दोनो के मन मिल गये थे। दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाना चाहते थे, बन भी गय थे शायद।

विवेकानद ऐसा ही समझता था। यही समझकर चल रहा था, जी रहा था कि

मर गया वह विवेकानद सदा सवदा के लिए।

क्या से क्या हो गया? अब क्या होगा ? लेकिन *हुआ क्या?*

प्रमोद को लगा, जसे वह सपने देख रहा हो। जतना के डगमगाते पाव खेत की पगडडिया पर घिसटते जा रहे हैं। उसकी पत्नी सहारा देना चाहती है कि जनना उसे झटक देता है। बेचारी *भरराकर गिर पडती है।* जिरिया की छवि उभरती है। जतना अपन सिर को झटके देकर सामन से चली आ रही अनेक छवियो को देखने की कोशिश करता है। अचानक

शिवबदन की छवि को वह पहचान लेता है। शिवबदन की बाहें जिरिया के कंधे पर है। जतना वहीं खडा है। उसकी आखो मे खून उतर आता है। उसकी मुट्ठिया बद होकर हवा मे तन जाती हैं। उसके पाव धरती पर जम जाते हैं। वह छलाग मारना चाहता है कि

अरे बाप ! जमीदार साहब ! मालिक ! सरकार ! बाबू भुवनेश्वर सिंह की क्रूर आकृति को पहचानते ही जतना की आखें तनी हुई गरदन और कसी हुई मुट्ठिया निष्प्रभ, निस्पन्द शिथिल होकर चुक जाती है। जतना के पाव कापने लगते हैं। घुटने अपने आप मुड जाते हैं। उसका माथा जुते हुए खेत मे रगड खाने लगता है। जैसे पालतू कुत्ता मालिक को घर आया देखकर करता है। आदमी कैसा बन गया है। गुलाम, गुलाम से भी बदतर। इन्कलाब जिन्दाबाद !

असख्य अवरुद्ध कठो से निकला हुआ स्वर गूज उठता है।

भारत माता की जय।

दिगदिगन्त एकाकार हो जाते हैं अप्रतिहत प्रतिध्वनियो से ! महात्मा गाधी की जय !

सैकडा हजारा मुट्ठिया एकसाथ हवा मे उछलने लगती है। खेत-खलिहान के गर्द गुब्बार रक्त रजित होकर बवडर की तरह पूरे आकाश पर छा जाते है।

असख्य अजनबी सूरतें चारो ओर उभर आती हैं। सबकी मुट्ठिया कसी हुई हैं, जो हवा मे रह रहकर उछल पडती हैं। सबके चेहरे तमतमाए हुए है। सबकी आखो मे चिनगारिया फूट रही हैं। प्रमोद पहचानने की कोशिश करता है उन चेहरा को।

छाया, काता, पुष्पा, जतना—सब तो हैं। रामनन्दन भी है ! कृष्ण जी है, यदुवश है !

कहा कहा है ?"

प्रमोद के मुह से हलकी-सी कराह निकलती है।

'अस्पताल मे ठीक हो जाओगे।"

टूटता हुआ स्वर सुनाई पडता है प्रमोद को। वह ज्ञानेन्द्रियो से सुन पाता है। स्वर अवरुद्ध है किसी नारी का रोता हुआ स्वर। वह दिमाग

पर जोर डालता है।

किसका स्वर है ?

कौन रो रही है उसके लिए ?

उसका है ही कौन ?

प्रमोद की बोझिल पलकें हिलती हैं। पूरी तरह खुल नही पाती हैं। फिर भी वह देख पाता है ।

जानी पहचानी आकृतियां

पास ही साक्षात् साधना सी बैठी है माता। सूखा-सूखा उदास चेहरा। सूजी हुई गीली गीली आखें। एकटक उसे ही निहार रही हैं। उसकी पलकों का हिलना देखकर उस रूखे-सूखे चेहरे पर सरस आभा दमक उठती है। उसके खुले हाठो पर सरस मुस्कान खिल उठती है।

पाव के पास भी आकृति है स्थिर !

प्रमोद पहचान लेता है उस आकृति को भी !

धर्मेन्द्र मास्टर !

अब धर्मेन्द्र पसन्द नहीं करता कि कोई उसे मास्टर कहकर पुकारे। "नाउ वी आर फ्रेंड्स, अब हम मित्र हैं।" धर्मेन्द्र ने कहा था। प्रमोद को याद आता है।

धर्मेन्द्र लुच्चा है, धूर्त और चालबाज है। वह सभी दुर्गुणो की खान है।

फिर भी वह प्रमोद के पाव के पास बैठा है। क्या सचमुच ही मित्र नही है ? आदर्श च्युत मित्र !

मित्र तो विजय भी था। वह कहा है ?

कहा है उसकी छाया ?

प्रमोद अपनी आखें भीच लेता है। उसके शरीर के भीतर, बहुत भीतर तेज टीस उठती है। लगता है, कोई उसके कलेजे को पकडकर इतने जोर से खींच रहा है कि उसके कलेजे का रेशा रेशा निकल जाने वाला है। वह असह्य वेदना से चीख उठता है। किन्तु कोई आवाज मुह से निकलती नही है। केवल भृकुटिया, नासिका के दोनो ओर की पेशियां और होठ सिकुड जाते हैं।

प्रमोद की चेतना लौट आयी। उसे सब कुछ याद हो आया। याद

करने का कुछ शेष नही रहा। बायें हाथ, पजर और पाव मे बहुत दद हो रहा था। वह करवट नहीं ले सकता था। लेन की कोशिश की तो काता ने देह पर हाथ रखकर उसे एसा करने से रोक दिया। तब उसे मालूम हुआ कि वह करवट ले भी नही सकता था। उसकी छाती, बायी बाह और पाव पर प्लास्टर लगा हुआ था। सिर पर पट्टी बधी हुई थी।

प्रमोद मरकर ही बचा था। डाक्टरोको भी आशा नही थी। पूरे शरीर मे दस स्थलो पर हड्डिया टूट गयी थी। सिर फूट गया था, सो अलग। गनीमत थी कि सिर की चोट भीतरी नही थी। बाह का पूरा मास कटकर झूल गया था। जाघ की भी यही दशा थी। पाच पसलिया टूट गयी थी।

प्रमोद एक हफ्ते तक पूरी तरह बेहोश रहा। सातवें दिन उसे होश आया था। तब जाकर डाक्टरो ने उसे खतरे से बाहर घोषित किया। काता जी उठी। उसे तो विश्वास ही नही था कि प्रमोद जीवित रह सकेगा।

कसे जीवित रहेगा प्रमोद ? काता जानती थी कि वह कुलक्षणी है, डायन है हतभागिनी है। उसकी सास ठीक ही उसे बपखौकी कहा करती थी। उसन अपने पिता को ही नही, अपनी बेटी को, पति को भी खा लिया था। कैस जि दा रहेगा प्रमोद, जब काता जैसी प्रेतनी की छाया से वह ग्रस्त है।

अब काता को पहली बार लगा कि वह कुलक्षणी नही है। हतभागिनी भी नही है। प्रमोद इतनी भयकर दुघटना का शिकार होकर तो मर ही गया था। वह बच कैस सकता था ? दो मोटरगाडियो के बीच वह लगभग पिस गया था। दोनो गाडिया प्रमाद को बचान की काशिश म एक दूसरे पर जा चढी थी। प्रमोद की देह पर कई बार चक्के चढे और उतरे। फिर भी प्रमाद बच गया। ईश्वर की लीला।

काता ने अपने भाग्य को सराहा, जीवन मे पहली बार सराहा। सच तो प्रमोद उसीके भाग्य से, मौत के मुह से निकल आया। डाक्टरो ने कहा, "अब बिल्कुल ठीक हैं। हड्डिया ठीक बैठ गयी हैं। कई जगहो पर गहरे घाव लगे हैं कई जगहो पर हड्डिया टट गयी हैं। इसलिए, समय जरूर लगेगा। चार महीन तक बिस्तर पर रहना पडेगा।"

कोई बात नही। चार महीने क्या होते हैं ? चार साल भी प्रमोद

विस्तर पर पड़ा रहे, तो भी काता को चिन्ता नही है। वह तो जीवन-पयन्त प्रमोद की सेवा करके भी उऋण नही हो पाएगी। प्रमोद ने उसे भाग्यवती बना दिया है। प्रमोद ने उसके मनहूस जीवन में आनन्द की शीतल धारा बहा दी है। अब उसे कोई भी हतभागी नही कहेगा। माता जी भी नही।

प्रमोद पूरी तरह होश मे आते ही अपने पिता और माता को सामने देखकर आश्चयचकित रह गया। यह खेल धर्मेंद्र का था। राघव बाबू को खबर देने के पक्ष मे काता नहीं थी। वह प्रमोद से अनुमति लिए वगैर ऐसा कर भी नही सकती थी। फिर, उसे अपना भय भी तो था। विधवा होकर वह प्रमोद के साथ अकेली चली आयी थी। साथ रहने लगी थी। भला उसकी सास सत्यभामा इस जघन्य अपराध को, इस पाप को बर्दाश्त कैसे कर पाती ?

धर्मेंद्र ने समझाया, "बेटा मृत्यु के मुह से बच निकला। उनके भी तो अब एक ही बेटा है। वे लोग जब सारी स्थिति जान लेंगे तो उनकी खुशी का ठिकाना नही रहेगा। उन्हे स्वीकार करना पडेगा कि ईश्वर ने यह कृपा आपपर ही की है।"

'ऐसा वे नही सोचेंगी। उनके मन मे तो यह बात शूल बनकर बैठी होगी कि उनके बेटे को मैंने छीन लिया। नही, नही, आप उन्हें नही जानते। वे मुझे कभी माफ नही करेंगी।"

"काता जी, उनका वह बेटा तो उसी दिन चला गया, जिस दिन उसने आपको लेकर गाव छोड दिया। इस घटना के कई वष बीत गये। अब तो आप अपने हाथो से उन्हें उनका बेटा लौटा रही हैं। आप मा के मन से सारी स्थिति को देखिए। उन लोगो को यहा आने दीजिए। आपकी साधना व्यथ नहीं जाने पाएगी।"

यही सच हुआ। रेलवे स्टेशन से राघव बाबू और सत्यभामा देवी को लेकर धर्मेंद्र सीधे अस्पताल आया। सयोग से उस समय डाक्टर मौजूद था। पूरे शरीर पर प्लास्टर चढा देखकर सत्यभामा तो चिग्घाड मार कर पछाड खाने ही जा रही थी कि डाक्टर ने उसे पकड लिया। कहा

"माता जी, रोने का समय तो गुजर गया। इस समय आपको हसना

चाहिए, खुश होना चाहिए। अब आपका बेटा भला चगा है। भगवान का और काता जी को धयवाद दीजिए। भगवान की कृपा से और काता जी की साधना से आपके बेटे को दूसरा जन्म मिला है।"

सत्यभामा का रोना अचानक ही वन्द हो गया। उसने काता को देखा, जो सिर झुकाये चुपचाप सहमी-सी खडी थी। फिर उसकी नजर अपन बेटे पर पडी। प्रमोद मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। सत्यभामा धन्य हो गयी। वह अपने बेटे के पास जा पहुची। प्रमोद ने दाहिना हाथ बढाया। सत्यभामा उस हाथ को अपने कलेजे से लगाकर सिसकिया भरने लगी। उसकी आखो से आसू बरसने लगे।

राघव बाबू की आखें भी गीली हो आयी। वे अपलक होकर मा-बेट का मिलन देख रहे थे। पल मिनट मे बदलता रहा। कोई कुछ बोल नही रहा था। अन्त मे प्रमोद ने ही कहा

"काता, मा को तुमने प्रणाम नही किया? ऐसी भी क्या नाराजगी?"

अब जाकर काता को होश आया। सच ही तो, इतन साल बाद उसकी सास और ससुर उससे मिले हैं और उसने उन्ह प्रणाम तक नही किया। काता ने ससुर और सास के पाव छू लिए। प्रमोद ने कहा, "मा-बाबू जी थके हुए हैं। इन्हें घर ले जाओ। तब तक धर्मेन्द्र जी यहा रहगे।"

सत्यभामा ने अपने बेटे की बलैया ली। आहिस्ता-आहिस्ता अपनी उगलिया से बेटे के गाल, होठ और ठुड्डी को सहलाया। फिर चुपचाप काता का हाथ पकडकर वहा से चल पडी।

राघव बाबू अपने बेटे को अस्पताल से घर ले आकर ही निश्चिन्त नही हुए। उन्होंने दिल्ली मे रहकर देखा कि काता क्या है। उसकी सरलता और सादगी, उसकी सेवा और कर्तव्यपरायणता न सत्यभामा को भी अभिभूत कर दिया था। प्रमोद के गाव से चले आने के बाद सत्यभामा मान बैठी थी कि अब वह अपने बेटे को कभी देख नही पाएगी। कुछ दिनो तक तो वह क्रोध, घृणा और दुख के अतिरेक से विक्षिप्त बनी रही। धीरे धीरे क्रोध और घृणा के भाव सुप्त हो गये। शेष रह गया दुख, केवल दुख। उसे अब पछतावा होने लगा। अपने-आपपर खीझ होन लगी। उसका मन उसे धिक्कारने लगा।

सत्यभामा बिल्कुल बदल गयी थी। वह गुमसुम बैठी रहती थी। किसीसे बोलने-बतियाने तक का उसका जी नही करता था। बाहर के बरामदे पर घटा बैठी वह दूर सडक को, पगडडी को निहारा करती थी। जानती थी कि उधर से अब कोई भी आने वाला नही है। फिर भी वह रोज, नियम से, इसी मुद्रा म बैठी रहा करती थी।

तभी, वर्षों बाद उसकी आशा फलीभूत हुई। डाकिया ने उसी राह से आकर पत्र दिया।

सत्यभामा को राघव बाबू ने समझाया, "समय बदल गया है। हर किसीको जीने का समान अधिकार है। आखिर काता मे भी प्राण का सचार होता है। उसके शरीर के भीतर भी आत्मा है, भावनाए हैं, इच्छाए है। शुचिता प्रेम से पैदा होती है, बधन, नियम से नही। देखती नही हो, काता किस तरह प्रमाद के जीवन म घुल मिल गयी है। उसे अब अलग कर देना क्या हम लोगो के बूते मे है? और अलग करें ही क्यो? प्रमोद को अपनाना चाहती हो तो काता से अलग करके उसे अपना नही पाओगी।"

सत्यभामा न इतना ही कहा, "जिस तरह इन्हे सुख मिले, उसी तरह रहे। मैं क्यो अलग करना चाहूगी।"

प्रमोद चलने फिरने के योग्य हो गया तो अति सक्षिप्त समारोह करके राघव बाबू ने उसका विवाह काता से करा दिया। धर्मेन्द्र न कन्यादान की रस्म अदा की। काता के भाग्य से उसकी छोटी सी गहस्थी खिलखिला उठी।

४१

मोटर कार तेजी के साथ चली जाती हुई राजेन्द्र प्रसाद रोड और जनपथ की चौमुहानी पर बायी ओर मुडी ही थी कि रश्मि ने तेज स्वर मे कहा, "सीधे चलो, विण्डसर प्लेस से बायी ओर अशोक रोड की तरफ ले लेना। पार्लियामेण्ट स्ट्रीट थाने पर पहुचना है।"

गाडी म अचानक ब्रेक लगी। चारा चक्के चिचियाते हुए एक व एक

रुक गए। प्रमोद जी के मन को झटका लगा। उन्होने चौंककर सामने देखा। वे पहचान नही पाए कि कहा आ पहुचे । बायी ओर नजर पडते ही व कठोर यथाथ से टकरा गए। रश्मि पर नजर पडते ही वे समझ गए कि यह समय सन् १९५३ ५४ नही, बल्कि सन् ७८ का है। अतीत की यत्रणा दायक अनुस्मृति का एहसास होते ही प्रमोद जी ने हतप्रभ रश्मि की ओर देखा। उनकी आखो की भयकर पीडा पसीजकर छलछला आयी थी । क्या अमिताभ और रश्मि का जीवन मात्र एक पुनरावत्ति तो नही है ? यदि ऐसा हुआ तो ? प्रमोद जी के मन में प्रश्न उठा। कान्ता उसके मानस मे उभरकर होशियार करती सी लगी, "यदि अमिताभ भी तुम्हारे ही चरण चिह्नो पर चलने लगा तो मैं जहर खा लूगी ।" प्रमोद जी न अपने सिर को जोर का झटका दिया, जैसे वे अतीत से पूरी तरह मुक्त होकर वतमान और भविष्य को पहचानने की कोशिश करना चाहते थे। मोटर गाडी दाहिनी ओर मुडकर विण्डसर प्लेस की ओर चल पडी थी।

सडक के दोना ओर का सन्नाटा लैम्प पोस्ट से आने वाली रोशनी म डूबा हुआ था। फुटपाथ खाली था। बायी ओर के पेट्रोल पम्प पर एक फिएट कार खडी थी, जिसम पेट्रोल डाला जा रहा था। प्रमोद जी ने फिर रश्मि की ओर देखा। उस समय रश्मि की नजर भी उन्हीकी ओर लगी थी। दोनो की आखें मिली। रश्मि ने हसकर कहा

"आप तो पूरी राह सोते आए। थक गए थे शायद ?"

"ऐं । नहो नही थोडी झपकी लग गयी थी।"

"मा का कहना है कि आपका पूरा जीवन सघष का जीवन रहा है। किसीके सामने आपने कभी झुकना नही सीखा।"

"ऐसी बात नही है, कई बार तो झुक्ते झुक्ते टूटकर बिखर जाना पडा है। झुका भी हू, झुकना पडा है। पुकर अलग हो जाने म भी एक खूब सूरती है। बेशक, तब अपनी राह आप बनानी पडती है और ऊबड-खाबड झाड यखाड से भरी राह को पार कर पाना आसान नही होता। ऐसी राह पर चल निकलने का अथ ही है झुककर अलग हो जाना।"

'एसी ही अजीबो गरीब उखडी उखडी बातें अमिताभ भी करता है। ठीक आपका मन उसने भी पाया है। उसे देखकर तो कभी कभी बडी खीझ

आती है ।" रश्मि ने ऊचे स्वर मे कहा। वह बहुत तेजी से बोल रही थी और उसके स्वर मे खीझ की जगह आत्मविश्वास प्रकट हो रहा था। प्रमोद जी ने सोचा, अमिताभ ने यदि उसका मन पाया है, तो रश्मि ने अपनी मा छाया का मन पाया होगा। ऐसी स्थिति म दोनो का भविष्य भी क्या वही रूप लेगा, जिस रूप ने राहु की तरह उसके अपने जीवन को लगभग ग्रसित ही कर लिया था। यह तो खैरियत हुई कि का ता न उसे थाम लिया। यदि का ता नही होती, तो आज वह रश्मि की बगल मे बैठा नही होता ।

पार्लियामेण्ट स्ट्रीट के थाने मे, मेज के पास कुर्सी पर बैठा हुआ पुलिस अधिकारी ऊघ रहा था। मेज के पास रखी हुई बेंच पर एक सिपाही बेंच की पीठिका के सहारे खर्राटे भर रहा था। प्रमोद जी और रश्मि की आहट पाकर तुर त वे दोना जाग उठे। पुलिस अधिकारी ने प्रश्नसूचन नजरा से प्रमोद जी की ओर देखा और फिर उसने रश्मि पर निरीक्षणात्मक दृष्टि डाली। कोई बिलकुल ही नया व्यक्ति पुलिस अधिकारी के रूप म नियुक्त किया गया था। इसीलिए वह प्रमोद जी को पहचान नही सका। शहर मे शायद ही ऐसा कोई थाना हो, जिसमे प्रमोद जी बारी-बारी से चार-आठ घण्टे के लिए ब द न हुए हो। प्रमोद जी ने पुलिस अधिकारी से विनम्रता पूवक पूछा

"अमिताभ क्या यही ब द है ? मैं उसका पिता हू।"

"जी हा। लेकिन, उ हे अभी छोडा नही जा सकता । आप लोग बैठिए। अमिताभ जी से मुलाकात करवा सकता हू।"

"क्या जमानत पर भी नही छोडा जा सकता ?" इस बार रश्मि ने प्रश्न किया। थानदार ने घूरकर रश्मि की तरफ देखा, जैसे वह कहना चाहता हो कि आपकी जमानत से काम नही चलने वाला है। लेकिन वह प्रकट मे हसता हुआ बोला

"आजकल जमानत तो हत्यारा को भी मिल जाती है। अमिताभ जी ता प्रदशन करने और ड्यूटी पर तैनात सरकारी कमचारी के विरुद्ध बलवा करने के जुम मे ब द किए गए हैं।"

"क्या अमिताभ न हिंसात्मक प्रदशन किया ?" प्रमोद जी ने चिंतित होकर पूछा। थानदार न मुस्कराकर उत्तर दिया,' ऐसा ही समझ लीजिए।'

'ऐसा क्या समझ लिया जाए ?" रश्मि ने तमककर प्रतिवाद किया। "यह बिल्कुल गलत आरोप है। पुलिस ने अकारण ही लाठी बरसाना शुरू कर दिया था, क्योंकि फुटपाथ पर खड़े लोगों में से किसी ने पुलिस पर दो तीन पत्थर फेंक दिए थे या पत्थर फिंकवाए गए थे। पुलिस की लाठी से एक छात्रा घायल होकर सड़क पर गिर पड़ी, जिसे बचाने के लिए अमिताभ ने पुलिस की लाठी पकड़ ली। अमिताभ ने लाठी का अतिम सिरा नहीं पकड़ लिया होता तो उसका भरपूर प्रहार छात्रा के सिर पर पड़ा होता।"

पुलिस अधिकारी ने अथपूर्ण दृष्टि से रश्मि की ओर देखा और कहा "लगता है, आप भी प्रदशनकारियों में शामिल थीं ?"

'जी हां। बाजार में कोयला नहीं है, चीनी नहीं है। सीमेण्ट-लोहा अन्तरिक्ष यान पर लदकर चांद पर जा पहुंचा। ऐसी हालत में प्रशासन को जगाए रखने का और तरीका ही क्या है? पिछले दिनों दिल्ली के कई उपनगरों में भयंकर बाढ़ आ गयी और सरकार के नेता और अधिकारी कान में तेल डाल पड़े रहे। क्या किया उन्होंने? केवल रेडियो और टेलीविजन से भाषण देते रहे कि जनता अमुक-अमुक उपनगरों से निकलकर कहीं दूर चली जाए। जनता ने अपना अधिकार आप लोगों को सौंप दिया है ताकि आप उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी ले सकें।

"लेकिन अकेली सरकार या सरकारी तंत्र क्या कर सकता है? आखिर जनता की भी कुछ जिम्मेदारी होती है। जनता सहयोग न दे, बल्कि इसके विपरीत, कदम-कदम पर अवरोध उत्पन्न करे, तो क्या होगा? जनता भी तो व्यवस्था का एक अंग है।"

"क्या वे खुद पावर हाउस चलाएं, पानी की टंकी भरें और कोयला खदानों से निकालकर यहां ले आएं? आखिर इन कार्यों के लिए इतने संगठन क्यों बने हुए हैं?" रश्मि ने खीझकर पूछा।

"इन संगठनों के कर्मचारियों को हड़ताल या घेराव करने की प्रेरणा भी तो आप लोग ही देते हैं।"

इन कर्मचारियों को व्यवस्था आदमी नहीं समझती। सरकार उनकी उचित मांगों पर ध्यान नहीं देती। ये कर्मचारी न्याय चाहते हैं, और जब उन्हें न्याय नहीं मिलता तब वे ऊबकर हड़ताल या प्रदर्शन करते हैं।"

"जो भी हो, जनता को कानून अपने हाथ मे लेने का अधिकार नही है। प्रमोद जी ने कानून अपने हाथ में लेने की कोशिश की। उन्होन ड्यूटी पर तैनात पुलिस अधिकारी पर लाठी का वार किया। उस समय के चित्र हमारे पास मौजूद हैं। उन्हें अभी न्यायिक हिरासत मे कुछ दिनो तक रखने का आदेश दिया गया है। छह दिन बाद गणतन्त्र दिवस आने वाला है। उसके बाद ही प्रमोद जी और इनके जैसे लोगो को रिहा किया जा सकेगा।"

"तो असली कारण यह है। चेतन और प्रबुद्ध नौजवानो को सीखचो मे बन्द करके सरकारी नेता गणतन्त्र दिवस मनाएगे। तथाकथित स्वाधीनता का उपभोग करने वाले सत्ता लोलुप नेता मरघट की शान्ति स्थापित करना चाहते ।" रश्मि का मुखमडल सात्विक क्रोध से तमतमा गया।

"आप लाग जो समझिए ।" थानेदार निरुत्तर हाकर बोला और सामने रखे कागज पर लकीरें खीचने लगा। प्रमोद जी अब तक रश्मि और थानेदार के बीच चल रहे कथोपकथन को चुपचाप सुन रहे थे। अन्त मे उन्होने थानेदार से कहा, "अमिताभ से हम लोग मुलाकात तो कर ही सकते हैं।"

"जी हा, मेरे साथ चलिए।"

प्रमोद जी उठ खडे हुए। थानदार अपनी दोनो हथेलियो से मेज का सहारा लेता हुआ उठा, लेकिन रश्मि ज्यो की त्यो बैठी रही। प्रमोद जी ने रश्मि की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा, "तुम नही मिलोगी ?"

"आप चलिए, मैं फोन करके आती हू।" प्रमोद जी समझ गए कि रश्मि किसे फोन करेगी। वे मुस्कराते हुए चुपचाप थानेदार के पीछे हो लिए।

लगभग दस मिनट बाद, मेज के पास बेंच पर बैठा सिपाही दौडता हुआ गया और पुलिस अधिकारी को वापस बुला लाया।

पुलिस अधिकारी तेज कदमा से चलता हुआ फोन के पास आ पहुचा। चोगा मेज पर रखा हुआ था। सिपाही ने बता दिया था कि दूसरी तरफ फोन पर मन्त्री जी हैं। चागा कान से लगाते ही पुलिस अधिकारी को आदेश मिला, "अमिताभ को रिहा कर दो। मैं बोल रहा हू।"

"जी ।" कहकर थानदार ने चोगा रख दिया। उसकी आकृति

बदल गयी। अब वह पुलिस अधिकारी की तरह नही, एक घरलू नौकरकी तरह रश्मि के साथ व्यवहार करता हुआ बोला।

"आपने पहले क्यो नही बताया ? बैठिए न ! आप खडी क्या हैं ? मैं अभी अमिताभ जी को लिए आता हू।"

पुलिस अधिकारी हवालात की ओर बढने को हुआ कि दुबारा फोन की घण्टी टनटना उठी। पुलिस अधिकारी ने ज्यो ही चोगा उठाकर कान से लगाया त्यो ही वह घबराकर सावधान की मुद्रा मे खडा हो गया। उसके चेहरे पर घबराहट छा गयी। वह बडी कठिनाई से टूटे फूटे स्वर मे बोल पाया, "जी सर मन्त्री जी फो फो फोन यहा भी आया था सर जी सर।"

तब तक प्रमोद जी वहा आ पहुचे थे। उनके चेहरे पर निश्चितता और आत्मसन्तोष की आभा थिरक रही थी। उन्हें देखते ही पुलिस अधिकारी ने बडे सम्मान के साथ कहा, "आप बैठिए । यहा बैठिए जनाब । आप लोगो के लिए चाय मगवाऊ ?"

' नही, इसकी कोई जरूरत नही है। अब हम लोग चलेंगे।" प्रमोद जी न रश्मि की ओर देखते हुए कहा। थानेदार ऐसे चौंक पडा, जैसे उस बिच्छू न डक मार दिया हो। वह घबराकर बोल उठा

'जी नही । जी हा हा जरूर जाइए। लेकिन अमिताभ जी को भी साथ लेते जाइए । जी हा, ऊपर से आदेश आ गया है।"

पुलिस अधिकारी उत्तर की प्रतीक्षा किए बगैर तेज कदमो से हवालात की ओर चला गया। प्रमोद जी न अवाक होकर रश्मि की ओर देखा। रश्मि न आखें झुका ली। प्रमोद जी को समझते देर नही लगी कि अपराधी अमिताभ को हवालात से मुक्त कराने का चमत्कार किसन किया है। वे आश्वस्त होकर बैठने ही जा रहे थे तभी अमिताभ की तेज और बलाग आवाज सुनकर बैठते-बठने खडे हो गए।

' तुमने पैरवी क्यों की रश्मि ? मुझे तुम्हारी ऐसी सहानुभूति नही चाहिए।

"मैंने कोई परवी नही की है। इतना ही कहा है कि झूठे आरोप लगा कर मुकदमा चलाए बगैर किसीको हफ्ते हफ्ते हवालात म बन्द कर रखना

कहा का न्याय है ? इसको तुम पैरवी कहते हो ?" रश्मि ने भी तेज स्वर मे प्रतिवाद किया। अमिताभ का स्वर अधिक तेज हो गया

"मुझे घर नही जाना है। यही, थाने के बाहर धरना दूगा, जब तक मेरे सभी साथी रिहा नही कर दिए जाते जब तक मैं यही बैठा रहूगा।"

"उन लोगो को भी छोडा जा रहा है। सबको छोड देने का आदेश मिला है ।" पुलिस अधिकारी ने वहा पहुचकर कहा। सचमुच अमिताभ के आठ और साथी तब तक वहा आ पहुचे थे। सबने एक दूसरे की ओर देखा। आखो आखो मे ही प्रश्नोत्तर हुए। अचानक सबकी नजर रश्मि की ओर जाकर स्थिर हो गयी। रश्मि ने आखें झुका ली। सब लोग ठठाकर हस पडे। उनमे से एक हसते हुए बोला, "चाचा जी नही होते, तो शायद हमलोग एक गाडी मे अभी जाते। लेकिन अब तो हम लोगो को चरणदास का सहारा ही ।"

"नही, नही, पुलिस वान आप लोगो को घर तक छोड आएगी ।" पुलिस अधिकारी ने कहा।

अमिताभ अगली सीट पर ड्राइवर की बगल म बैठ गया। गाडी पार्लियामेण्ट की तरफ चल पडी। रफी माग की चौमुहानी से राजेन्द्र प्रसाद रोड की ओर गाडी के मुडते ही रश्मि चीख-सी पडी, "पहले चाचा जी और अमिताभ को उनके घर पहुचा दो।'

"नही, नही, तुम अपने घर उतर जाओ। ड्राइवर हम लोगा को पहुचाकर गाडी ले आएगा।" अमिताभ ने छूटते ही कहा। बेचारा ड्राइवर रायसीना रोड पर गाडी रोककर असमजस मे पडा रहा। रश्मि ड्राइवर पर बरस पडी, "मेरी बात क्यो नही सुनते ? दाहिने मुडो और सुनहरी बाग से तुगलक रोड की ओर ले लो।' तभी अमिताभ ने ऊचे स्वर म कहा, "जिद् करोगी रश्मि, तो हम लोग यही उतर जाएगे।"

"तो उतर जाओ न। रोकता कौन है ? मैं बाबूजी को उनके घर तक छोड आती हू। तुम यहा से पैदल जाओ। आई डोण्ट केयर मुझे परवाह नही है।"

प्रमोद बाबू चुपचाप बैठे बच्चा के बीच चल रही नोक झोक का आनन्द ले रहे थे। उन्हें यह बात बहुत अच्छी लगी कि उनका बेटा अमिताभ रश्मि

की सुख सुविधा की इतनी चिन्ता करता है। इससे भी अधिक सन्तोष इस बात से हुआ कि रश्मि अमिताभ को सही सलामत काका के पास पहुचा आना चाहती है।

ड्राइवर इजन को स्टाट रखकर निश्चित बैठा था। रश्मि दरवाजा खोलकर गाडी का चक्कर काटती हुई ड्राइवर के पास जा पहुची और बोली, "यदि तुम गाडी नही चला सकते, तो नीचे उतरो। मैं अकेली गाडी चलाकर चाचा जी को पहुचा आती हू। तुम अमिताभ साहब के साथ यही ठहरो। चलो उतरो।"

ड्राइवर दरवाजा खोलकर बेमन से उतरने ही जा रहा था कि अमिताभ ने हसते हुए कहा, "अच्छा भाई, मैं हार मान गया। पीछे आकर अपनी जगह पर बैठ जाओ। मैं दुधमुहा बच्चा हू। मुझे सही-सलामत घर पहुचा आओ।"

"दुधमुही बच्ची तो मैं हू तुम नही। तुम तो नेता हो महान नेता।' यह कहकर रश्मि पाव पटकती हुई आकर पिछली सीट पर बैठ गयी। उसने जोर से दरवाजा बन्द किया और गाडी सुनहरी बाग माग की तरफ चल पडी। प्रमोद बाबू फिर अतीत मे खो गये ।

४२

अनायास ही सारी स्थिति बदल गयी। वर्षो तक प्रमाद बाबू ने फिर विजय के घर की ओर रुख नही किया। समय और सयोग ने दोनो के बीच जो खाई पदा कर दी थी वह दिनों दिन गहरी और चौडी होती चली गयी। सचाई तो यह है कि आरम्भ से ही विजय की राह बिल्कुल भिन्न थी, लेकिन प्रमोद बाबू ने स्वप्न मे भी नही सोचा था कि विजय की मजिल वह होगी जिसे पाने के लिए वह और उसके जैसे असख्य लाग जीवनपयन्त कुर्बानी देते आ रहे थे। तो क्या सत्य की विजय इसी प्रकार होती है ? क्या यही सघष की परिणति है या एसा है कि किसी किसीका जीवन मात्र सघष के लिए ही स्वरूप ग्रहण करता है ?

प्रमोद बाबू ने एक स्वप्न को साकार करने के निमित्त अपना जीवन अर्पित कर दिया। किन्तु, यह मानने को वे कतई तैयार नही थे कि दिल्ली मे जो नयी तस्वीर बन रही थी, वह उनके स्वप्न के अनुरूप थी।

उन्हे मालूम हो चुका था कि रामनन्दन फरारी अवस्था मे ही पुलिस की गोली खाकर भारत मा की बलिवेदी पर शहीद हो चुका था। रामनन्दन विवाहित था। प्रमोद बाबू को मालूम नही हो सका कि उसकी विधवा पत्नी का जीवन निर्वाह किस प्रकार हो रहा है। बहुत दिनो बाद वे जान पाये कि रामनन्दन की विधवा पत्नी अडोस-पडोस मे मेहनत मजदूरी करके किसी कदर अपना और अपनी इकलौती बेटी का पालन पोषण कर सकी। कृष्ण जी और यदुवश फिर से स्कूल मे दाखिल हो गये थे और बाद मे चलकर कृष्ण जी एक हाई स्कूल मे शिक्षक हो गये और यदुवश देवघर के पास एक महाविद्यालय मे प्राध्यापक बन गये।

जाहिर है कि ऐसी स्थिति की कल्पना प्रमोद बाबू ने कभी नही की थी। जिस विजय का जीवन ऐश मौज म बीता, जिसके हृदय म दलितो, शोषितो और पीडितो के प्रति कभी सहानुभूति तक नही उपजी थी और जो विश्वेश्वर सिंह स्वाधीनता आन्दोलन के दिनो मे कालाबाजारी के धधे मे आकठ डूबे रहे, आज वही विजय और विश्वेश्वर सिंह अब स्वाधीन भारत मे सत्ता के हिस्सेदार बन बैठे थे। यह स्वप्न अथवा तस्वीर भला प्रमोद सरीखे सघर्षशील व्यक्ति की हो कैसे सकती थी।

प्रमोद बाबू बहुत दिनो तक शरणार्थियो की समस्याओ के समाधान मे लगे रहे। साथ ही, वे जीवन निर्वाह के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ के अशकालिक सवाददाता का काम भी करते रहे। राष्ट्र निर्माण और विकास का काय आरम्भ होते ही नयी-नयी समस्याए पैदा होने लगीं। गावों से निकलने वाली राह शहर अथवा औद्योगिक स्थलो की ओर मुड चली। निर्माण और विकास के साथ-साथ विषमता की खाई भी गहरी और चौडी होने लगी। सगठित श्रमिक वर्ग प्रदर्शनो, आन्दोलनों और हडतालों के जरिये अपनी न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति की माग के लिए आक्रोश को अभिव्यक्ति देने लगे। प्रमोद बाबू [illegible] इन प्रदर्शनो म हिस्सा लेने लगे।

विजय जमींदार घराने का व्यक्ति था। स्वाधीनता आन्दोलन के अंतिम चरण में, दूरदर्शी जमींदार, सामन्त और पूंजीपति आगे बढ़ चढ़कर हिस्सा लेने लगे थे। प्रदेश के बड़े-बड़े नेता विजय के परिवार से परिचित थे। इन लोगों की सहायता पाकर विजय संसदीय सचिव के पद से बढ़ते बढ़ते मन्त्री के पद पर जा पहुंचा।

प्रमोद बाबू और विजय एक-दूसरे के विरुद्ध समानान्तर मार्ग पर आगे बढ़ते रहे। प्रमोद बाबू की गतिविधियों से विजय अनभिज्ञ और अनजान नहीं था। वह सोचता था कि प्रमोद निराशा, कुंठा और हीन भावना का शिकार बन गया है। विफलताओं ने उसमें आक्रोश और प्रतिहिंसा पैदा कर दी है। इसीलिए वह ख्वाहमखाह सरकार के विरुद्ध, विशेषकर उसके विरुद्ध, मौके-बेमौके आन्दोलन अथवा प्रदर्शन करने की कोशिश में लगा रहता है।

एक पत्रकार के नाते प्रमोद यदि विजय के मन्त्रालय अथवा अन्य विभाग की कोई आलोचना लिखता तो विजय अपनी पत्नी छाया के समक्ष खीझ प्रकट करते हुए कहता

"इसको कहते हैं मजबूरी का नाम महात्मा गांधी। जो जीवन भर तोड़ फोड़ के काम में लगा रहेगा उसे क्या पता कि रचनात्मक काम किसे कहते हैं। हूह अपने-आपको क्रान्तिकारी समझता है। कहता है अपने आपको किसान का बेटा, लेकिन उसे यह भी नहीं मालूम कि मेड किसे कहते हैं। बूढ़े मां-बाप के प्रति अपने कर्तव्य का अनुभव तो कर नहीं सका और चला है देश का दुःख दूर करने। यह भी कोई तरीका है? मन्त्रियों को, खासकर मुझे गालियां लिखता फिरता है। लिखता है कि मैं सोफे पर बैठता हूं। मेरे घर में रेशमी पर्दे लगे हुए हैं। वातानुकूलित कमरे में बैठकर गरीब देश के भाग्य को संवारने का स्वप्न देखा करता हूं। फ्रस्ट्रेटेड मन कुंठित व्यक्ति न जाने अपने आपको क्या समझता है?"

शुरू शुरू में छाया जवाब दे दिया करती थी

कुढ़ते क्यों रहते हो? बात तो सही लिखते हैं। आखिर क्या करते रहते हो तुम लोग? देश से अधिक तुम्हें अपनी कुर्सी की चिन्ता सताती रहती है। तुम लोगों के पास समय ही नहीं कि देश के कल्याण की बात

सोच सको।"

"तुम तो कहोगी ही। तुम्हारी नजर मे प्रमाद इस देश का सबसे बडा क्रातिकारी और त्यागी पुरुष है।"

"बेशक, प्रमोद बाबू क्रातिकारी और त्यागी पुरुष है। उन्हें सत्ता का लोभ झुका नही सका। यदि वे चाहते तो तुम्हारे ही इलाके मे तुम्हे शिकस्त दे सकते थे।"

"वह क्या खाकर मुझे शिकस्त देगा। चुनाव जीतने के लिए त्याग, तपस्या या व्यक्तित्व और प्रतिभा काम नही आती। इसके लिए चाहिए साधन पैसा, बुद्धि और कौशल।"

"ठीक कहते हो, पैसा और छल प्रपच मे प्रमोद बाबू तुम्हे मात नही दे सकते, तभी तो प्रजातत्र की पद्धति पर से लोगो की आस्था उठती जा रही है।'

धीरे धीरे विजय का आक्रोश घृणा मे परिवर्तित होता गया। छाया ने महसूस किया कि उसका पति शकालु बन गया है। वह प्रमोद के नाम तक से चिढने लगा। प्रमोद के सन्दभ मे नोक झोक धीरे धीरे अप्रिय रूप धारण करने लगी। विजय क्रोध मे आकर गालिया निकालने लगा। जब इससे भी उसे सतोष नही हुआ तब वह घर से बाहर भागने लगा। सत्ता ने उसे मदोन्मत्त बना दिया था। वह सोचने लग गया था कि ईश्वर ने ही उसे विशेष दर्जा दे रखा है, इसलिए हर कोई उसके सामने झुककर विनम्रतापूवक बात करे, उसका आज्ञाकारी बनकर रहे और किसी भी स्थिति म उसका विरोध न करे। वह मान बैठा था कि सत्तासम्पन्न व्यक्ति ही इस मृत्युलोक मे पूजनीय है। उसी सत्ता का सवदा अभिन्न अग बना रहन के लिए सगठन के भीतर दल और दल के भीतर गुट बनाने की कला मे विजय निष्णात हो गया। उसे इस तथाकथित सत्य की अनुभूति हो चुकी थी कि पैसा के सहारे सत्ता ही नही, सभी सासारिक सुखो को सुलभ बनाया जा सकता है।

कुछ ही रोज मे विजय और रामनारायण दिल्ली के राजनीतिक क्षेत्र म विख्यात (या कुख्यात) हो गये। रामनारायण ने तो खुलआम लडकियो को अपना निजी सचिव या उपपत्नी बनाकर घर में रखना शुरू कर दिया

था। विजय ऐसा नही कर सका, क्योकि कही न कही वह अपनी पत्नी छाया की तेजस्विता से भय खाता था। भय मनुष्य को असन्तुलित और कृत्रिम बना देता है। भय सत्य का शत्रु है। झूठी जिन्दगी का रस लेने के लिए विजय घर से बाहर रास रग मे समय व्यतीत करने लगा।

छाया से यह बात छिपी नही रह सकी। किन्तु, उसने पति के सुख मौज मे दखल देना उचित नही समझा। उसने सोचा, मनुष्योचित सम्बन्ध तो मन का मन से होता है। तन का तन से सम्बन्ध मनुष्य को पशु बना देता है। उसके भाग्य मे विजय से जितना कुछ पाना था, वह पा चुकी है। अधिक पाने की इच्छा मात्र इच्छा या वासना ही होगी। अब विजय का मन उसमे नही है, उसे वह बरबस बाध रखने का प्रयत्न क्या करे ? छाया धीरे-धीरे अन्तर्मुखी बन गयी।

रश्मि नये युग की सन्तान थी। उसका जन्म अधिकार-चेतना के युग मे हुआ था। प्राय बेटियो की कल्पना मे पिता की छवि नायक जैसी होती है। बेटे मा के समर्थक हुआ करते है और बेटिया पिता की। किन्तु, रश्मि की कल्पना मे पिता की छवि नायक के रूप म उभर नही पायी, बल्कि वह छवि उभरने से पहले ही धूमिल पड गयी। वह अपने पिता को पिता के रूप मे देखने समझने का अवसर तक नही पा सकी।

विजय सुबह से रात देर गये तक अधिकारियो, कार्यकर्त्ताओ, नेताओ और सेठ साहूकारो से मिलने मे व्यस्त रहता था। रात का भोजन भी प्राय बाहर ही करता था। उसे न तो अपनी पत्नी के पास बैठने की फुर्सत मिलती, न रश्मि से बात करने का समय। अपनी मा के प्रति पिता का रूखा व्यवहार उसे सह्य नही हुआ। वह अपनी मा के भीतर छिपी हुई तटस्थ, अनासक्त भावना का प्रतीक बन गयी।

अमिताभ से रश्मि की जान पहचान सरदार पटेल स्कूल मे ही हो गयी थी। अमिताभ उससे दो श्रेणी ऊपर की कक्षा मे पढता था। तभी से वह अमिताभ के घर आन जाने लगी थी।

कुछ ही दिना बाद अमिताभ भी रश्मि के यहा आने जाने लगा था। कुछ दिना बाद छाया को इस बात की जानकारी मिल चुकी थी कि अमिताभ कौन है ? यह जानकारी उसे अमिताभ से बातचीत के दौरान ही

मिल सकी थी। किन्तु इस सत्य को जान बूझकर उसने अपने पिता से छिपाये रखा था। अमिताभ और रश्मि को भी पता नहीं चल सका कि दोनों के पिता एक दूसरे को बचपन से जानते-पहचानते हैं। छाया को मन ही मन यह जानकर सुख मिला कि अमिताभ उसके विवेका जी का पुत्र है।

रश्मि कभी-कभी कौतूहल मे पड जाती थी कि उसके पिता प्रमोद बाबू की चर्चा चलने पर व्यग्यबाण क्यो छोडने लगते हैं। वह अपना यह कौतूहल कई बार अमिताभ के सामने प्रकट कर दिया करती थी। अमिताभ लापरवाही से उत्तर दे देता, "तुम्हारे पिता सरकार के मंत्री हैं, और मेरे पिता जागरुक पत्रकार, मामूली कार्यकर्त्ता, दलितो के रहनुमा। दोनों मे विरोध लाजिमी है।" बहुत दिनो तक हकीकत छिपी नही रह सकी। अमिताभ बीच बीच मे रश्मि के यहा आता ही रहता था और तब उसकी भेंट विजय से भी हो जाया करती थी। बातचीत मे प्रमोद बाबू की चर्चा स्वाभाविक रूप से चल पड़ती तो विजय अपने-आपपर नियंत्रण नहीं रख पाता था। अन्त म अमिताभ को अपनी मा से मालूम हो गया कि छाया कौन थी और उसके पिता को किस कदर कदम-कदम पर विफलताओ का तूफान झेलना पडा था। उसीने एक दिन एकान्त पाकर रश्मि से कहा था, "तुम्हारी मा ने अपने समृद्ध और महत्त्वाकाक्षी पिता के दबाव मे आकर समझौता कर लिया था। जीवन का सुख और सुविधा मनुष्य को गुमराह कर देती है।"

"मैं इसे नही मानती।" रश्मि ने तमककर जवाब दिया था, "तुम्हारा विश्लेषण पूर्वाग्रह से प्रेरित है। दरअसल, मा मे आत्म विश्वास की कमी थी और तुम्हारे पिता भी तो परिस्थिति के चक्रव्यूह मे वर्षों तक पडे रहे। उन दिनो का समाज क्या किसी लडकी को इतने दिनो तक प्रतीक्षा करने के लिए स्वतंत्र छोड सकता था? तुम्हें मेरी मा की मजबूरी नजर-न्दाज नही करनी चाहिए। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से मेरी मा पूरी तरह परवश थी। क्या करती बेचारी? इस देश म औरत का अपना कोई अस्तित्व तो होता नही। उसे तो जड वस्तु बनाकर रख दिया गया है। तभी तो, जब चाहा, उसे उठाकर दान कर दिया जाता है।" अमिताभ निरुत्तर रह जाता था। धीरे धीरे वह छाया को पहचानने लग गया था।

उसे लगता था कि रश्मि की मा छाया निघूम अगरबत्ती की तरह तिल तिलकर जीवन भर जलती रही है। यदि इसमे भी अधिकार जताने की आग भरी लपटें होती तो वह सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती। लेकिन वह तो अपने-आपको स्वाहा और समर्पित कर देने का सकल्प ले चुकी थी। आरम्भ मे स्त्रियोचित ईर्ष्या ने उसे अधा बना दिया। वह उदात्त होकर सोच नही पायी कि कान्ता की समस्या, उसका दु ख मात्र उसीका नही था, बल्कि रूढिगत कुरूप, क्रूर परम्परा की आलक्कारी महामारी के उन्मूल का प्रश्न था जिसे सुलझाने मे उसका विवेकानन्द उलझ गया था। विवेकानन्द वत्तमान का नही, भविष्य का व्यक्ति था, इसीलिए छाया उसे अपनी सीमा मे बाध नही पायी।

अभिताभ पहले महीने में एक दो बार ही रश्मि के घर आ पाता था, लेकिन ज्यो ज्यो वह छाया के व्यक्तित्व से प्रभावित होता गया त्यो त्यो उसका यहा आना-जाना बढता गया। अब यह हफ्ते मे दो-तीन बार यहा आने लगा। उसे लगता, जैसे छाया समस्त नारी जाति की प्रताडित आत्मा की जीती-जागती तस्वीर हो। छाया के हाव भाव, बात व्यवहार तक से जाहिर हो जाता था कि उसमे किसीके प्रति राग-द्वेष का आभास तक नही है। वह तो ऐसे प्रेम की प्रतिमूर्ति है, जो लेना नही, देना ही जानती है।

४३

अमिताभ ने अपनी मा का मन रखने के लिए भारतीय प्रशासन सेवा की लिखित परीक्षा दे दी थी, किन्तु मौखिक परीक्षा से पहले ही उसे विश्व विद्यालय मे अनुसधान का काम मिल गया था। भारतीय प्रशासन सेवा की लिखित परीक्षा मे ही नही वह मौखिक परीक्षा मे भी उल्लेखनीय अको से सफल घोषित किया गया है। आजकल दिन-रात घर पर यही चर्चा होती रहती थी कि अभिताभ विश्वविद्यालय मे ही अनुसधान का काय करता रहे और बाद मे अध्यापन का काम करे, या प्रशासनिक सेवा स्वीकार कर ले। दरअसल वह भारतीय विदेश सेवा म भी स्थान प्राप्त कर चुका था, किन्तु

उसने स्पष्ट एलान कर दिया कि वह देश छोडकर बाहर कही नही जाएगा। सवाल यह था कि अब वह कौन सी राह पकडे।

उस दिन उसकी मा कान्ता झल्लाहट और आक्रोश से भरी बैठी थी। पिछले एक हफ्ते से उसका मूड खराब था। दो-तीन बार तो उसने अमिताभ को मारने तक की धमकी दे दी थी। कल ही उसने अमिताभ की बहस से तग आकर उसके कान चढा दिये थे और अमिताभ खिलखिलाकर हसता हुआ वहा से भाग खडा हुआ था।

जो अमिताभ विश्वविद्यालय मे और हाकिम-हुक्कामो के सामने उग्रतम विचारो वाला नौजवान था, वह अमिताभ अपनी मा के सामने भीगी बिल्ली बन जाता था। वह जानता था कि उसकी मा को, जीवन के आरम्भिक दिनो म, कठोर यातनाए झेलनी पडी हैं। वह यह भी जानता था कि यदि वह जीवित रह सकी, तो केवल उसके पिता की खातिर। उस पिता के चलते भी उसकी मा को कम कष्ट नही उठाना पडा। उसे यह भी मालूम था कि उसकी केन्द्र बिन्दु मात्र वह स्वय है। ऐसी स्थिति मे वह अपनी मा के क्रोध को सहज प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप मे ही देखता था।

अमिताभ यह जानता था कि मा अपने बाद यदि किसीको उसका शुभचिन्तक मानती है तो केवल रश्मि को। उसके पिता प्रमोद बाबू से तो वह खार खाये बैठी रहती थी। उसका विश्वास था कि पिता के बहकाव मे आकर ही अमिताभ दगा-फसाद मे हिस्सा लेता है। इसीलिए अमिताभ आज रश्मि को भी बुला लाया था। रश्मि ने वहा आते ही कान्ता के पाव छूकर कहा था, "मा, आज तो तुम्हारे हाथ का खाना खाने को जी करता है।"

"यह कौन-सी बडी बात है। अभी लो, घण्टे भर के भीतर तैयार कर देती हू।"

"लेकिन, बडे जोर की भूख लगी है। नाश्ता से काम नहीं चलेगा। पूरी, सब्जी और खीर खाने की इच्छा है। फिर, दो तीन जने और आने वाले हैं। इसलिए अधिक मात्रा मे बनाना पडेगा।"

कान्ता ने विस्मयसूचक स्वर मे पूछा, "और कौन लोग आने वाले है? क्या यही तुम बिगडे दिमाग वालो की आज बैठक है?"

'यही समझ लो। बिगडे दिमाग वाले होकर भी मित्र ही होंगे, श
तो यहा आ नही सकते। इस घर के शत्रु तो, यहा भोजन करने नही, बलि
बड़े घर मे भोजन कराने के लिए निमत्रण लेकर ही आ सकते हैं।"

"तुम भी अपने मुह से अशुभ बातें निकालने लगी अमिताभ की तरह
उसकी आदतें कम सीखो। दूध तो है नहीं, थोड़ी सब्जी भी लानी पड़ेगी

"तो यह तुम्हारे तन्दुरुस्त पुत्र किस दिन काम आएगे।" यह कहक
रश्मि भीतर से एक थैला और दूध का पात्र लाकर अमिताभ को देत
हुई बोली, "बैठकर खाते खाते तुम्हारी देह पर चरबी चढती जा रही है
यह लो और भागकर बाजार से कुछ हरी सब्जी, आलू, प्याज और दूध
आओ।"

अमिताभ आज्ञाकारी युवक की तरह चुपचाप थैला और दूध का बरत
लेकर घर के बाहर चला गया। कांता विस्फारित आखो से रश्मि क
देखती रह गयी। उसकी समझ मे नही आया कि आज रश्मि इतनी प्रस
क्यो है ?

रश्मि वैसे भी कान्ता से खुलकर मिला करती थी। उसके साम
अमिताभ के ऊपर, वह भी उसकी मा के सामने, इस तरह से कभी नहीं
अधिकार जताया था। कान्ता ने मन ही मन सोचा, शायद अमिताभ न
उसे सताया होगा जिसका वह बदला ले रही है। तभी कान्ता की आख
के सामने अमिताभ की शरारतपूर्ण भगिमा उभर आई। अमिताभ ने थैल
और दूध का बरतन रश्मि के हाथों से लेते समय उसकी उगलिया दबा दी
थी और कान्ता उफ करके रह गयी थी। उस समय अमिताभ के होठो पर
शरारतपूर्ण मुस्कराहट चमक उठी थी। अमिताभ के चले जाने के बाद कान्ता
रसोईघर मे जाकर भोजन पकाने की तैयारी में लग गयी। रश्मि भी उसके
पीछे-पीछे जा पहुची और बोली, "मुझे भी काम बताओ।'

"तुम जाकर अपने चाचा के पास बैठो। न जाने अकेले बैठे-बैठे वे
दिन रात क्या पढ़ते लिखते रहते हैं।'

"नही मा। मै बाबूजी के पास नही, तुम्हारे पास ही रहूगी। मुझे
भोजन बनाना सिखा दो। तुम्हारे हाथो की रसोई बडी स्वादिष्ट होती
है।"

कान्ता ने अत्यधिक आश्चय के साथ रश्मि की ओर देखा। आज पहली बार रश्मि न अमिताभ के पिता को बाबू जी कहा था। इसके पहले वह उन्हें चाचा जी कहा करती थी। यह परिवतन कान्ता की समझ मे नही आया। उसने हसते हुए कहा, "तुम क्यो अपने हाथ जलाओगी। नौकर चाकर तुम्हारे लिए रसोई तैयार कर देंगे।"

"नही मा, समय तेजी के साथ बदल रहा है। अपना हाथ जगन्नाथ। यदि अभ्यास नही रहा, तो बडी तक्लीफ होगी और मा, अपनी आवश्यकताए सीमित रखनी चाहिए। सुख और आवश्यकताओ की निस्सीमता उसकी पूर्ति के लोभ म है। यह लोभ मनुष्य को शोषक बना देता है। सुख है अपने कठिन परिश्रम का मीठा फल चखन म। परिश्रम ही नही करूगी, तब मीठे फल का स्वाद किस प्रकार मिलेगा?"

"परिश्रम करें तुम्हारे दुश्मन! तुम्हे क्या कमी है? मा-बाप की इकलौती लडकी हो। विजय बाबू तुम्हें ऐसे घर मे दुलहिन बनाकर भेजेंगे कि रानी बनकर राज करोगी।"

कहने को तो कान्ता कह गयी, लेकिन वह जानती थी कि रश्मि उसके बेटे अमिताभ स ही विवाह करना चाहती है। इसलिए उसने रश्मि की प्रतिक्रिया जानने के लिए छिपी नजरो से उसकी ओर देखा। रश्मि उस समय बलपूवक अपन भीतर उभरती हुई हसी को रोकने का प्रयास कर रही थी। यह देखकर भी कान्ता को आश्चय हुआ। रश्मि ने किंचित हसत हुए जवाब दिया

"मैं एसी शादी करने से रही। वैसे घर म जाने से यही अच्छा है कि जीवन भर कुवारी बैठी रह जाऊ।"

"क्यो, क्यो आज कैसी अशुभ बात बोल रही हो?"

'तुम मुझे रानी बनाना चाहती हो न। रानी हमेशा दुख पाती रही है। बहुत बडे महल के कोने मे पडी-पडी सडा हुआ जीवन जीती रहती है। उसे न तो भूख लगती है और न प्यास। ताजी और स्वच्छ हवा मे सास लेने के लिए वह तरस जाती है। उसकी पूरी जिन्दगी इन्तजार का पर्याय बन जाती है। नही मा एसा निरथक जीवन जीने का आशीर्वाद मुझे मत दो। मैं तो छोटे से घर की छोटी सी कोठरी म दिये की तरह प्रज्वलित रहना चाहती

हू, ताकि मेरे अस्तित्व का एहसास वहा की दीवारो तक को होता रहे। मैं किसीकी प्रतीक्षा करना नही चाहती बल्कि सहयात्री बनकर गतिशील रहना चाहती हू।"

"आज यह कैसी बहकी-बहकी बातें तुम कर रही हो। लगता है, अमिताभ की छूत तुम्हें भी लग गयी है। बैठे बिठाए उसे आई० एफ० एस० और आई० ए० एस० की नौकरी मिल रही है। कहा तो वह ऐसा मौका हाथ आया देख बासो उछल पडता और कहा वह आज भी विश्वविद्यालय म ही माथा पच्ची करने की जिद् पकडे बैठा है। तुम्ही बताओ, उससे बडा बेवकूफ दुनिया मे और कोई होगा ?'

"व तो ठीक कहते हैं मा। क्या रखा है आई० ए० एस० की नौकरी म। आज का जिलाधीश या आयुक्त या सचिव क्या है ? चाकर ही तो। जिला का हर एम० एल० ए० या सत्ताधारी दल के सगठन का मत्री या सत्री उसका मालिक होता है। उसे अपमानित करता है और उसके एवज मे वह आई० एस० ए० जनता पर धौंस दिखाता है। अपढ, अशिक्षित और अस हाया के सामने सीना तानकर चलता है, किन्तु मत्री और सत्री के सामने भीगी बिल्ली बनकर खीसें निपोरता रहता है। चादी के चन्द टुकडा और सुख मौज के लिए अस्तित्वहीन, अपमानित जीवन जीना कितना तुच्छ और नारकीय है। वहा मानसिक सुख नही है। व्यक्तित्व का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। तुम्हारे बेटे ने ठीक फैसला लिया है। उन्हे आशीर्वाद दो। तुम सघर्षशील और जीवनदायिनी तेजस्विनी मा हो। तुम्हारे पुत्र का व्यक्तित्व भी तेजस्वी बने, ऐसी ही शुभकामना दो।"

कान्ता चकित विस्मित होकर रश्मि का मुख निहारती रह गयी। उसके मन मे तरह-तरह की शकाए उठने लगी। आज रश्मि अमिताभ का नाम नही ले रही है। उसके प्रति आदरसूचक शब्दो का प्रयोग कर रही है । क्यो ? क्या इसन कान्ता किसी निष्कर्ष पर नही पहुच पाई और अपने काम मे लग गयी।

कुछ ही देर मे अमिताभ सब्जी और दूध लेकर आ गया। रश्मि कान्ता के साथ ही रसोईघर के काम-काज म उसका हाथ बटाने लगी। अमिताभ अपने पिता के पास जाकर बैठ गया। प्रमोद बाबू न उसकी ओर

प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा । जब अमिताभ कुछ नही बोला और चुपचाप बैठकर सामने पडी मेज पर की पत्रिका के पन्ने उलटने लगा, तब प्रमोद बाबू ने पूछा

"क्या बात है ? कुछ कहना चाहते हो क्या ?"

"नही, वैसे ही रश्मि रसोईघर मे मा का हाथ बटा रही है ।"

"अच्छा ! घर से रूठकर चली आई है क्या ?"

"मुझे नही मालूम । लगता नही है । बहुत खुश नजर आ रही है ।"

"उसके पिता तो नये मन्त्रिमडल मे रहे नही । यह पहला मौका है कि विजय को केन्द्रीय मन्त्रिमडल मे शामिल नही किया गया । इस बार चाल चलने मे विजय से कही न कही भूल हो गयी । वह मात खा गया ।"

"क्या फर्क पडता है । जो मन्त्रिमडल बना है, वह कितने दिन चलेगा ? कामचलाऊ ही तो है । कल या परसो वे फिर मन्त्री बन जाएगे । किसी दल का शासन हो, वे ही गिने-चुने चौदह पन्द्रह व्यक्ति हैं, जो पिछले तीस बत्तीस वर्षों से मन्त्री बनते चले आये हैं । छह-सात नये नाम जुड जाते हैं, बस । कहने को कहा जाता है कि पुराने दल के शासन को हटा दिया गया और नये दल ने शासन की बागडोर सभाल ली । प्रजातन्त्र का मजाक बना दिया है इन दलबदलुओ ने । जिधर से बयार बहती है उधर पीठ कर देते हैं ।"

"लेकिन तुमने यह नही बताया कि रश्मि आज खुश क्यो है ? उसे तो पिता के दुख से दुखी रहना चाहिए था ।"

"वह अपने पिता पर नही, मा पर गयी है । उसकी मा की दृष्टि मे सुख वह है जो अन्तरतम को शुद्ध और शीतल कर दे । ऐसे सुख को वह निकृष्ट मानती है जो मनुष्य को स्वार्थ की सकुचित सीमा मे आबद्ध कर देता है ।"

प्रमोद बाबू ने अपने बेटे की ओर ध्यान से देखा । अमिताभ की आखें अपने पिता की आखो से मिली और झुक गयी । प्रमोद बाबू को लगा, जैसे उनका बेटा अपने मन मे छिपे चोर पर परदा डाल रहा हो । वे कुछ कहने ही जा रहे थे कि बाहर मोटर के रुकने की आवाज सुनाई पडी । अमिताभ अपनी कुर्सी से इस तरह उछलकर खडा हो गया, जैसे वह इसी घडी की

प्रतीक्षा में वहा बैठा हुआ था। उसने अपने पिता की ओर देखा। प्रमोद बाबू की आखो में कौतूहल था, लेकिन वह अपनी कुर्सी पर ही स्थिर बैठे रहे। अचानक अमिताभ के मुख से निकल पडा

"शायद वे लोग आ गये।"

"कौन लोग आ गये?"

अमिताभ झेंप गया और हताश होकर फिर से कुर्सी पर बैठ गया। दरवाजे से लगी हुई घंटी टनटना उठी। प्रमोद बाबू ने अमिताभ की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखत हुए कहा, 'देखो तो जाकर दरवाजा खोल दो, जो भी हो।"

अमिताभ दो-तीन कदमो तक बहुत धीरे धीरे गया और अपने पिता की आखो से ओझल होते ही दूसरे कमरे की पूरी दूरी एक छलाग मे ही तय करके दरवाजे के पास जा पहुचा। वह तो जानता ही था कि बाहर दरवाजे पर कौन लोग हैं। दरवाजा खुलते ही दो व्यक्ति कमरे मे घुस आय एक पुरुष और एक नारी। पुरुष स्वर न पूछा, "विवेक कहा है?' यह प्रश्न-वाचक स्वर दूसरे कमरे तक गूज उठा। बहुत वर्षों बाद प्रमोद बाबू अपना यह नाम सुनकर चौंक उठे। उन्ह अपने बचपन के साथी को पहचानने म देर नही लगी। वे जल्दी से उठकर बाहर वाले कमरे मे पहुचे तो सामने विजय और छाया को देखकर किंकर्तव्यविमूढ से खडे होकर देखते रह गये। आज लगभग पच्चीस वर्षों बाद उन्होंने छाया को इतने निकट से देखा था। वह पहले से अधिक दुबली हो गयी थी। उसके सिर के बाल असमय ही अत्यधिक सफेद हो गय थे, लेकिन उसकी आखो म वही पुरानी सौम्यता और सुन्दरता थी। प्रमोद बाबू शायद इसी प्रकार काठ की खडे रह जात यदि विजय न उसे पुकारा नही होता, "खडे-खडे अपनी ही छाया को देखत रहोग या मुझे भी बैठा को कहोगे?" तब तक माता भी कमरे मे आ पहुची थी।

छाया लाज से लाल हो गयी। उसन माता को देखकर हाथ जोड दिये। माता न आगे बढकर छाया के दोनो हाथ पकड लिये। गगा यमुना का यह मिलन रश्मि दरवाजे पर खडी-खडी देखती रही और मुग्ध होती रही। अचानक माता न कहा

"रश्मि, तो य लोग हैं तुम्हारे मित्र जो विश्वविद्यालय से भोजन करने के लिए आने वाल थे ? इसमे छिपाने की क्या आवश्यकता थी। पहली बार देवर और देवरानी मेरे घर आये और मुझे स्वागत सत्कार करने का पूरा अवसर भी नही मिला।"

"मैं देवर बनकर तुम्हारे घर नहीं आया हू भाभी। बेटी का बाप होने के नाते तुम्हारे दरवाजे पर हाथ फैलाये कुछ मागने के लिए आया हू। आज तक तो मेरे बचपन का मित्र हम लोगो के विरुद्ध आन्दोलन करता रहा, लेख लिखता रहा और चुनौतिया देता रहा, फिर क्या करता ? अपने-आपको जीवित रखने के लिए सालहा साल चक्रव्यूह रचने मे व्यस्त रहा, लेकिन यह पट्ठा एक ही अभिमन्यु निकला। बाहर से ही वार करता रहा। चक्रव्यूह के भीतर इसने घुसने की कोशिश नही की।"

'मैं जानता था कि चक्रव्यूह के भीतर एक नही, कई जयद्रथ हैं जिनके प्रलोभन मे फसकर राच्चे से सच्चा परमार्थी व्यक्ति भी सही-सलामत बाहर निकलकर नही आ सकता।" इस बार प्रमोद जी ने हसते हुए कहा, 'आओ बैठो। तुमने यह क्या कहा कि बेटी के बाप के नाते यहा आये हो। यह घर तो तुम्हारा ही है। यहा चक्रव्यूह जैसा कोई प्रलोभन नही है।"

"मैं जानता हू, यहा जो कुछ है सीधा-सपाट है। खुला हुआ है। चक्रव्यूह का प्रपच तो तब शुरू होता है, जब आदमी सत्य को तिलाजलि देकर सत्ता के व्यामोह मे फस जाता है। आज सचमुच मैं बेटी के बाप की हैसियत से तुम्हारे पास आया हू। शायद तुम्हे मालूम नही कि कल शाम को ही इन दोनो ने कोर्ट मे जाकर विवाह कर लिया। तुमसे बडा क्रान्तिकारी निकला तुम्हारा बेटा। इसने मेरी बेटी का ब्रेन वाश' कर दिया है। शादी करके ये दोनो कल शाम हम लोगो के पास पहुचे। हम लोगो को नाराज होने का भी मौका नही दिया। रश्मि ने कहा, 'बाबूजी, दिखावा न तो हमे पसन्द है न अमिताभ के पिता जी को। इसलिए हम लोग चुपचाप विवाह कर आये ह। यह है हमारे विवाह का प्रमाण पत्र' बहुत समझाने-बुझाने के बाद ये लोग इस बात पर राजी हुए कि वैदिक ढग से भी इनके विवाह की पुनरावृत्ति की जा सकती है बशर्ते कि उसपर कोई धूम-धडाका न किया जाये। अब तुम लोगो का क्या विचार है ?"

प्रमोद बाबू विस्फारित आखो से कभी रश्मि को देख रहे थे तो कभी अमिताभ को। कभी उनकी नजर छाया पर जाकर अटक जाती थी तो कभी विजय की आखो से टकरा जाती थी। क्षण-भर यही मूक सभापण चलता रहा कि अचानक रश्मि ने काता के पाव छू लिए। काता ने बडे प्यार से रश्मि को उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया। यह दृश्य देखकर छाया की आखें भर आइ। उसने अश्रुपूरित नयनो से अपने विवेका जी की ओर देखा। उन आखों मे विवेकानन्द के लिए अपार श्रद्धा, विश्वास और प्रेम भरा हुआ था।

• • •